श्री परमात्माने नमः : श्री भगवदात्माने नमः

श्री परम पारणामिक भावाय नमः

श्री

॥ भेद ज्ञान ॥

: लेखक अेवं प्रकाशक :

ब्रह्मचारी मूलशंकर देशाई

जागनाथ प्लोट : : प्रभास कुटीर

राजकोट [सौराष्ट्र].

प्रथमावृत्ति १००० ∴ **मूल्य रुपीआ दो।**

श्रुत पंचमी वीर संवत २४७८ विक्रम संवत २००८

तारीख २८ मी मेय शन १९५२ बुधवार.

विज्ञप्ति

यह ग्रन्थ धर्मानुरागसे ही उत्पन्न हुआ है, ओर कोई पुजा, प्रतिष्ठाकी भावना नही है। यदि समाज इस ग्रन्थको मात्र एक ही दफे पढनेंका कष्ट उठावे तो मैरेमें हुवा धर्मानुरागका यथार्थ फल मीला अैसा कह शकते है। ग्रन्थमें क्या क्या विषय है वह तो विषय शूचीसे ही पता लग जाता है।

मैं तो यह चाहता हूं कि, जो अपनी परणति अनादिकालसे मलिन हो रही है, वह शुद्ध हो जावे यह छोडकर और कोई भावना नही हैं।

जैन समाजका सेवक,
ब्र. मूलशंकर देशाई

विषय सूची

सूचना—जहां (ध. ५. १८१) लिखा है इसका इतना अर्थ करनाकी ध = धवलग्रन्थ. ५ = पुस्तक नंबर पांच. १८१ = पृष्ट नंबर १८१.

शुद्धि - पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४	३	गार्मस्थकाल	गार्मस्थकाल
९	२१	द्रव्यकी	द्रव्यकी
१२	२१	नक्ति	भक्ति
३४	१८	जसा	कैसा
३५	१७	ज्यातश्चक्र	ज्योतिश्चक्र
४८	१३	होन्त	होनेत
५३	२	सयाद्वादसे	स्याद्वादसे
६८	१३	शास्त्रोंमें	शास्त्रोंमें
७२	१	ज्ञास्त्रीय	शास्त्रीय
७५	११	जघन्य	जघन्य
७९	२१	प्रवादिकसे	मेवादिकसे
८५	१४	धर्मास्तिकाय	अधर्मास्तिकाय
८९	१७	सी	रसी
९६	२०	पयार्य	पर्याय
१०३	१४	निगाद	निगोद
११६	४	तिर्यद्जीव	तिर्यंचजीव
११६	९	श्रोव	श्रोत्र

११६	२१	पंचेद्रय	पंचेद्रिय
११७	१९	रोठो	रोटो
११८	१५	सामंन्व	सामान्य
१२०	८	चोवीप्त	चोवीस
१२५	१८	चकवती	'चक्रवती
१४१	१	निमितकी	निमित्तकी
१७७	२१	युक्त	मुक्त
१८४	६	द्वरा	द्वारा
१९५	९	उथयमें	उदयमें
२१४	१९	आर्माके	आत्माके
२२०	१२	मिल	मिली।
२२७	१९	घुपके	धुपके
२३५	१	सम्पकत्व	'सम्यकत्व
२४०	९	सासादम	"सासादन
२५४	१	अाथत	अर्थात
२५७	२०	औपशिक	औपशमिक
२६१	२१	मम्यगर्दानमें	सम्यगदर्शनमे
२७०	११	उद्दठाइस	अट्ठाईस
२७९	२१	निपना	मुनिपना
३१८	४	तीव्रतर	तिव्रतम—तीव्र
३२३	७	श्रीधवली	श्रीधवल

३३६	११	भायसे	भावसे
३४३	६—१२	भाव ता है	भाव होता है।
३४४	४	सते	संते
३४५	२१	अत्मा	आत्मा
३५१	१९	कहना	करना
३६२	२१	अमाव	अभाव
३६५	१५	उरवी	उसी।
३६९	१५	मै।	यै।
३९२	१६	करवालीं	करनेवाली

श्री परमात्मने नमः श्री भगवदात्मने नमः

श्री परम पारणामिक भावाय नमः

श्री

भेद ज्ञान

मङ्गलाचरणम्

अभिवंद्य शिरसा अपुनर्भवकारणं महावीरं ।
तेषा पदार्थ भङ्ग मार्ग मोक्षस्य वक्ष्यामि ॥

अन्वयार्थ— (अपुनर्भवकारण) मोक्षके कारण भूत (महावीरं) वर्द्धमान तीर्थंकर भगवानको (शिरसा) मस्तकद्वारा (अभिवंद्य) नमस्कार करके (मोक्षस्यमार्गे) मोक्षके मार्ग अर्थात कारण स्वरुप (तेषां) उनषडद्रव्योंके (पदार्थ भङ्ग) नव पदार्थरुप भेदको (वक्ष्यामि) कहुंगा ।

वर्तमान पंचम कालमे भगवान परम भट्टारक देवाधिदेव श्री वर्द्धमान स्वामीका शासन चल्ता हैं । क्योंकि वह धर्म तीर्थके कर्ता हैं । उनको भक्ति पूर्वक वंदन करके मै मोक्ष मार्गके साधन भूत "भेद ज्ञान" का स्वरुप कहुंगा ।

प्रश्न— भगवान महावीर स्वामीका शासन कब से उत्पन्न हुआ है ?

उत्तर— इस अवसर्पिणी कल्प कालके दुःषमा सुषमा नामके चोथे कालके पिछले भागमें कुछ कम चोतीस वर्ष बाकी रहने पर, वर्षके प्रथम मास अर्थात श्रावण मासमे, प्रथम पक्ष अर्थात कृष्ण पक्षमे, 'प्रतिपदाके दिन प्रातः कालके समय आकासमे अभिजित् नक्षत्रके उदित रहनेपर तीर्थ अर्थात धर्मतीर्थकी उत्पति हुई ।

वह इस प्रकारसे है—पन्द्रह दिन और आठ मास अधिकतर पचत्तर वर्ष चतुर्थकाल शेप रहने पर (७५ व. ८ मा. १५ दि.) पुष्पोत्तर विमानसे अपाढ शुक्ला पष्टीके दिन बहत्तर वर्ष प्रमाण आयुसे युक्त और तीन ज्ञानके धारक महावीर भगवान गर्भमे अवतीर्ण हुए । इसमे तीस वर्ष कुमार काल, बारह वर्ष उन का छद्मस्थकाल, केवलीकाल भी ३० तीस वर्ष, इस प्रकार इन तीन कालका योग बहत्तर वर्ष होते है । इनको ७५ पचत्तर वर्षोंम से कम करने मे वर्धमान जिनेन्द्र के मुक्त होने पर जो शेष चतुर्थकाल रहता है उसका प्रमाण होता है । इसमे छासठ दिन कम केवली कालके जोडने से, नौ दिन और छो मास अधिक तेतीस वर्ष चतुर्थ कालमे शेप रहते है ।

शंका— केवली कालमें ६६ छयासठ दिन कम किस लिये किये जाते है ?

समाधान—क्योंकि केवल ज्ञानके उत्पन्न होनेपर भी उनमे तीर्थकी उत्पत्ति नही हुई।

शंका—इन दिनोमे दिव्यध्वनि की प्रवृती किस लिये नही हुई ?

समाधान—(निमित्तकी अपेक्षासे) गणधर का अभाव होनेसे उक्त दिनोमे दिव्यध्वनि की. प्रवृति नही हुई ?

शंका—सौधर्म इन्द्रने उसी क्षणमें गणधर को उपस्थित क्यो नही किये ?

समाधान—नही किया, क्योकि काललब्धि के विना असहाय सौधर्म इन्द्र के उनको उपस्थित करने की शक्ति का उस समय अभाव था ।

शंका—अपने पादमूलमे महाव्रत को स्विकारकरने वाले.को छोडकर अन्य का उद्देशकर दिव्यध्वनि क्यो न प्रवृत हुई ?

समाधान—नही होती है, क्योकि अैसा स्वभाव हे । और स्वभाव दुसरे के प्रश्न के योग्य नही होता, क्योकि अैसा होनेपर अव्यवस्था की आपति आती है।

इस कारण चतुर्थकालमे कूच्छकम चोतीस वर्ष शेष रहनेपर "**तीर्थ की उत्पत्ति**" हुइ" यह सिद्ध है ।

अन्य कितने ही आचार्य पांच दिन और आठमासोसे कम बहतर वर्ष प्रमाण वर्धमान जिनेद्र की आयु बतलाते है। (७१ व ३ मा. २५ दि.)

उनके अभिप्राय अनुसार गर्भस्थ, कुमार, छद्मस्थ, और केवलज्ञानके कालोकी परूपणा करते है । वह इस प्रकार है—

गर्भस्थकाल—

अषाढ शुक्ल पक्ष षष्ठी के दिन कुण्डलपुर नगर के अधिपति नाथवंसी सिद्धार्थ नरेन्द्र की त्रिसलादेवी के गर्भसे आकर और वहां आठदिन अधिक नौमास रहकर चैत्र शुक्ल पक्ष की त्रयोदसि के दिन रात्रिमे उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्रमे गर्भसे बहार आया ।

कुमारकाल—

वर्धमान स्वामी २८ व. ७ मा. १२ दि. अठाईस वर्ष सातमास और बारह दिन दैवकृत श्रेष्ट मानुषिक सुखका सेवन करके आभिनिबोधिक ज्ञानसे प्रबुद्ध होते हुअे षष्टोपवासके साथ मगसीरकृष्णा दशमी के दिन गृहत्याग करके सुरकृतमहिमाका अनुभवकर तपकल्याण द्वारा पूज्य हुअे ।

छद्मस्थकाल—

रत्नत्रयसे विशुद्ध महावीर भगवान १२ व. ५ मा. १५ दि. बारह वर्ष पाच मास और पन्द्रह दिन छद्मस्थावस्थामे बिताकर ऋजुकुला नदीके तीरपर जृम्भिका ग्रामके बहार शिलापट्टपर षष्टोपवासके साथ आतापन योग्य युक्त होते हुअे अपराह्नकालमे पादपरिमित छाया के होनेपर वैशाख शुक्ल पक्षकी दशमी के दिन क्षपक श्रेणीपर आरूढ होकर अेवं घातीया कर्मोको नष्टकर केवलज्ञान को प्राप्त हुअे ।

केवलज्ञानकाल—

भगवान महावीर २९ व. ५ मा. २० दि. उनतीसवर्ष पांचमास वीसदिन चार प्रकारके अनगारो व बारहगणोके साथ विहार करते हुए प्रश्चात पावानगरमे कार्तीक मासमे कृष्णपक्षकी चर्तुदशी को स्वाति नक्षत्रमे रात्रिको शेषरज अर्थात अघातियाकर्मोको नाश करके मुक्त हुए।

महावीर जिनेन्द्रके मुक्त होनेपर चतुर्थकालका जो शेष वर्ष रहे वह तीन वर्ष आठ मास व पन्द्रहदिन ३ व. ८ मा. १५ दि. प्रमाण है।

उक्त दो उपदेशोमे कोनसा उपदेश यथार्थ है इस विषयमे (**वीरसेनस्वामी**) अपनी जीभ नही चलाता क्योंकि न तो इस विषयका कोई उपदेश प्राप्त है, और न दोनोमेसे एकमे कोई बाधा उत्पन्न होती है, किन्तु दोनोमेसे एकही सत्य होना चाहिये उसे जानकर कहना चाहिये। (ध.–९–११९)

महावीर भगवान मुक्त हुआ बाद (६०५ व. ५ मा.) छहसो पाच वर्ष पाचमास मे शक नरेन्द्रकी उत्पत्ति हुई है। कहाभी है कि—

पंचयमासा पंचयवासा छच्चेव होंति वाससया।
सगकालेण य सहिया थावेयव्वो तदो रासी॥

अर्थ—पाचमास पाचदिन और छहसो वर्ष होते हैं। इसलिये शककालसे सहित रासीस्थापित करना चाहिये। (ध–९–१३२)

६०५ व ५ मा. छहसे पाच वर्ष पांच मासमे शकनरेन्द्र के कालको मिलादेनेपर वर्धमान जिनके मुक्त होनेका काल आता है।

अन्य कितनेही आचार्य विर जिनेन्द्र मुक्त होनेके दिनसे चौद हजार सातसे तेरानवे वर्षो के (१४७९३) बीतजाने पर शक नरेन्द्रकी उत्पतिको कहते हैं। कहाभी है कि—

गुत्ति पयत्थ भयाइं चोद्दसरयणाइ समइकंताइ।
परिणिव्वुदे जिणिंदे तो रज्जं सगणरिंदस्स॥

अर्थ—वीर जिनेन्द्रके मुक्त होनेके पश्चात गुप्ति[३] पदार्थ[९] भय[७] और चौद[१४] रत्नो अर्थात चौदह हजार सातसो तेरानवे वर्षोके वितनेपर शकनरेन्द्रका राज्य हुआ।

अन्य कितनेहि आचार्य इस प्रकार कहते हैं कि—वर्धमान जिनके मुक्त होनेके दिनसे पाच मास अधिक सात हजार नौसो पंचानवै वर्षोके वितनेपर शक नरेन्द्रके राज्यकी उत्पति हुई। कहाभी है कि—

सत्तसहस्सा ण्वसद पंचाणउदी स पंच मासा य।
अइकंता वासाणं जइया तइया सगुप्पत्ती॥

अर्थ—जब सात हजार नौसौ पंचानवै वर्ष और पाच मास वीत गये तब शक नरेन्द्र की उत्पति हुई। (७९९५ व. ५ मा.) (ध.—९.—१३३)

इन तीन उपदेशोमे एक होना चाहिये। तीनो उपदेशोकी सत्यता सभव नही है, क्योंकि इनमे परस्पर विरोध है। इसलिये

जानकर कहना चाहिये।

भगवान तीर्थंकरोकी वाणी अक्षरी सहज खिरती है तो भी वह वाणी स्याद्वादरूप खिरती है. अर्थात वह वाणी सत्यरुप और अनुभय वचनरूप खिरती हैं।

शंका—तीर्थंकरतो वीतराग है. अर्थात वहां बोलने की इच्छा का तो अभाव हैं ती भी मात्र सत्यवाणी क्यों नही खिरी? अनुभयवाणी की क्या जरुरत थी?

समाधान—तीर्थंकरो की वाणी कर्मजनित्त खिरती है। पूर्व भवमे तीर्थंकरोका जीवोने अैसी भावना भायी थी कि संसारके सभी जीवोका कल्याण कैसे हो? वही भावनामे सहज तीर्थंकर गोत्रका बंध पड गया था. इसीका उदयमेही वाणी खिरती हे। अनादिकालसे जीव अज्ञानके कारण पुद्‌गलीक कर्मोसे बन्धा हुआ हैं। अैसा जीवोको मोक्षमार्ग दिखाने के लिये जीवका तादात्म सम्बन्ध अपना गुण पर्याय की साथ किस प्रकारका हे इसीका ज्ञान कराने के लिये सत्य वाणी खिरी हैं। और जीवका पुद्‌गलीक कर्मोका संयोगसे कैसी अवस्था हो रही है इसीका ज्ञान कराने के लिये अनुभय वाणी खिरी हैं। यह दोनो प्रकार की वाणी अेकी साथ सहज खिर रही हैं। यह वाणी शुनकर गणधर देवोने शूत्रकी रचना कि।

शंका—गणधर देवे चार ही अनुयोग क्यों वनाया?

समाधान—यथार्थ मे अनुयोग अनादि अनंत तीन ही हैं।

१ करणानुयोग २ द्रव्यानुयोग ३ चरणानुयोग । परन्तु प्रथमानुयोग अनादि अनंत नही है । वह तो उपचारिक अनुयोग है ।

शंका—तीन अनुयोग क्यों बनाया ?

समाधान—जीवका स्वभाव भाव तो ज्ञायक हैं । परन्तु ज्ञायक स्वभाव को भूलकर पर पदार्थों मे अपनत्व बुद्धिकर दुःखी हा रहा हैं । औसा जीवोका सम्वन्ध तीन प्रकार का हो शकता हैं; इस लिये इसी का ज्ञान कराने के लिये तीन अनुयोग की रचना हूई हैं । प्रोद्‌गलिक ज्ञानावरणादि कर्मों की साथ में आत्मा का किस प्रकारका सम्वन्ध हैं इसीका ज्ञान कंराने के लिये करणानुयोग की रचना हुइ है । भावकर्म अर्थात रागादिक की साथ मे आत्मा का क्या सम्बन्ध है उसीका ज्ञान कराने के लिये द्रव्यानुयोग की रचना हुइ हैं । और नोकर्म अर्थात संसार के सभी पदार्थों की साथ आत्मा का कीस प्रकारका सम्बन्ध हैं उसी का ज्ञान कराने के लिये चरणानुयोग की रचना हुइ है । इससे अलावा और कोइ पदार्थ रहता नही हैं इस लिये अनुयोग तीन ही हैं । इससे अलावा और कोइ पदार्थ रहता नही हैं इस लिये चोथा अनुयोग की कोइ जरूरत नही हैं । इस लिये अनुयोग तीन ही हैं । पुण्य, पाप का फलका ज्ञान कराने के लिये—अर्थात पापसे बचाने के लिये मात्र प्रथमानुयोग की रचना हुई हैं । तो भी वह अनुयोग अनादि अनंत नही हैं परन्तु सादी शान्त हैं । यह अनुयोगमे अनादि की कथा आ नही शकती हैं ।

सरल भाषामें यदि पदार्थों का स्वरूपका निरुपण किया जावे तो उत्तम अैसा धर्मानुराग रुपी विकल्प की साथ योगानुसार '**भेदज्ञान**' शास्त्र की रचना हो गयी। इस शास्त्रमें कोई शब्द आगमसे विपरित्त विशेष्ट ज्ञानीजनो के देखनेमें आवे तो सुधारलेने की प्रार्थना की साथ '**भेदज्ञान**' शास्त्रका उदय होता है।

प्रश्न— लोक किसको कहते है ?

उत्तर— अेक अखंड आकास नामका द्रव्य है। जिसकी मध्य भागमे जितना क्षेत्रमे अनंत जीवद्रव्य, अनंतानंत पुद्‌गलद्रव्य अेक धर्मद्रव्य, अेक अधर्मद्रव्य त्था असंख्यात कालद्रव्य रहते है इतना आकासका क्षेत्रका नाम लोक है। बाकीके मर्यादा रहित आकास है उसको अलोक कहते है।

प्रश्न— द्रव्य कितने है ?

उत्तर— द्रव्य छैह है। १. अनंतजीवद्रव्य. २. अनंतानंत पुद्‌गलद्रव्य. ३. अेकधर्मास्तिकायद्रव्य. ४. अेक अधर्मास्तिकायद्रव्य ५ अेक आकास्तिकायद्रव्य. ६. असंख्यात कालाणुद्रव्य।

प्रश्न— द्रव्यका लक्षण क्या है ?

उत्तर— द्रव्यका लक्षण तीन प्रकार है। १. सत. २. उत्पादव्ययध्रुव. ३. गुणपर्यायका समुह, इस प्रकार द्रव्यका लक्षण है।

प्रश्न— सत किसको कहते है ?

उत्तर— द्रव्योमे अस्तित्व नामना गुण है जो द्रव्यकी तीनोकाल

हयाती अर्थात मौजुदगी दिखाता है। अर्थात जीसका कबी नाश न हो इसका नाम सत है।

प्रश्न — उत्पादव्ययध्रुव किसको कहते हैं?

उत्तर— द्रव्य अपनी हयाती कायम रखकर अपनी अेक अवस्थाका नाश कर दुसरी अवस्था धारण करे उसीका नाम उत्पाद-व्ययध्रुव हैं, अर्थात नवी अवस्था की उत्पती करना वह उत्पाद, पुरानी अवस्था का नाश होना सो व्यय और द्रव्य, अर्थात वस्तु कायम रहना सो ध्रुव हैं।

प्रश्न— गुण पर्यायका समुह किसको कहते हैं?

उत्तर— प्रत्येक द्रव्यमें अनंतगुण हैं जिसका कभी नाश नहि होता, तथा वह गुणो की समय समयमें शुद्धासद्ध अवस्थओ होनी सो पर्याय हैं, अर्थात गुणो सहवर्ती है अर्थात तीनोकाल रहता हैं और पर्याय क्रमवर्ती हैं अर्थात समय समयमे बदलती रहती है। अैसा गुण पर्यायको जो धारण करनार हैं वह द्रव्य है।

प्रश्न— लोकमे छोही द्रव्य क्यों मानना चाहिये? द्रव्य दिखनेमे तो दो ही आता है? १ जीव २ पुद्‍गल।

उत्तर— जीव और पुद्‍गल तो दिखनेमे आते हैं। यह दो द्रव्यको चलनेमें जो निमित होता है वह तीसरा धर्मद्रव्य है! जीव और पुद्‍गलको जो स्थिर रहने मे निमित्त है वह चोथा अधर्मद्रव्य है। जीव और पुद्‍गल को रहने को लिये स्थान देने मे जो निमित कारण है वह पाचवा आकाश द्रव्य हैं, और जीव और पुद्‍गलकी समय समयमें

अवस्था बदलनेमे जो निमित्त है वह छठवा काल द्रव्य है। इस लिये छही द्रव्य है। छह से कम द्रव्य नहि है अेवं छोह से विशेष द्रव्य भी नही हैं। यह छोह द्रव्यमे अेक पुद्गलद्रव्यही रुपी है, बाकी के द्रव्यो अरुपी हैं। यह छोह द्रव्यो मे से अेक जीवद्रव्य ही चेतन है अर्थात जीसमे जानने दिखने की शक्ति है, बाकी के पांच द्रव्यो अचेतन है।

प्रश्न— रुपी द्रव्यका क्या अर्थ होता है?

उत्तर— जिस द्रव्य मे रुप रस गन्ध और स्पर्स हो उस को रुपी अर्थात मूर्त द्रव्य कहा जाता है, और जिसमे रुप रस गन्ध नहि है उसीको अरुपी अर्थात अमूर्त कहा जाता है।

प्रश्न— छहो द्रव्य लोकमे रहने से अेक द्रव्य दुसरा द्रव्यमे मिल नहि जाता है?

उत्तर— छहो द्रव्य परस्पर मिल्ते है. तथा परस्पर अेक दुसरेको स्थान दान देते है, तो भी कोई भी द्रव्य किसी द्रव्य को बाधा नहि देते है, और सदा काल मिल्ते रहते है अर्थात अेक क्षेत्रमे रहते है तो भी सर्व द्रव्य अपनी अपनी हयाती स्थिति तीनो काल कायम रखता है। अैसा नहि हैं कि अेक द्रव्य का नाश होकर दुसरा द्रव्यमे मिल जावे। तादात्म सम्बन्धसे प्रत्येक द्रव्य अपनी अपनी स्वतंत्र हयाती रखते है, तो भी संयोग सबंध से जल और दुध की तरह अेक क्षेत्रमे रहते हैं। यही द्रव्यकी स्वतंत्रा है।

प्रश्न— क्या द्रव्य से द्रव्य का गुण और पर्याये अलग

कभी रहती है ?

उत्तर— द्रव्य से द्रव्यका गुण और द्रव्यकी पर्याय कभी अलग नहि रहती है। द्रव्यका द्रव्यके गुण तथा पर्याय कि साथ तादात्म अर्थात अभिन्न सम्बन्ध है। जैसे सोना द्रव्य है. पीला गुण है, और कंकण पर्याय है। वह सोना द्रव्य, पीलागुण तथा कंकण पर्याय से अलग नहि है।

प्रश्न— जीव द्रव्यका गुण अर्थात लक्षण क्या है, और उसकी पर्याय क्या है ?

उत्तर— जीव द्रव्यका निज लक्षण अेक तो शुद्धाशुद्ध अनुभूतिरूप चेतना और दुसरा शुद्धासुद्ध चैतन्य परिणाम रूप उपयोग है। तथा नाना प्रकार के देवता, मनुष्य, नारकी और तिर्यंच्च यह जीवकी अशुद्ध संयोगी पर्याय है।

प्रश्न— चेतना कितना प्रकारकी है।

उत्तर— चेतना तीन प्रकारकी है। १. कर्म चेतना २. कर्म फल चेतना ३. ज्ञान चेतना.

प्रश्न— कर्म चेतना किसको कहते है ?

उत्तर— मै कुच्छ करुं, मै कुच्छ करुं, अैसा जो जीव मे भाव होता है वह कर्म चेतना हैं। कर्म चेतना दो प्रकार की है। १. पुण्यभावरुप २. पाप भावरुप।

प्रश्न— पुण्य भावरुप कर्म चेतना किसको कहते है ?

उत्तर— मै देव गुरु शास्त्रकी भक्ति करुं, मै दुःखीया

जीवको अन जल और औषधि दउं. और मै व्रत संयम तप शीलादि अंगीकार करु यह सब भाव पुण्य भाव रूप कर्म चेतना हैं।

प्रश्न— पाप भाव रूप कर्म चेतना किसको कहते हैं?

उत्तर— पांच इन्द्रियो का विषयो अेकट्ठा करने का जो भाव होता है वह सबी भाव पाप कर्म चेतनां है।

प्रश्न— कर्म फल चेनना किसको कहते है?

उत्तर— जीवमे भोगने का जो जो भाव होता हैं, जैसे मै रेडीओ शुनुं, मै सीनेमां दीखुं, मै सुंगधी पदार्थो सुंघुं, मै मिष्ट भोजन खाउ, मै वडीआ कपडा, गहनादि पहेरु यह सब भोगने का भावका नाम कर्मफल चेतना है। कर्मफल चेतना रूप सबी भावो पाप भाव ही हैं।

प्रश्न—ज्ञान चेतना किसको कहेते हैं।

उत्तर—न भोगने का भाव हो, न कर्म करने का भाव हो, परन्तु वीतराग भाव लेकर संसार के सभी पदार्थो का तथा अपना स्वरूप का ज्ञान भावसे वेदना अर्थात देखना जानना रहे सो ज्ञानचेतना हैं यही धर्म भाव है। यही भाव मोक्षका कारण है।

प्रश्न—उपयोग किसको कहेते हैं?

उत्तर—उपयोग दो प्रकार का है। १ अेक सविकल्प तथा निर्विकल्प उपयोग २ शुद्धोपयोग तथा अशुद्धोपयोग।

* **प्रश्न**—सविकल्प तथा निर्विकल्प उपयोग किसको कहेते है ?

उत्तर—सविकल्प उपयोग तो ज्ञान चेतना का लक्षण है, और निर्विकल्प उपयोग दर्शन चेतना का लक्षण है।

प्रश्न—शुद्धोपयोग और अशुद्धोपयोग किस को कहेते है।

उत्तर—वीतराग भाव को शुद्धोपयोग कहेते, है तथा पुण्य तथा पाप रुप भाव को अशुद्धोपयोग कहेते है ।

प्रश्न—जीव द्रव्य का क्या स्वरुप है?

उत्तर—जीव द्रव्य दो प्रकार का है। १ संसारी जीव २ मुक्त जीव।

प्रश्न—संसारी जीव द्रव्य का क्या स्वरुप है?

उत्तर—जो सदाकाल (त्रिलाकमें) तादात्म सम्बन्धसे चैतन्य प्राणकर और संयोग सम्बन्धसे जो चारप्राणो कर अर्थात बलप्राण, इन्द्रियप्राण, आयुप्राण तथा स्वासोस्वास प्राण कर जीता है वह जीवद्रव्य है। जो निश्चयनयकी अपेक्षासे अपने चेतना गुणसे अभेद एक वस्तु है, तथा व्यवहारनयकर गुणभेदसे चेतनागुण कर संयुक्त है इस कारण जानने वाला हैं। जो उपयोगरुप परिणामोसे विशेषित. कहिये लिखा जाता हैं। जो आश्रव संवर बन्ध निर्जरा और मोक्ष इन पदार्थों में तादात्म सम्बन्धसे भाव कर्मो की समर्थता संयुक्त हैं, तथा संयोग सम्बन्धसे पुद्गलीक द्रव्य कर्मो की इश्वरता संयुक्त है इस कारण प्रभू है। जो तादात्म सम्बन्ध से पोद्गलीक द्रव्य कर्मों का निमित पाकर जो जो अपना

विकारी परिणाम होता है उसी परिणामो का कर्ता है तथा संयोग सम्बन्ध से अपना अशुद्ध परिणामो का निमित पाय जो ज्ञानावरणादि पुद्गलीक कर्म उपजते हैं उसी का कर्ता है। जो तादात्म सम्बन्ध से पुद्गलीक शुभ अशुभ कर्मों के निमित से जो अपना सुख दुःख रूप परिणामो तिन का भोक्ता है, और संयोग सम्बन्ध से शुभ अशुभ पुद्गलीक कर्मो का उदय से उत्पन्न जो इष्ठ अनिष्ठ पुद्गलीक विषयो तिनका भोक्ता है। जो तादात्म सम्बन्ध से यधपि लोक मात्र असंख्यात प्रदेसी है तोभी संयोग सम्बन्ध की अपेआ से अपनी शंकोचविस्तार शक्ति से पुद्गलीक नाम कर्म के द्वारा निर्मापित जो लघु दीर्घ शरीर उस के परिमाण ही तिष्टे है इस कारण स्वदेहपरिमाण है। जो संयोग सम्बन्ध से पुद्गलीक कर्मनसे एक स्वभाव होने से मूर्तीक विभाव परिणामरूप परिणमता है, तथापि तादात्म सम्बन्ध से स्वाभाविक भाव से अमूर्तीक है। तादात्म सम्बन्ध से पुद्गलीक कर्मों का निमित्त पाय उत्पन्न हुये अपना जो चैतन्य विभाव परिणाम उनकर संयुक्त है और संयोग सम्बन्ध से अशुद्ध चैतन्य का प्ररिणामो का निमित पाय जो ज्ञानावरणादि पुद्गलीक कर्मो हुए हैं, तिनकर संयुक्त हैं। पंचास्तिकाय गाथा २७ में कहा भी है — कि

जीवोत्ति हवदि चेदा उपयोग विसेसिदो पहू कत्ता, भोत्ता, य देहमत्तो ण हि मुत्तो कम्मसंजुतो २७॥

प्रश्न— मुक्त जीव का क्या स्वरूप है?

उत्तर— जो ज्ञानावरणादि अप्ट कर्म, तथा रागादिक भाव कर्म कर सर्व प्रकारसे मुक्त हुआ है। अप्ट कर्मो का अभाव होने से जीसने अनतज्ञान, अनंतदर्शन, अनतसुख, अनंतवीर्य, अव्याबाद, अवगाहना, अगुरुलघु तथा शुक्षम्त्व गुणोनी प्राप्ती की है। मोक्ष अवस्था मे भी इसके आत्मीक अवीनासी भावप्राण है। उनसे सदा जीवे है। जीसने समस्त आत्मीक शक्तियोकी समर्थता प्रगट की है जीस कारण से प्रभूत्व भी कहा जाता हैं। अपने स्वरुप मे सदा परिणमता है। तातैं यही जीव कर्ता हैं। स्वाधीन सुख की प्राप्ती से यही जीव भोक्ता भी कहा जाता हैं। चर्म शरीर अवगाहन मे किंचत उन पुरुपाकार आत्म प्रदेसोकी अवगाहना लिये हैं। इस कारण देह मात्र भी कहा जाता है। जो लोक के अग्रभाग पर अपने आत्मीक प्रदेसोमे बीराजमान हैं। जो सविकार पराधीन इन्द्रिय सुख से रहित अमर्यादीत आत्मीक स्वाभावीक अनीन्द्रिय सुख को भोगता हैं। पंचास्तिकायग्रन्थ की गाथा २८ मे कहा भी है कि—

कम्म मल विप्पमुक्को ऊड्ढ लोगस्स अंतमधिगंता।
सो सव्वणाणदरिसी लहदि सुहमणिंदियमणंतं॥

प्रश्न—ज्ञानोपयोग के कितने भेद है?

उत्तर—ज्ञानोपयोग आठ प्रकार का है। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यय ज्ञान, केवलज्ञान यह पाच प्रकार के सम्यग्ज्ञान है और कुमति कुश्रुत और विभंगावधि ये तीन ज्ञान

कुज्ञान भी है । यथार्थ में ज्ञान का भेद पांच ही हैं, परन्तु मिथ्यादर्शन के कारण तीन ज्ञान को कुज्ञान कहा जाता है और वही ज्ञान सम्यगदर्शन होनेसे सम्यग्ज्ञान कहा जायगा। स्वाभाविक भावसे यह आत्मा अपने समस्त प्रदेशव्यापी अनंत निरावरण शुद्धज्ञान संयुक्त है। परन्तु अनादिकालसे लेकर कर्म संयोगसे दुषित हुवा प्रर्वते है। इसलिये सर्वांग असंख्यात प्रदसोमे ज्ञानावरण कर्म के द्वारा आच्छादित है। उस ज्ञानावरण कर्मोंके क्षयोपसमसे मतिज्ञान प्रगट होता है तब मतिज्ञान द्वारा पांच इन्द्रियोंके अवलम्बनसे किंचत मूर्तीक द्रव्यको विशेपकर जिस ज्ञानके द्वारा परोक्षरुप जानता है उसका नाम मति ज्ञान हैं। मतिज्ञानका भेद दो प्रकारका है। १ व्यंजनावग्रह २ अर्थावग्रह

प्रश्न—अर्थावग्रह और व्यंजनाग्रह का क्या स्वरुप है ?

उत्तर—अप्राप्त पदार्थके ग्रहणको अर्थावग्रह कहते हैं और प्राप्त पदार्थक ग्रहणको व्यंजनावग्रह कहते है।

स्पष्ट ग्रहणको अर्थावग्रह और अस्पष्ट ग्रहणको व्यंजनावग्रह नही कहा जा शकता, क्योंकि, स्पष्ट ग्रहण और अस्पष्ट ग्रहण तो चक्षु व मनके भी रहता, है, अतः अैसा माननेपर उन दोनोके भी व्यंजनावग्रहके अस्तित्व का प्रसंग आवेगा। परन्तु अैसा हो नही शकता, क्योंकि, चक्षु और मनसे व्यंजन पदार्थका अवग्रह नहि होता है, इस प्रकार शूत्र द्वारा उन दोनोके व्यंजनावग्रहका प्रतिषेध किया गया है। यदि कहोकि धीरे धीरे

जो ग्रहण होता है वह व्यंज्जनावग्रह है, सो भी ठीक नही है; क्योकि इस प्रकारके ग्रहणका अस्तित्व चक्षु और मनके भी है, अतः उनके भी व्यंज्जनावग्रह रहनेका प्रसंग आवेगा। और उन दोनोमें शनैर्ग्रहण असिद्ध नही है, क्योंकि, ऐसा माननेसे अक्षिप्र भंगका अभाव होनेपर चक्षु निमित्तक अडतालीस मती ज्ञानके भेदोंके अभावका प्रसंग आवेगा।

शंका— श्रोत्रादि चार इन्द्रियोमें अर्थावग्रह नही है, क्योकि उनमे प्राप्त ही पदार्थका ग्रहण पाया जाता है ?

समाधान—ऐसा नही है, क्योकि, वनस्पतियोमे अप्राप्त अर्थका ग्रहण पाया जाता है।

शंका— वह भी कहासे जाना जाता है ?

समाधान—क्योकि दुरस्थित निधि–(खाद्यपदार्थ) को लक्षकर शाखा का छोडना अन्यथा बन नहीं शकता है। (ध. ९–१५६)

शंका—निम्न लिखित शूत्रसे इन्द्रियोके प्राप्त पदार्थका ग्रहण करना जाना जाता है ?

पुट्ठ सुणेइ सद्दं अप्पुट्ठं चेय पस्सदे रूवं।
गन्धं रसं च फासं बद्ध पुट्ठं च जाणादि॥ ५४

अर्थ— श्रौत्र से स्पृष्ट, शव्द को सुनता है। परन्तु चक्षु से रूपको अस्पृष्ट ही दिखता है। शेष इन्द्रियों से गन्ध रस और स्पर्श को बद्ध व स्पृष्ट जानता है।

समाधान— ऐसा नहि हैं, क्योंकि, वैसा होनेपर अर्थावग्रहके लक्षणका अभाव होनेसे गधेके सीगके समान उसके अभावका प्रसंग आवेगा।

शंका— फिर इस गाथाके अर्थका व्याख्यान कैसे किया जाता है।

समाधान— इस शंकाके उत्तरमे कहते है, चक्षु रूपको अस्पृष्ट ही ग्रहण करती है, च शब्दसे मन भी अस्पृष्ट वस्तुको ग्रहण करता है। शेषइन्द्रियां गन्ध, रस, और स्पर्सको बद्ध अर्थात अपनी अपनी इन्द्रियोमे नियमित व स्पृष्ट ग्रहण करती है, च शब्दसे अस्पृष्ट भी ग्रहण करती हैं। स्पृष्ट शब्दको शुनता है यहां भी बद्ध और च शब्दोको जोडना चाहिये, क्योंकि, ऐसा न करनेसे दूषित व्याख्यानकी आपति आती हैं। (ध, ९. १६०) व्यंज्जन अवग्रह स्पर्स, रस, ग्रन्ध, श्रौतका होता हैं। उसीका विषयकी दृष्टिसे बहु, बहुविध, क्षिप्र, अनिसृत, अनुक्त और ध्रुव तथा इनसे विपरीत, एक, एकविध, अक्षिप्र, निसृत, उक्त और अध्रुवके भेदसे बारह प्रकार प्रत्यय होता है। इसी प्रकार व्यंज्जनावग्रहका ४८ अडतालीस भेद होता है।

अर्थावग्रह, स्पर्स, रस, घ्राण, चक्षु श्रौत्र और मन द्वारा होता है और उसीका भी बहु बहुविधि आदि बाराह प्रत्ययकाभेद द्वारा गुणाकार करनेसे ७२ बोहतर भेद हुवा! इसको अवग्रह, ईहा अवाय, धारणा चार मतिज्ञानका भेदसे गुणाकार करनेसे २८८,

भेद होता हैं। इसी प्रकार व्यंज्जनावग्रहका ४८ भेद तथा अर्थावग्रका २८८ भेद जोडनेसे कुल ३३६ भेद मतीज्ञानका होता है।

स्पर्स इन्द्रिय द्वारा मतिज्ञानका अर्थावग्रहका ४८ तथा व्यंज्जनावग्रहका १२ भेद मीलकर ६० भेद होता हैं। रसनइन्द्रिय द्वारा मतिज्ञानका अर्थावग्रहका ४८ भेद तथा व्यंज्जनावग्रहका १२ भेद मीलकर ६० भेद होता है। घ्राणइन्द्रिय द्वारा मतिज्ञानका अर्थावग्रहका ४८ भेद तथा व्यंज्जनावग्रहका १२ भेद मीलकर ६० भेद होता है। चक्षुइन्द्रिय द्वारा मतिज्ञानका अर्थावग्रहका ४८ भेद होता हैं। चक्षुइन्द्रियका व्यंज्जनावग्रहका भेद नहि होता हैं। श्रौत्रइन्द्रिय द्वारा मतिज्ञानका अर्थावग्रहका ४८ भेद तथा व्यंज्जनावग्रहका १२ भेद मीलकर ६० भेद होता है। मननोइन्द्रिय द्वारा मतिज्ञानका अर्थावग्रहका ४८ भेद होता हैं। मननोइन्द्रियका व्यंज्जनावग्रह नही होता है। इसीप्रकार ६०+६० +६०+४८+६०+४८ जोडकर ३३६ भेद होता हैं।

प्रश्न— मतिज्ञानके वहु, वहुविध आदिकका क्या स्वरुप हैं?

उत्तर— उसीका स्वरुप निम्न प्रकार है।

वहु— मध्यमा और प्रदेशनी इन दो अंगुलीयोंका एक साथमें ज्ञान होना वहु प्रत्ययका भेद है।

एक— एक शब्द के व्यवहारका कारण भूत प्रत्यय एक प्रत्यय हैं,

बहुविध—बहुविधका ग्रहण भेद प्रगटकरनेके लिये है, अतः बहुविधका अर्थ बहुत प्रकार है। जातिमे रहनेवाली बहुसंख्याको अर्थात अनेक जातियोको विषयकरने वाला प्रत्यय बहुविध कहलाता है। गाय, मनुष्य, घोडा, हाथी आदि जातियोमे रहने वाला अक्रम प्रत्यय चक्षुर्जन्य बहुविध प्रत्यय है। तत; वितत, धन और सुसिर आदि शब्द जातियोको विषय करने वाला अक्रम प्रत्यय श्रौत्रजन्य बहुविध प्रत्यय है। कपूर, अगुरु, चन्दन आदि सुगंधी द्रव्योमे रहने वाला यौगपद्य प्रत्यय घ्राणज बहुविध प्रत्यय है। तिक्त; कषाय, आम्ल, मधुर और लवण रसोमें एक साथ रहने वाला प्रत्यय रसजन बहुविध प्रत्यय है। स्निग्ध, रुक्ष, मृदु, कठीन उष्ण, शीत गुरु लघु आदि स्पर्सोमे एक साथ रहने वाला स्पर्सन बहुविध प्रत्यय है।

एकविध— एक जातिको विषय करनेका कारण इसके प्रतिपक्ष भूत प्रत्ययको एकविध कहते है। इसका अन्तरभाव एक प्रत्ययमे नहि हो सकता है; क्योंकि, वह एक प्रत्यय व्यक्तिगत एकतामे सम्बन्ध रखने वाला है, और यह अनेक व्यक्तियोमे सम्बन्ध एक जातिमे रहने वाला है।

क्षिप्र— क्षिप्रवृती अर्थात सीघ्रतासे वस्तुको ग्रहण करने वाला प्रत्यय क्षिप्र कहा जाता है।

अक्षिप्र— नवीन सकोरेमे रहने वाले जलके समान धीरेवस्तुको ग्रहण करने वाला अक्षिप्र प्रत्यय है।

अनिःसृत— वस्तुके एक देशका अवलम्बन करके पूर्ण रुपसे वस्तुको ग्रहण करने वाला तथा वस्तुके एक देश अथवा समस्त वस्तुका अवलम्बन करके वहां अविद्यमान वस्तुको विषय करने वाला भी अनिःसृत प्रत्यय है। यह प्रत्यय असिद्ध नही है, क्योंकि, घटके अर्वाग भागका अवलम्बन करके कही घट प्रत्ययकी उत्पति पायी जाती है, कही पर अर्वाग भागका एक देशका अवलम्बन करके उक्त प्रत्ययकी उत्पति पायी जाती है।

निःसृत— अनिःसृतका प्रतिपक्षीभूत नि.सृत प्रत्यय है, क्योंकि, कहीं पर किसि कालमें आलम्बनी भूत वस्तुके एक देशमें उतनेही ज्ञानका अस्तित्व पाया जाता है।

अनुक्त—इन्द्रियके प्रतिनियत गुणसे विशिष्ट वस्तुके ग्रहण कालमें ही उस इन्द्रियके अप्रतिनियत गुणसे विशिष्ट उस वस्तुका ग्रहण जिससे होता है वह अनुक्त प्रत्यय है। यह असिद्ध भी नही है, क्योंकि, चक्षुसे लवण, शक्कर आदिके ग्रहण कालमेंही कभी उनके रसका ज्ञान हो जाता है। दही के गन्ध के ग्रहण काल में उसके रसका ज्ञान होजाता है। दीपकके रुपके ग्रहण कालमें ही कभी उसके स्पर्शका ग्रहण होजाता है। शब्दके ग्रहण कालमें ही संस्कार युक्त किसी पुरुषके उसके रसादि विषयक प्रत्ययकी उत्पति भी पायी जाती है।

उक्त—अनुक्तके प्रतिपक्ष रुप उक्त प्रत्यय है।

शंका—निःसृत और उक्त में क्या भेद है।

समाधान—नही, क्योंकि, उक्त प्रत्यय निःसृत और अनिःसृत दोनो रूप है अतः उसका निःसृत के साथ एकत्व होनेका विरोध है।

ध्रुव—यह वही है, वह मै ही हूं इस प्रकारका प्रत्यय ध्रुव कहलाते हैं।

अध्रुव—ध्रुवका प्रतिपक्ष भूत प्रत्यय अध्रुव है।

शंका—मनसे अनुक्त का क्या विषय है?

समाधान—अदृष्ट और अश्रुत पदार्थ इसका विषय है। और उसका वहां रहना असिद्ध नही है, क्योकि उपदेशके विना अन्यथा द्वादशांग श्रुतकाज्ञान नही बनशकता है, अतएव उसका अदृष्ट व अश्रुत पदार्थमे रहना सिद्ध हैं। (ध. ९–१५०–५५)

श्रुतज्ञान—श्रुतज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमसे मनके अवलम्बनसे किंचित मूर्तीक अमूर्तीक द्रव्य जिसके द्वारा जाना जाय उस ज्ञानका नाम श्रुतज्ञान है। एक वस्तुसे दुसरी वस्तुका ज्ञान होना श्रुत ज्ञान है। जैसे ठंडी हवाका ज्ञान होनेबाद विचारना कि यह हवा मेरी प्रकृतिसे विरुद्ध है, मुजको वाधा, नुकशान कारक है वह सोचना श्रुतज्ञान है। इस ज्ञानमे इन्द्रियोके द्वारा पहेले मति ज्ञान होता है अर्थात मतिज्ञान पूर्वक ही श्रुतज्ञान होता है। श्रुत ज्ञानके दो अनेक और बारह भेद हैं।

दोभेद १ अंङ्गबाह्य २ अंङ्गप्रविष्ट

अनेकभेद—अंङ्गबाह्य के अनेक भेद हैं जो गणधर और

उनके शिष्यादि द्वारा प्रणीत होता है।

द्वादसभेद—१ आचारंग, २ सूत्रकृताग, ३ स्थानाग, ४ समवायाग, ५ व्याख्या प्रज्ञप्तिअंग, ६ ज्ञातृधर्मकथाग, ७ उपासकाध्ययनाग, ८ अन्तकृतदशाग, ९ अनुत्तरोत्पादिकदशांग, १० प्रश्नव्याकरणांग, ११ विपाकशूत्राग १२ दृष्टिवादाग।

अवधिज्ञान—अवधिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से जिस ज्ञान के द्वारा एकदेश प्रत्यक्ष रूप मूर्तीक द्रव्य मन द्वारा जाने तिसका नाम अवधिज्ञान है। अवधिज्ञान का जधन्य से द्रव्य क्षेत्र काल और भाव की अपेक्षासे एक जीवके औदारिक शरीर के सचय के लोकाकासके प्रदेश प्रमाण खन्ड करनेपर उनमेसे एकखन्ड तकको जानता है और उत्कृष्टसे अवधिज्ञान एक परमाणुतक को जानता है। (ध. १ ९३)

अवधिज्ञान देव और नारकीयो को होता ही हैं उसी को भवप्रत्यय अवधि कहेते है। तिर्थंकरो भी अवधिज्ञान साथ लेकर ही जन्म लेते है। सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देव मनुष्यमें उत्पन्न होते हैं तब नियमसे सब अवधिज्ञान सहित लेकर ही जन्म लेते हैं। (ध.—६—५००)

मनःपर्यज्ञान—मनःपर्ययज्ञानवरण कर्म के क्षयोपशमसे अन्य जीव के मनोगत मूर्तीक द्रव्य को एक देश प्रत्यक्ष जिस ज्ञानसे मन के द्वारा जाने उसका नाम मनःपर्ययज्ञान कहा जाता है। मनःपर्ययज्ञान के दो भेद हे। १ ऋजुमति २ विपुलमति

मन:पर्ययज्ञान ।

प्रश्न—अवधिज्ञान और मन:पर्ययज्ञानमें क्या भेद है ?

उत्तर—मन:पर्ययज्ञान विशिष्ट संयम के निमित्त से उत्पन्न होता है । किन्तु अवधिज्ञान भव के निमित्तसे और गुण अर्थात क्षयोपशम के निमित्तसे उत्पन्न होता है । मन.पर्यय-ज्ञान तो मतिज्ञान पूर्वक ही होता है, किन्तु अवधिज्ञान अवधिदर्शन पूर्वक ही होता है । यह उन दोनोंमें भेद है। (ध.—६—२९)

केवलज्ञान—सर्वथा प्रकार ज्ञानावरण कर्म के क्षय होनेसे जिस ज्ञान के द्वारा समस्त मूर्तीक अमूर्तीक द्रव्य, गुण, पर्याय सहित प्रत्यक्ष जाने जाय, अर्थात अतःकरण, इन्द्रिय, परोपदेश, उपलब्धि, संस्कार, प्रकाशादि की अपेक्षा रखे विना ही एक आत्म स्वभाव को ही ग्रहण कर सर्व द्रव्य पर्याय को एकही समयमें व्याप्यकर प्रवर्तता है वही ज्ञान जो केवल आत्मद्वारा ज उत्पन्न होता है वही ज्ञानका नाम केवल ज्ञान है ।

प्रश्न—दर्शनोपयोग के कितने भेद है ?

उत्तर—दर्शनोपयोग के चार भेद है । १ चक्षुदर्शन २ अचक्षुदर्शन ३ अवधिदर्शन ४ केवलदर्शन । इन चार भेदो द्वारा दर्शनोपयोग जानना । दर्शन और ज्ञानमें सामान्य और विशेषका भेद है । जो विशेपरूप जानै उस को ज्ञान कहेते है इस कारण दर्शनका सामान्य जाननां लक्षण है । आत्मा स्वाभाविक भावोसे सर्वांग प्रदेसोमें निर्मल अनंत दर्शनमयी है, परन्तु वही

आत्मा अनादि दर्शनावरण कर्म के उदयसे आच्छादित है इस कारण दर्शन शक्तिसे रहित है। वस्तुओका आकार न कर के, व पदार्थोमें विशेषता न करके जो वस्तु सामान्यका ग्रहण किया जाता है उसे ही सास्त्रमें दर्शन कहा है।

शंका—इस प्रकार सामान्यसे दर्शनकी सिद्धि और केवल दर्शनकी सिद्धि भी भले हो जावे, किंतु उससे शेष दर्शनकी सिद्धि नही होती है, क्योंकि,

चक्खूण जं पयसादि दिस्सदि त चक्खु दसणं वेंति।
दिट्ठस्स यं जे सरणं णायव्व तं अचक्खुत्ती॥

अर्थ— जो चक्षु इन्द्रियोको प्रकासीत होता है या दिखता है उसे चक्षु दर्शन समजा जाता है और जो अन्य इन्द्रियोसे देखे हुए पदार्थका ज्ञान होता है उसे अचक्षु दर्शन जानना। (ध-७-१००)

समाधान— ऐसा नही है, क्योंकि तुमने इस गाथाओ का परमार्थ नही समजा।

शंका— वह परमार्थ कोनसा है?

समाधान— कहते है, जो चक्षुओको प्रकासीत होता है अर्थात दिखता है, अथवा आख द्वारा दिखा जाता है, वह चक्षु दर्शन है, इसका अर्थ ऐसा समजना चाहिये कि चक्षु इन्द्रिय ज्ञानसे जो पूर्व ही सामान्य स्व शक्तिका अनुभव होता है, जो कि चक्षु ज्ञानकी उत्पत्ति मे निमित्त रुप है वह चक्षु दर्शन है।

शंका— उस चक्षु दर्शनके, विषयसे प्रतिबद्ध अन्तरंग शक्तिमे चक्षु इन्द्रियकी प्रवृति कैसे हो शकती है ?

समाधान— नही, यथार्थमे तो चक्षु इन्द्रियकी अन्तरंगमे ही प्रवृति होती है, किन्तु बालकजनोको ज्ञान करानेके लिये अंतरंगमे बहिरंग पदार्थ को उपचारसे चक्षुओ को जो दिखता है वही चक्षुदर्शन है अैसा प्ररुपण किया हैं।

शंका— गाथा का गला न घोटकर सीधा अर्थ क्यो नहि करते ?

समाधान— नहीं करते, क्योंकि, वैसा करनेमे तो समस्त दोषोका प्रसंग आता है।

गाथाके उत्तरार्धका अर्थ इस प्रकार है, जो दिखा गया हैं, अर्थात जो पदार्थ शेष इन्द्रियोके द्वारा जाना गया है, उससे जो शरण अर्थात ज्ञान होता है उसे अचक्षु दर्शन जानना चाहिये। चक्षुइन्द्रियको छोड शेष इन्द्रिय ज्ञानकी उत्पति से पूर्व ही अपने विषयमे प्रतिबद्ध स्वशक्ति का अचक्षुज्ञानकी उत्पतिका निमित्त भूत जो सामान्यसे संवेद या अनुभव होता है वह अचक्षु दर्शन है अैसा कहा गया है। (ध—७—१०१)

चक्षुदर्शन— चक्षु दर्शनावरण कर्मके क्षयोपशमसे बहिरंग 'नेत्रके अवलम्बनकर चक्षु ज्ञानके पूर्वमे अर्थात चक्षुअवग्रहके पूर्वमे जो सामान्य निर्विकल्प अवलोकन होता हे उसीका नाम चक्षु दर्शन है। एक ज्ञेयसे दुसरे ज्ञेयपर ज्ञानका घुमनेकी वीचमे जो कालका

अन्तर पडता है, उसीका नाम चक्षुदर्शन है।

अचक्षुदर्शन— अचक्षुदर्शनावरणीय कर्मका क्षयोपशमसे बहिरंग नेत्र इन्द्रियके विना चार इन्द्रियो और द्रव्य मनके अवलंम्बनसे चक्षु इन्द्रियको छोडकर शेष इन्द्रिय ज्ञानकी उत्पति के पूर्वमे जो सामान्य निर्वीकल्प अवलोकन होता है उसे अचक्षुदर्शन कहते है।

अवधिदर्शन—अवधिदर्शना वरणीय कर्मके क्षयोपशमसे अवधिज्ञानकी पूर्वमे क्षो निर्वीकल्प सामान्य अवलोकन होता है उसे अवधिदर्शन कहते है।

शंका--विभंग दर्शनका प्रथकरूप से उपदेश क्यो नही दीया?

समाधान—नही, क्योकि, इसका अवधिदर्शनमे अन्तर्भाव होजाते है।

शका—तो मन.पर्यय दशनको भिन्नरूपमे कहना चाहिये।

समाधान— नही क्योंकि, मनःपर्ययज्ञान मतिज्ञान पूर्वक होता है इसलिये मनःपर्यय दर्शन नहि होता है।

केवलदर्शन— सर्वथा दर्शनावरणीय कर्मके क्षयसे समस्त मूर्तीक अमूर्तीक पदार्थोंको प्रत्यक्ष सामान्यरुपसे अखन्ड भेद किया विना लिया जाय उसको केवल दर्शन कहते है।

प्रश्न— दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोगमे क्या भेद है, अव अेक साथ छमस्थो को क्यो नहि होता है?

उत्तर— नही, क्योकि उत्तर ज्ञानकी उत्पत्ति के निमित्तभूत

प्रयत्न विशिष्ट स्वसंवेदन को दर्शन माना है। परन्तु केवलींमे यह क्रम नही पाया जाता है, क्योकि वहांपर अक्रमसे ज्ञान और दर्शनकी प्रवृती होती है। छद्मस्थोमें दर्शन और ज्ञान इन दोनोकी अक्रमसे प्रवृत्ती होती है, यदि असा कहा जावे सो भी ठीक नहि है, क्योंकि, छद्मस्थोके दोनो उपयोग अेक साथ नही होता है, असा आगम वचनसे छद्मस्थोके दोनो उपयोगोके अक्रमसे होनेका प्रतिषेध हो जाता है। ज्ञानपूर्वक दर्शन होता है यदि असा कहा जावे सो भी ठीक नही है, क्योकि दर्शनपूर्वक ज्ञान होता है, किन्तु ज्ञानपूर्वक दर्शन नही होता असा आगम वचन है। (ध. ३. ४५७)

शंका— द्रव्यइन्द्रियोको इन्द्रिय संज्ञा क्यो दि ?

समाधान— क्षयोपशम भावेन्द्रियोके होनेपर ही द्रव्येन्द्रियोकी उत्पति होती है। इसलिये भावेन्द्रिया कारण है और द्रव्येन्द्रिया कार्य है इसलिये द्रव्येन्द्रियोको भी इन्द्रिय यह संज्ञा प्राप्त है। अथवा उपयोगरुप भावोन्द्रियोकी उत्पति द्रव्येन्द्रियोके निमित्त से होती है इसलिये भावेन्द्रिया कार्य है और द्रव्येन्द्रिया कारण है इसलिये भी द्रव्येन्द्रियो को इन्द्रिय संज्ञा प्रास है। (ध. १. १३५)

प्रश्न—एक जीवमे **एकी** साथमें कितना ज्ञान की लब्धि प्राप्त हो शकती है ?

उत्तर—जीवमें यदी १ ज्ञान होगा तो वह केवलज्ञान होगा। यदी दो ज्ञान की लब्धि होगी तो मति ओर श्रुतज्ञान होगा।

यदी तीन ज्ञान की लब्धि होगी तो मति श्रुत, अवधिज्ञान अथवा मति श्रुत मनःपर्यय ज्ञान होगा, यदि जीवमे चार ज्ञान की लब्धि होगी तो मति श्रुत अवधि, और मनःपर्ययज्ञान प्राप्त हो शकता है। परन्तु इसमेसे एक समयमे एक ही ज्ञान का उपयोग हो शकता है, उस समय बाकी के ज्ञान की लब्धि सत्ता रूप रहती है। क्योंकि एक साथमे दो पर्याय कभी भी नही होगी। जब तक जीवमे मिथ्यादर्शन होगा तब तक मति श्रुत, और अवधि ज्ञान, को मिथ्याज्ञान कहा जाता है। और जीवमे जब सम्यगदर्शन की प्राप्ति होगी तब वही ज्ञान को सम्यग ज्ञान कहा जाता हैं।

शंका—मनः पर्यय ज्ञान को मिथ्या ज्ञान क्यों नही कहा जाता ?

समाधान—मनः पर्यय ज्ञान सम्यगदर्शन हुवा बाद ही संयमी भावलीगी मुनि को ही होता है इस कारण से वह ज्ञांन सम्यगज्ञान ही होता है।

मिथ्यादृष्टि का ज्ञान चेतना जैसे मिथ्या ज्ञान कहलाती है उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि का दर्शन चेतना मिथ्या नहि कहलाती है।

शंका—मिथ्यादृष्टि की दर्शन चेतना मिथ्या न होनेका क्या कारण है ?

समाधान—दर्शन चेतना सामान्य अवलोकन करती है, भेद पाडकर अवलोकन नहि करती है। इसी कारण सामान्य अवलोकनमे मिथ्या अवलोकन हो नहि शकता। ज्या भेद पाडकर

अवलोकन होता है उसीमे मिथ्या हो जाने का संभव है। इसी कारण दर्शन चेतनामे मिथ्या का भेद नहि पडता है। दर्शन चेतना निर्विकल्प है और निर्विकल्पमे मिथ्या हो नहि शकता।

प्रश्न— ज्ञानचेतना तथा दर्शनचेतना के भेदमे परोक्ष और प्रत्यक्ष भेद कोनसा है?

उत्तर— मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान तथा मनःपर्ययज्ञान अेवम् चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन तथा अवधिदर्शन इसको क्षयेोपशम चेतना कहेते हैं। क्षयेोपशम चेतना पराधीन अर्थात परोक्ष चेतना है। केवलज्ञान, केवलदर्शन यह दो चेतना क्षायीक चेतनां है अर्थात कर्मका अभावमे यह शक्ति आत्मामे प्रगट होती है। यह दोनो चेतना प्रत्यक्ष चेतना है।

मति तथा श्रुतज्ञानको परोक्ष ज्ञान कहा हैं। अर्थात बह ज्ञान इन्द्रिय, व, मन की सहायतासे जानता हैं। यदी मनः और इन्द्रिया खराब हो जावेतो क्षयेोपशमकी लब्धि प्राप्त होनेसे भी वह देख-जान शकता नहि हैं। अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान को अेक देश प्रत्यक्ष कहा है। अेक देश प्रत्यक्ष का यह अर्थ है कि जिश देखनेमे मनः छोडकर अन्य इन्द्रियादि की सहायताकी जरूर नहि पडती इस अपेक्षासे अेक देश प्रत्यक्ष कहा है।

प्रश्न— यह पराधीनता साधारण जीवोके लिये है, कि तिर्थंकरादि महा पुण्यशाली जीवोके लिये भी है?

उत्तर— क्षमेोपशमज्ञान का कानुन सब जीवोके लिये समान

है। वडे पुरुष, या, छोटे पुरुप का अन्तर इसमे नही है। तिर्थंकर प्रकृतिके धारक जीव जव सर्वार्थसिद्ध विमानसे चय कर माताके उदरमे आता है तव उसके तीन ज्ञानका क्षयोपशम है, परन्तु माताके उदरमे जवतक पर्याप्त अवस्था यथायोग्य न हुई हो तव तक वह जीव भी देख और जान शकता नहि हैं। अैसी अवस्थामे उसका क्षयोपशमज्ञान लब्धि रुप रहता है। पंचाध्यायमे भी कहा है कि—

छद्मस्थावस्थायाभावर्णेन्द्रिय सहाय सापेक्षम्
यावज्ज्ञान चतुष्टयमर्थात सर्वपरोक्षमिववाच्यम्

अर्थ— छद्मस्थ अवस्थामे आवरण और इन्द्रियो की सहायता की अपेक्षा रखनेवाले प्रारंभके ४ चार ज्ञान परमार्थ से परोक्ष कहना चाहिये।

प्रश्न—परोक्ष का क्या स्वरुप है ?

उत्तर—उपात्त–और अनुपात्त इतर कारणों की प्रधानता से जो ज्ञान होता है वह ज्ञान परोक्ष ज्ञान है। यहा उपात्त शब्दसे इन्द्रिया व मन तथा अनुपात शब्दसे प्रकास व उपदेशादिक का ग्रहण किया गया है। उन की प्रधानतासे होनेवाला ज्ञान परोक्ष कहलाता है। जिस प्रकार गमन शक्ति से युक्त होते हुए भी स्वयं गमन करनेमे असमर्थ व्यक्ति का लाठी आदि आलंबन की प्रधानता से गमन होता है, उसी प्रकार मतिज्ञानावरण और श्रुतज्ञानावरणादि का क्षयोपशम हौनेपर ज्ञम्वभाव परन्तु स्वयं

पदार्थों को ग्रहण करने के लिए असमर्थ हुए आत्मा के पूर्वोक्त प्रत्ययो की प्रधानता से उत्पन्न होनेवाला ज्ञान पराधीन होनेसे परोक्ष है। (ध. ९. १४२)

प्रश्न—प्रत्यक्ष ज्ञान का क्या स्वरुप है?

उत्तर—प्रत्यक्ष ज्ञान का अैसा स्वरुप कहा है कि—

क्षायिकमेकमनतं त्रिकालसर्वार्थ युगपद विभासम निरतिसयमत्यय च्युतज व्यवधानं जिनज्ञानम ॥

अर्थ— जिसका ज्ञान क्षायिक अर्थात असहाय अनन्त तीनो कालके सर्व पदार्थोको एक साथ प्रकासीत करने वाला निरतिसय विनाससे रहित और व्यवधानसे मुक्त है. यह प्रत्यक्ष ज्ञानका स्वरुप है। (ध. ९—१४२)

प्रश्न— लब्धि और उपयोग किसको कहते है?

उत्तर— मतिज्ञानावरणकर्म, श्रुतज्ञानावरणकर्म, अवधिज्ञानावरणकर्म तथा मनः पर्ययज्ञानावरणकर्मका क्षयोपशममे जितना, २ ज्ञानका विकास होता है उस विकासका नाम लब्धि है। और उस ज्ञानका वेपारका नाम उपयोग है. जिस समयमे आत्मा मतिज्ञानसे देखता हैं उसी समयमे मति ज्ञान उपयोग रुप है और श्रुत-अवधि तथा मनःपर्यय ज्ञान लब्धि रुप है, क्योंकि, एक समयमे ज्ञान की एक पर्याय होती है एक साथमे दो, तीन, चार पर्याय नही होती है। इसी प्रकार जब आत्मा अवधि ज्ञानसे दिखता है उसी समय मति श्रुत और मनः पर्यय ज्ञान लब्धि रुपमे है, और अवधिज्ञान उपयोग

रुप है। जीस समयमे जीव मति ज्ञानका अवान्तर भेद चक्षु द्वारा दिखता है, उसी समयमे चक्षु इन्द्रियमे मतिज्ञान उपयोग रुप है और उसी समयमे स्पर्स-रस घ्राण श्रौत्र और मनमे मति ज्ञान लब्धि रुप है।

प्रश्न— जीस समयमे डोकटर कलोरोफार्म सुंघाडकर ओपरेशन करता है उसी समयमे आत्मा तदन वेभान अर्थात जड सरीखा हो जाता है उसी समयमे क्या आत्मा ज्ञान रहित हो गया ?

उत्तर— कलोरोफार्म जड वस्तु है इसने जड इन्द्रियो पर असर करनेसे जड इन्द्रियों जो आत्माको दिखनेमे निमित कारण थी वह खराब होजानेसे **निमितका अभावसे** आत्माका ज्ञान उपयोग रुप नहि होता है परन्तु, उसी समय आत्माका ज्ञान पराधीन होनेसे लब्धि रुप है। इसी प्रकार चार ही क्षयोपशम ज्ञानकी पराधीनता है।

प्रश्न— जिस प्रकार स्पर्शन इन्द्रियका क्षयोपशम संपूर्ण आत्म प्रदेसोमे उत्पन्न होता है, उसी प्रकार चक्षु आदि इन्द्रियोका क्षयोपशम कया संपूर्ण आत्म प्रदेसोमे उत्पन्न होता है, या प्रति नियत आत्म प्रदेसोमें ? आत्माके संपूर्ण प्रदेसोमे क्षयोपशम होता है. यह तो माना नही जा शकता है, कयोंकि असा माननेपर आत्माके संपूर्ण अवयवोसे रुपादिककी उपलब्धिका प्रसग आजावेगा। यदि कहा जावेकि संपूर्ण अवयवोमे रुपादिककी उपलब्धि होती है. असा भी कहना ठीक नहि है, कयोंकि सर्वांगसे

रूपादिकका ज्ञान होता हुवा पाया नही जाता। इसलिये सर्वांगसे तो क्षयोपशम माना नही जाता है। और यदी आत्माके प्रति नियत अवयवोंमे चक्षु आदि इन्द्रियोका क्षयोपशम माना जाय, सो भी कहना नही बनता है, क्योंकि, ऐसा मानलेनेपर आत्मप्रदेश चलभी है, अचलभी है, और चलाचलभी है, इस प्रकार वेदना प्राभृतके सूत्रसे आत्म प्रदेसोका भ्रमण अवगत होजानेपर, जीव प्रदेसोंकी भ्रमण रूप अवस्थामे संपूर्ण जीवोका अन्धपनेका प्रसंग आ जावेगा?

उत्तर-- यह कोई दोप नही है, क्योंकि, जीवके संपूर्ण प्रदेसोमे क्षयोपशमकी उत्पति स्वीकारकी है, कयोंकि आत्मा अखंड द्रव्य है, उसका असंख्यात टुकडा नही है। परन्तु ऐसा मान-लेनेपरभी जीवके संपूर्ण प्रदेसोके द्वारा रूपादिककी उपलब्धिका प्रसंगभी नही आता है, क्योंकि, रूपादिकके ग्रहण करनेमे सहकारी कारण रूप बाह्य निवृति जीवके संपूर्ण प्रदेसोमे नही पाई जाती है (ध-१-२३२)

शंका-- आत्माका प्रदेस कैसे घुमता है?

समाधान-- जैसे पुतली गोल घुमती है ऐसा घुमता हैं। जैसे ज्योतषचक्र मेरु पर्वतको प्रदिक्षणा देता हैं। ऐसाही आत्म प्रदेसो प्रदिक्षणा देता है। जोतिषचक्र कि और कर्म चक्रकी समान चाल है, इसपरसे तो जोतिष विद्या द्वारा भूत भविष्यका कर्मका किस प्रकारका उदय होगा वह कह शकते है।

अवधिज्ञानका विपय रुपी पदार्थ है। परमाअवधिज्ञानी जीव,

सुद्ध पुद्गल परमाणुको भी जान शकता हे । अरुपी आत्म प्रदेशोकी जाननेकी ताकाद अवधिज्ञानमे नही है ।

मन.पर्ययज्ञानका विषय स्थुल विकारी आत्मीक भावो जाननेका हे । आत्माका प्रदेस एवं आत्मिक शुद्ध भाव देखनेकी मनःपर्यय ज्ञानमे भी शक्ति नहि है ।

प्रश्न—१ भव्यआत्मा २ अभव्य आत्मा दोनो अनादि मिथ्यादृष्टि है उसीको मन.पर्यय ज्ञानी जान शकता है, कि नही, की इसमे भव्य तथा अभव्य कौन है ?

उत्तर—यह मन.पर्यय ज्ञानी जान नही शकता है, कारणके मनःपर्ययज्ञानका विषय विकारी भाव जाननेका है । भव्य और अभव्य भाव जीवका विकारी परिणाम नही है परन्तु वह तो पारिणामिक भाव है. परिणामिक भाव जाननेकी मनःपर्ययज्ञान मे शक्ति नहि है ।

शंका—अवधिज्ञानी जान शकता है या नहि ; क्योंकि अवधिज्ञानो तो एक शुद्ध पुद्गल परिमाणुको जान शकता है तो कर्म प्रकृतिकी सताद्वारा वह जान शकता है, कि किसकी पासमे मिथ्यात्व कर्मकी सता हैं या नहि है ।

समाधान—यह दोनो जीव अनादिका मिथ्यादृष्टि है, इस कारण दोनोकी पासमे मिथ्यात्व कर्मकी सता मोजुद है, और परिणामिक भाव जाननेकी शक्ति अवधिज्ञानमे है नहि, इसलिये अनादि मिथ्यादृष्टिमे, कोन भव्य और कौन अभव्य जीव है,

इसको अवधिज्ञानीभी नही जान शकता है। अभवी द्रव्य लिंगीको शुक्ष्म मिथ्यात्व रह जाता है वह मात्र केवल ज्ञान गम्य है क्षयोपशम ज्ञानी जान नही शकता हैं।

प्रश्न-- दर्शन चेतना और ज्ञान चेतनामे भेद मालुम पडते नही है। क्योंकि, जिसके द्वारा देखा जाना जाय उसे दर्शन कहते है। दर्शनका इसप्रकार लक्षण करनेपर ज्ञान और दर्शनमे कोई विशेषता नही रह जाती है, अर्थात दोनो एक हो जाते है ?

उत्तर--नही, कयोकि, अन्तर्मुख चितप्रकासको दर्शन और वहिरमुख चितप्रकासको ज्ञान माना है, इसलिये इन दोनोके एक होनेमे विरोध आता है।

शंका--वह चैतन्य क्या वस्तु है ?

समाधान--त्रिकालिविषयक अनन्त पर्यायरूप जीवके स्वरुपका अपने २ क्षयोपशमके अनुसार जो संवेदन होता हैं उसे चैतन्य कहते है।

शंका--अपनेसे भिन्न बाह्य पदार्थोके ज्ञानको प्रकास कहते है, इसलिये अन्तर्मूख चैतन्य और बहिर्मूख प्रकासके होनेपर जिसके द्वारा यह जीव अपने स्वरुपको और पदार्थको जानता है उसे ज्ञान कहते हैं। इस प्रकारकी व्याख्या के सिद्ध हो जानेसे ज्ञान और दर्शनमें अेकता आजाती है, इसलिये उनमे भेद सिद्ध नही हो शकता है ?

समाधान—ऐसा नही है। क्योंकि, जिसतरह ज्ञानके द्वारा यह घट है, यह पट है, इत्यादि विशेष रूपसे प्रतिनियत कर्मकी व्यवस्था होती है उस तरह दर्शन के द्वारा नहि होती है, इस लिये इन दोनोमे भेद हैं।

शंका—यदी ऐसा है तो अन्तरंग सामान्य और बहिरंग सामान्यको ग्रहणकरने वाला दर्शन है तथा अन्तर्बाह्य विशेषको ग्रहण करने वाला ज्ञान है ऐसा मान लेना चाहिये ?

समाधान—ऐसा नही है, क्योंकि, सामान्य अर्थात आत्मा को अखंन्ड जानना कि जिस जानने मे गुणगुणी भेद और गुण पर्यायभेद नहि है ऐसा मात्र ज्ञायक स्वभाव अर्थात चैतन्यपिन्ड, मात्र ज्ञानघन, को जानना दर्शन है, कि जो सम्यगदर्शनका अर्थात श्रद्धाका विषय है, तथा विशेपात्मक अर्थात्त गुणगुणी भेद तथा गुण पर्याय भेद पाडकर आत्माको जानना वह ज्ञान है जो क्रमके विनाही अर्थात एक समयमे ही ग्रहण होता है।

शका—यदि सामान्य विशेपात्मक वस्तुका क्रमके विना ही ग्रहण होता है तो वह भी रहा आओ ऐसा मान लेनेमे कोई विरोध नहि आता ?

समाधान—ऐसा नही है, क्योंकि छद्मस्थोके दर्शनोपयोग तथा ज्ञानोपयोग साथ नहि होता इसकी साथ विरोध आता है।

शका—छद्मस्थोका एकी साथ दोनो उपयोग क्यों नही होता ?

समाधान—छद्मस्थ जीवो के दर्शनोपयोग या ज्ञानोपयोग होनेमे इन्द्रियां नियमसे निमित्त पडती है, इसलिये जब दर्शन-चेतना उपयोग रुप रहती है, उसी समयमे **निमित्त का अभाव के कारण** ज्ञान चेतना लब्धि रुप रहती है, और जब ज्ञान चेतना उपयोग रुप रहती है, उसी समयमे दर्शनचेतना लब्धि रुप रहती हें, इसलिये छद्मस्थ जीवोकी चेतना पराधीन होनेसे अेकी साथ कार्य नही करती परतु क्रम कार्य करती है।

दूसरी बात यह है, कि सामान्यको छोडकर केवल विशेष अर्थ क्रिया करनेमे असमर्थ है। और जो अर्थक्रिया करनेमें असमर्थ होता है वह अवस्तुरुप पडता हे, अतअेव उसका ग्रहण करनेवाला होनेके कारण ज्ञान प्रमाण नही हो शकता है। तथा केवल विशेषका ग्रहण भी तो नही हो शकता हैं। इस तरह केवल विशेषको ग्रहण करनेवाले ज्ञानमे प्रमाणता सिद्ध नही होनेसे केवल सामान्यको ग्रहण करनेवाले दर्शनको भी प्रमाण नही मान सकते हैं। अर्थात जब कि सामान्य रहित विशेष और विशेष रहित सामान्य वस्तुरुपसे सिद्ध ही नही होते है, तो केवल विशेषको ग्रहण करनेवाला ज्ञान और केवल सामान्यको ग्रहण करनेवाला दर्शन प्रमाण कैसे माने जा शकते हे?

शका— यदि अैसा है तो, प्रमाणका अभाव ही क्यो नही मान लिया जाय?

समाधान— यह ठीक नही है, क्योंकि प्रमाणका अभाव

मानलेने पर प्रमेय, प्रमाता आदि समीका अमाव मानना पडेगा।

शंका— यदि प्रमेयादि सभीका ही अभाव होता है तो होओ?

समाधान— यह भी ठीक नही है, क्योंकि प्रमेयादिका अभाव देखनेमे नही आता है, किन्तु उनका सद्भाव ही दृष्टि-गोचर होता है। अतः सामान्य विशेषात्मक बाह्य पदार्थको ग्रहण करनेवाला ज्ञान और सामान्यविशेपात्मक आत्मरुपको ग्रहण करनेवाला दर्शन है, यह सिद्ध होजाता है।

शंका— उक्त प्रकारसे दर्शन और ज्ञानका स्वरुप मान लेने पर 'वस्तुका जो सामान्य ग्रहण होता है उसको दर्शन कहते है' परमागमके इस वचनके साथ विरोध आता है?

समाधान—ऐसा नहि है, क्योंकि आत्मा संपूर्ण बाहय पदार्थोंमे साधारण रुपसे पाया जाता है, इसलिये उक्त वचनमें सामान्य संज्ञा को प्राप्त आत्माका ही सामान्य पदसे ग्रहण किया है। (ध १-१४६)

आत्मामें अनन्त गुण है सर्वगुण स्वतंत्र परिणमन कहते हैं कोइ गुण कोइ गुणके आधिन नहि है। आत्मामे जितना गुण है इतनाही अगुरु लघुगुण है, इसी कारण कोइ गुण कोइ गुणमे मिल नहि जाता है। यह अगुरुलघुगुण समय समयमे पट्गुण हानि वृद्धिलिये आत्माके स्वरुपमे स्थिरताके कारण अगुरुलघु स्वभाव तिसके अविभाग अंश अति सुक्ष्म हैं जो आगम कथीतही प्रमाण कहनेमें

आते है। उन अगुरुलघु गुण अनंत गुणोके द्वारा जितने समस्त जीव है, तितने सब ही परिणमन कहते है, अर्थात ऐसा कोइ जीव नही जो अनंत अगुरुलघु गुण रहित हो, किन्तु सब जीवोमे पाये जाते है। यह सब जीव प्रदेशोके द्वारा लोक प्रमाण असंख्यात प्रदेसी है। अर्थात एक एक जीवमे असंख्यात प्रदेस है। उन जीवोमेसे कितनेही जीव किस एक प्रकारसे दंडकपाटादि अवस्थाओमे तीनसे तेतालीस रज्जु प्रमाण घनाकाररुप समस्त लोकके प्रमाणको प्राप्त हुए है। दंडकपाटादिमे कर्मोके उदयसे प्रदेसोका विस्तार लोक प्रमाण होता है। इस कारण समुद्‌घातकी अपेक्षासे कोइ जीव लोकके प्रमाण अनुसार कहे जाते है। और कोइ जीव समुद्‌घातके विना सर्वलोक प्रमाण नहि है, निज २ शरीरके प्रमाण ही है।

शंका—असंख्यात प्रदेस वाले लोकमे अनंत संख्यावाले जीव कैसे रह शकते है? यदी आकासके एक एक प्रदेसमे एक ही जीव रहेतो भी असंख्यात जीव रहे शकते है? दुसरी वात यह भी है कि आकासके एक प्रदेसमे एक जीव रहता भी नही हे, क्योंकि एक जीवकी जघन्य अवगाहना भी अंगुलके असंख्यात भाग मात्र होती है ऐसा वेदना खन्ड के वेदना क्षेत्र विधान नामक अनुयोगद्वारमे प्रतिपादन किया है इसलिये अदि लोकके मध्यमे जीव रहते है तो वै लोकके असंख्यातमे भाग मात्र ही होना चाहिये?

समाधान—शंकाकारका उक्त कथन घटित नहि होता है

क्योंकि, उक्त कथनके माननेलेनेपर पुद्गलोके भी असंख्यात पनेका प्रसंग आजाता है?

शंका—पुद्गलोके असंख्यात होनेका प्रसंग कैसे आजावेगा?

समाधान—लोकाकासके अेक अेक प्रदेशमे यदी अेक अेक ही परमाणु रहे, तो लोकाकासके प्रदेश प्रमाण ही परमाणु होगे, और शेप पुद्गलोका अभाव हो जावेगा। क्योंकि जिन पुद्गलोको अवकास नहि मिला उनका अस्तित्व माननेमे विरोध आता है। तथा उन लोक मात्र परमाणुओके द्वारा कर्म-शरीर घट-पट और स्तम्भादिकोंमें अेक भी वस्तु निप्पन्न नही हो सकती है, क्योंकि अनंतानंत परमाणुओके समुदायका समागम हुअे वीना अेक अवसन्नासन संज्ञक भी स्कन्धका होना संभव नही है।

शंका—अेक भी वस्तु निप्पन्न न होवे तो भी क्या हानि है?

समाधान—नही क्योंकि अैसा माननेपर समस्त पुदगल द्रव्यकी अनुपलब्धि का प्रसंग आवेगा। तथा सर्व जीवोके अेक साथ ही केवल ज्ञानकी उत्पतीका प्रसंग प्राप्त होता है। इस प्रकारका अति प्रसंग दोप न होवे इस लिये अवगाह्यमान जीव और अजीव द्रव्योंकी सता अन्यथा न बनशकनेमे क्षीरकुंभका मधु कुंभके समान अवगाहन धर्मवाला लोकाकास है अैसा मानलेना चाहिये। (५-४-२२)

प्रश्न—समुद्घात किसे कहते है?

उत्तर—मूल शरीरका अभाव किया बीनाही आत्म प्रदेशोका मूल शरीरसे बहार निकल जाना उसीको समुद्घात कहेते है ?

शंका—समुद्घात कित्तना प्रकारकी होती है ?

समाधान—समुद्घात निम्न प्रकारकी होती है। केवली समुद्घात, वैक्रियक समुद्घात, आहारक समुद्घात, वेदना समुद्घात, कषायसमुद्घात, मरणान्तिकसमुद्घात, तेजस्क शरीर समुद्घात।

शंका—वेदना समुद्धात तथा कषायसमुद्धात यह दोनो मरणान्तिक समुद्घातमे अन्तर्भूत क्यो नहि होते है ?

समाधान—वेदना समुद्घात और कषायसमुद्घात का मरणान्तिक समुद्घातमे अन्तर्भाव नहि होता है, क्योंकि जिन्होने परभवकी आयु बान्धली है अैसे जीवोके ही मारणान्तिक समुद्घात होती है, किन्तु वेदना समुद्घात और कषायसमुद्घात बद्घ आयुष्क जीवोके भी होती है, और अबद्घायुष्क जीवोके भी होती है। मारणान्तिक समुद्घात निश्चयसे आगे जहा उत्पन्न होना है अैसे क्षेत्रकी दिशाके अभिमुख होता है। किन्तु अन्य समुद्घातोके इस प्रकार अेक दिशामे गमनका नियम नही है। क्योंकि उनका दशों दिशाओमें भी गमन होता है। मारणान्तिक समुद्घातकी लंम्बाई उतकृष्ट अपने उतपद्यमान क्षेत्र के अन्ततक है, किन्तु इतर समुद्घातका यह नियम नहीं है। (ध—४—२७)

इति भेदज्ञान शास्त्र विषे सामान्य जीव अधिकार समाप्त हुआ।

प्रमाण, नय, निक्षेप, का स्वरूप

लोकके सभी पदार्थ सामान्य विशेषात्मक है अर्थात अनंत धर्मात्मक है। जब तक सामान्य और विशेषका ज्ञान न हो तब तक जीव पदार्थका यथार्थ ज्ञान कर नहि शकता है। इसलिये सामान्य तथा विशेषका ज्ञान करनां उसीका नाम प्रमाण ज्ञान है अर्थात सम्यक ज्ञान है। प्रमाण ज्ञान ही मोक्षमार्गमे साधक है। और मात्र सामान्यका अर्थात द्रव्यका ज्ञान करना उसीका नाम निश्चय नय अर्थात द्रव्यार्थिकनय है तथा विशेषका अर्थात पर्यायका ज्ञान करनां उसीका नाम व्यवहार नय है अर्थात पर्यायार्थिक नय हे। नय ज्ञान **एकान्त** ज्ञान है और **प्रमाणज्ञान** वही **अनेकान्त** है।

प्रश्न—पर्याय भी द्रव्यका भेद है, अवस्तुतो नही है उसे व्यवहार किस तरह कह शकते है ?

उत्तर—यह तो सत्य है, परन्तु यहा द्रव्य दृष्टिकर अभेदको प्रधानकर कथन किया जाता है इसलिये अभेद द्रष्टिमे भेद गौण करनेसे अभेद का ज्ञान अच्छि तरह हो शकता है इस कारण भेद को गौण कर व्यवहार कहा है।

इसलिये मोक्ष मार्गमे प्रथम प्रमाण नय निक्षेप का ज्ञान करना बडा ही आवश्यक है। प्रमाणादि श्रुतज्ञानकी ही पर्याय है।

प्रश्न—प्रमाणादिकका क्या स्वरुप है ?

उत्तर—कहाभी है कि—

ज्ञानं प्रमाण मित्या हुरुपायो न्यास उच्यते।
नयो ज्ञातुरभिप्रायो युक्ति तोऽर्थ परिग्रहम्ः॥

अर्थ—विद्वान लोग सम्यगज्ञानको प्रमाण कहते है, नामादिकके द्वारा वस्तुमें भेद करनेको न्यास या निक्षेप कहते हैं। और ज्ञाताके अभिप्राय को नय कहते है। इस प्रकार युक्तिसे अर्थात प्रमाण, नय, निक्षेपके द्वारा पदार्थका ग्रहण अथवा निर्णय करना चाहिये। (ध. १ १७)

प्रश्न—प्रमाण. किसे कहते है ?

उत्तर—निर्ग्रोय ज्ञानसे विशिष्ट आत्माको प्रमाण कहते है।

प्रश्न—प्रमाण द्रष्टिकर आत्मा कैसा है ?

उत्तर—यह आत्मा प्रमाण द्रष्टिकर देखा जाय तब एक कालमे अनेक अवस्थारुप भी है, क्योंकि, इसके दर्शन, ज्ञान चारित्र करतो तीन पना है। और आप कर अपने एक पना है।

प्रश्न—प्रमाण और भावमे क्या भेद है ?

उत्तर—स्वगत अर्थात अपने वाच्यगत परिणामके जाननेका कारण प्रमाण और इससे विपरित भाव होता है। इस प्रकार इन दोनोमे भेद पाया जाता है।

प्रश्न—सकल देश किसे कहते है ?

उत्तर—"स्यादस्ति" अर्थात "कथंचित है" इत्यादि सात

भगोका नाम सकला देश है, क्योकि, प्रमाण निमित्तक होनेसे इनके द्वारा "स्यात्" शब्दसे समस्त अप्रधान भूत धर्मोकी सूचना कि जाती है।

प्रश्न—विकला देश किसे कहते हैं।

उत्तर— '**अस्ति**' अर्थात '**है**' इत्यादि सात वाक्योका नाम विकला देश है, क्योंकि, वह नयोसे उत्पन्न हैं। (ध. ९ १६५)

प्रश्न— निक्षेप किसको कहते है?

उत्तर— संसय, विपर्यय और अनध्यवसायमे अवस्थित वस्तुको उनसे निकालकर जो निश्चयमे क्षेपण करता है उसे निक्षेप कहते हैं। अथवा बाहरी पदार्थके विकल्पको निक्षेप कहते है, अथवा अप्रकृतका निराकरण करके प्रकृतका प्ररुपण करनेवाला निक्षेप है। कहाभी है कि,

अपगयणिवारणट्ठ पयदस्स परूवणा निमित्तं च
संसय विणासणट्ठं तच्चत्थवधारणट्ठ च ॥ १ ॥

अर्थ— अप्रकृतके निवारण करनेके लिये प्रकृतके परुपण करनेके लिये और तत्वार्थके अवधारण करनेके लिये निक्षेप किया जाता है। (ध. ४. २)

बाह्य अर्थके विकल्पोकी प्ररुपणा अथवा अनधिगत पदार्थके निराकरण द्वारा अधिगत अर्थकी प्ररूपणाका नाम निक्षेप हैं।

शंका— निक्षेप विना परुपणा क्यो नही की जाती है?

समाधान— नही, क्योंकि. उसके विना प्ररुपणा बन नही शकती।

निक्षेप चार प्रकारका हैं। नामनिक्षेप, स्थापनानिक्षेप, द्रव्य-निक्षेप और भावनिक्षेप। इनमे आदिके तीन निक्षेप '**दव्यार्थिकनय**' के आश्रित हैं, क्योकि, उन तीन के अन्वय दिखे जाता है। और भावनिक्षेप **पर्यायार्थिकनय**के निमित्तसे होनेवाला है, क्योकि, वर्तमान पर्यायसे उपलक्षित द्रव्यको भाव स्विकार किया गया हैं। कहाभी है कि,

णामं ठवणा दवियं ति अेस, दव्वट्ठियस्स णिक्खेवो।
भावो दुपज्जवट्ठिय परुवणा अेस परमट्ठो ॥६८॥

अर्थ— नाम स्थापना और द्रव्य यह तीन द्रव्यार्थिकनयके निक्षेप है, किन्तु भाव पर्यायार्थिकनयका निक्षेप है, यह परमार्थ सत्य है।

अब निक्षेपका अर्थ करते है— नाम ज्ञान अपने आपमे रहनेवाला ज्ञान शब्द है। 'वह यह है' इस प्रकार अभेदसे सकल्पित सद्भाव व असद्भावरुप अर्थ स्थापना ज्ञान है। द्रव्य-ज्ञान आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकार हैं। ज्ञान प्राभृतका जानकार उपयोगसे रहित जीव आगम द्रव्यज्ञान है, क्योकि यहां नैगमनयका अवलम्बन है। ज्ञायक शरीर, भव्य और तदव्यतिरिक्त नोआगम द्रव्यज्ञानके भेदसे नोआगम द्रव्यज्ञान तीन प्रकार है।

ज्ञानकी हेतुभूत पुस्तक आदि द्रव्य, तदव्यतिरिक्त नोआगम द्रव्य-ज्ञान है। ज्ञान प्राभृतका जानकार उपयोग युक्त जीव भावागम-ज्ञान है। (ध. ९. १८४)

शंका—नाम द्रव्यार्थिक नयका निक्षेप कैसे है।

समाधान—नही, क्योंकि, पर्यायार्थिक नयमें क्षणक्षणी होनेसे शब्द और अर्थकी विशेषतासे संकेत करना न बन शकने के कारण वाच्य–वाचक भेदका अभाव है।

शंका—तो फिर तीनोही शब्दका व्यवहार कैसे होता हैं?

समाधान—अर्थगत भेदकी अप्रधानता रखनेवाले उक्त नयोके शब्द व्यवहारमे कोई विरोध नही है?

शंका—स्थापना द्रव्यार्थिक नयका विषय कैसे है?

समाधान—नही, क्योंकि, अर्थका उसके द्वारा ग्रहण होनेप स्थापना बन शकती है। स्थापना दो प्रकारकी होती है। १ तदाकार २ अतदाकार। भगवान महावीरकी पाषाणादिककी प्रतिमा मे भगवान महावीरके गुणोकी स्थापना करना यह तदाकार है, और चावल, पुष्प लवंगादिमे भगवान महावीरके गुणोकी स्थापना करना यह अतदाकर स्थापना है। दोनो स्थापना मे भाव यथार्थ ही होता है। स्थापना निक्षेप मे जीस वस्तुमे स्थापना की हें उसको दिखा नहि जाता हे परन्तु भाव दिखा जाता है। जैसे चावलमे केशर लगाकर उसमे पुष्पकी स्थापना कि जाती है। और उसको भावमे पुष्पही माना जाता है, यदपि पदार्थ पुष्प

नहि है तो भी भाव अन्य प्रकार का होता है उसीका नाम स्थापना निक्षेप है।

द्रव्यश्रुत ज्ञान भी द्रव्यार्थिक नयका विषय है, क्योंकि, आधार और आधेयके एकत्वकी कल्पनासे द्रव्यश्रुत का ग्रहण किया गया है। भाव निक्षेप पर्यायार्थिक नयका विषय है, क्योंकि, वर्तमान पर्याय से उपलक्षित द्रव्यका यहां भावसे ग्रहण किया गया है। (ध. ९ १८६)

वर्तमान पर्यायसे उपलक्षित द्रव्य भाव कहा जाता है, सो यह भाव द्रव्यार्थिक नयका विषय नही हो शकता, क्योंकि, अैसा होनेपर पर्यायार्थिक नयके निर्विषय होनेका प्रसंग आता है।

शंका—निक्षेप किस अपेक्षासे सत्यासत्य है।

समाधान—निक्षेप भी नाम, स्थापना, द्रव्य, भावके भेदसे चार तरहका है। जिसमे गुणतो न हो और व्यवहारके लिये उसकी संज्ञा करनां वह नाम निक्षेप है। अन्य वस्तुमे अन्यकी प्रतिमा रूप स्थापना करनां कि " यह वोही है " वह स्थापना निक्षेप है। वर्तमान पर्यायसे अन्य अतीत अनागत पर्यायरूप वस्तुको वर्तमान पर्यायसे कहनां वह द्रव्य निक्षेप है, और वर्त-मान पर्यायरूप वस्तुको वर्तमानमे कहनां वह भाव निक्षेप है। ये चारोही निक्षेप अपने अपने लक्षण भेदसे जुदे जुदे विलक्षण रूप अनुभव किये गये " **भूतार्थ** " हे सत्यार्थ है, और भिन्न लक्षणसे रहित एक अपने " **चैतन्य** " लक्षणरूप जीवके स्व-

भावका अनुभव करनेपर चारोही " **अभूतार्थ** " है " **असत्यार्थ** है।

निक्षेपादिकका ज्ञान विना वर्ण्यमान विषय कदाचित वक्ताको उत्पथमे ले जावे इस लिये सभीका ज्ञान करना उचित है। कहाभी है कि–

प्रमाण नयनिक्षेपैर्यो ऽर्थो नाभि समीक्ष्यते।
युक्त चायुक्तवद्भाति तस्यायुक्त च युक्तवत् ॥

अर्थ— प्रमाण, नय, निक्षेप के द्वारा जिसका शूक्ष्म विचार नही किया जाता है, वह युक्त होते हुए भी कभी अयुक्तसा प्रतीत होता है. और अयुक्त होते हुए भी कभी युक्तसा प्रतीत होता है। (ध.३.१२६)

निर्देस ओघ और आदेसके भेदसे दो प्रकार है।

शंका— वह निर्देस तीन प्रकार कयो नही होता ?

समाधान— नही होता, कयोकि वचनका प्रयाग परके लिये होता है, और परभी दो नयोको छोडकर के है नहि जीससे तीन प्रकार या एक प्रकार प्ररुपणा हो शके। ओघ निर्देस द्रव्यार्थिक नय वालेका और इतर अर्थात आदेस निर्देस पर्यायर्थिक नय वालेका अनुग्रह कर्ता है। (ध.८.३)

प्रश्न— नय किसे कहते है ?

उत्तर— ज्ञाताके अभिप्रायको नय कहते है।

शंका— अभिप्राय इसका क्या अर्थ है ?

समाधान— प्रमाणसे गृहीत वस्तुके एक देशमे वस्तुका निश्चय ही अभिप्राय है।

युक्ति अर्थात प्रमाणसे अर्थके ग्रहण करने अथवा द्रव्य और पर्यायोमेसे किसी एकके अर्थ रूपसे ग्रहण करनेका नाम नय है। प्रमाणसे जानी हुई वस्तुके द्रव्य अथवा पर्यायमे वस्तुके निश्चय करनेको नय कहते है, यह इसका अभिप्राय है।

प्रमाण ही नय है ऐसा कितने **आचार्य** कहते है। परन्तु यह घटीत नही होता, क्योंकि, ऐसा माननेपर नयोके अभावका प्रसंग आता है। यदि कहा जायकी नयोका अभाव हो जाय, सो भी ठीक नही है, क्योंकि, ऐसा होनेपर देखे जानेवाले '**एकान्त व्यवहार**' के लोप होनेका प्रसंग आवेगा।

दुसरे '**प्रमाण**' नय नही होशकता, क्योंकि उसका विषय '**अनेक धर्मात्मक**' वस्तु है। न नय प्रमाण हो शकता है, क्योंकि, उसका "**एकान्त**" विषय है। और "**ज्ञान-एकान्तको**" विषय करने वाला है नही, क्योंकि, "**एकान्त निरूप**". होनेसे "**अवस्तु**" स्वरूप है, अतः वह कर्म नही हो शकता। तथा नय "**अनेकान्तको**" विषय करने वाला नही है, क्योंकि, "**अवस्तुमे वस्तुका**" आरोप नही हो शकता।

अनुमान भी एकान्तको विषय नही करता जिससे कि उसे नय

कहा जा शको, क्योंकि, वह भी उपर्युक्त न्यायसे "**अनेका-न्तको**" विषय करने वाला है। इस लिये "**प्रमाण**" नय नही है. किन्तु प्रमाणसे जानी हुई वस्तुके एकदेशमे वस्तु-त्वकी विवक्षाका नाम नय है यह सिद्ध हुआ। (ध. ९. १६२)

"**नयका स्वरुप**"—

"**पुज्यपाद भट्टारक**" ने भी सामान्य नय का लक्षण यही कहा है। वह इस प्रकार है।

प्रमाणसे प्रकासीत जीवादीक पदार्थोकी पर्यायोंका प्ररुपण करनेवाला नय है। इसीको स्पृष्ट करते है—प्रकर्षसे अथवा संशयादीसे रहित वस्तुका ज्ञान प्रमाण है, अभिप्राय यह है कि जो समस्त धर्मोको विषय करनेवाला हो वह प्रमाण हैं। उससे प्रकासीत अर्थात प्रमाणसे ग्रहीत उन अस्तित्व, नास्तित्व व नित्यत्व, अनित्वत्वादि अनन्त धर्मादिक जीवादि पदार्थोके जो विशेष अथवा पर्याय है उनका प्रकर्षसे अर्थात दोषोंके सम्बन्धसे रहित होकर निरुपण करने वाला नय हे। तथा

'**प्रभाकर भट्ट**' ने भी कहा हैं कि प्रमाणके आश्रित परिणाम भेदोसे वसीकृत पदार्थ विशेषोंके प्ररुपणमें समर्थ जो प्रयोग होते हे वह नय हैं। उसको स्पृष्ट करते है—जो प्रमाण के आश्रित है, तथा उसके आश्रयसे होनेवाले ज्ञाताके भिन्न भिन्न अभिप्रायोके आधीन हुए पदार्थ विशेषो के परुपणमें समर्थ ऐसे प्रणिधान अर्थात प्रयोग अथवा व्यवहारस्वरुप प्रयोक्ताका नाम नय हैं। वह नय पदार्थोके

यथार्थ परिज्ञानका निमित होनेसे मोक्षका कारण है। यहां श्रेयस शब्दका अर्थ मोक्ष और अपदेस शब्दका अर्थ कारण है। नयोको जो मोक्षका कारण बतलाया है उसका हेतु पदार्थोंकी यथार्थोपलब्धि निमित्तता है।

सारसंग्रहमे **श्री पूज्यपादस्वामीने** कहा है कि अनन्त पर्याय स्वरुप वस्तुकी किसी एक पर्यायका ज्ञान करते समय श्रेष्ट हेतुकी '**अपेक्षा**' रखनेवाला निर्दोष प्रयोग नय कहा जाता है।

श्री समन्त भद्र स्वामीने आप्त मीमांसा मे गाथा १०६ मे कहा है कि '**सयाद्वादसे**' प्रकाशित पदार्थोंकी पर्यायोंको प्रगट करनेवाला नय है। इस कारिकाके उतरार्धमें प्रयुक्त 'स्याद्वाद' शब्दको अर्थ कारणमे कार्यका उपचार करनेसे प्रमाण होता है। उस प्रमाणसे प्रविभक्त अर्थात प्रकाशित्त जो पदार्थ है उनके विशेष अर्थात पर्यायोंका जो श्रेष्ट हेतुके बलसे व्यंज्जक अर्थात प्ररुपण करता हो वह नय है। (ध. ९–१६५)

प्रश्न—नय कितने प्रकार का है?

उत्तर—नय दो प्रकारका है। १ द्रव्यार्थिकनय अर्थात निश्चयनय २ पर्यायार्थिक नय अर्थात व्यवहार नय। उनमेसे जो द्रव्य पर्याय स्वरुप वस्तुको द्रव्यपनेकी मुख्यतासे अनुभव करावे वह द्रव्यार्थिक नय है। और पर्यायकी मुख्यतासे अनुभव करावे वह पर्यायार्थिक नय है।

शंका—द्रव्यार्थिक नयमे विद्यमान पर्यायोका अभाव कैसे

होता है ?

समाधान—यह कौन कहता है कि उनका वहां अभाव होता है, किन्तु वे वहां अप्रधान=अविवक्षित अथवा अनर्पित है, इसलिये उनके द्रव्य पना ही है, पर्याय पना नही है।

शंका—द्रव्यार्थिक नय के वशसे द्रव्यसे भिन्न पर्यायोंके द्रव्यत्व कैसे संभव है ?

समाधान—यह शंका ठीक नही है, क्योंकि, पर्याये द्रव्यसे सर्वथा भिन्न नही पायी जाती, किन्तु द्रव्य स्वरूप ही वे उपलब्ध होती है।

शंका—द्रव्यार्थिककी अपेक्षा पर्यायोंमे अभावका व्यवहार कैसे होता है ?

समाधान—यह कोई दोष नही है, क्योंकि, जो है, वह दोनोंका अतिक्रमण कर नही रहता (ध. ८—३६)

प्रश्न—दोनो नय किस अपेक्षासे सत्यासत्य है ?

उत्तर—दोनोही नय द्रव्य पर्यायको भेद रूप पर्यायकर अनुभव करते हुए तो '**भूतार्थ**', है '**सत्यार्थ**' है, और द्रव्य पर्याय इन दोनो कोही नहीं छूता हुआ ऐसे शुद्ध वस्तु मात्र जीवके स्वभाव 'चैतन्य' मात्रका अनुभव करनेपर भेदरूप **अभूतार्थ** है '**असत्यार्थ**' है।

प्रश्न—निश्चय नय किसको कहते है।

उत्तर—निश्चय नय का स्वरूप निम्न प्रकार है। जैसे कि,

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठंअणण्ण यं णियदं ।
अविसेसम संजुत्तं तं सुद्धणयं वियाणीहि ॥

अन्वयार्थ—(यः) जो नय (आत्मानं) आत्माको (अबद्धस्पष्टं) बंध रहित परके स्पर्स रहित (अनन्यं) अन्यपने रहित (नियत्तं) चलाचलता रहित (अविशेषं) विशेष रहित (असंयुक्तं) अन्यके संयोग रहित अैसे पांच भाव रुप (पस्यति) अवलोकन करता (देखता) है (तं) उसे है शिष्य तूं (शुद्धनयं) शुद्धनय (विजानाहि) जान ।

जो निश्चयसे अबद्ध अस्पृष्ट, अनन्य, नियत, अविशेष, असंयुक्त, अैसा आत्माका अनुभव करना वही शुद्ध नय है । यह अनुभूति निश्चयसे आत्माही है । अैसा आत्माही एक प्रकाश मान हो वह निश्चयनय है ।

प्रश्न—निश्चयनयकर आत्मा कैसा

उत्तर—निश्चयनय कर आत्माका स्वरुप निम्न प्रकार है । कहा है कि—

परमार्थेन तु व्यक्त ज्ञातृत्व ज्योतिषैकक:
सर्वभावान्तरध्वंसि स्वभावत्वाद मेचकः॥ १८ ॥

अर्थ—शुद्ध निश्चयनय कर दिखा जाय तब प्रगट ज्ञायक ज्योति मात्र कर आत्मा एक स्वरुप है कयोकि इसका शुद्ध द्रव्यार्थिक नय कर सभी अन्य द्रव्यो के स्वभाव तथा अन्यके निमित्त से हुये विभावोका दुर करने रुप स्वभाव है । इस नि

अमेचक हैं शुद्ध एकाकार है।

प्रश्न—व्यवहार द्रष्टिकर आत्मा कैसा है?

उत्तर—व्यहार द्रष्टिकर देखा जाय तब आत्मा एक है तो भी तीन स्वभाव पनेसे अनेकाकाररुप है क्योंकि, दर्शन ज्ञान चारित्र इन तीन भावोसे परिणमता है। कहा भी हैं कि,

दर्शन ज्ञानचारित्रै स्त्रिभिः परिणतत्वतः
एकोपि त्रिस्वभावत्वाद् व्यवहारेण मेचकः ॥१७॥

प्रश्न—दोनो नयेमे कोनसा नय सत्य है?

उत्तर—दोनो नय परस्पर विरोधी है। अर्थात निश्चय नयकी अपेक्षा निश्चयनय सत्य हैं परन्तु व्यवहार नयकी अपेक्षा निश्चय नय असत्य है। इसि प्रकार व्यवहारनयकी अपेक्षासे व्यवहारनय सत्य हैं परन्तु निश्चय नयकी अपेक्षा व्यवहारनय असत्य है। कहा भी है कि,

उभयनय विरोधध्वंसिनि स्यात्पदांके
जिन वचसि रमंते ये स्वयंवांतमोहाः।
सपदि समयसारं ते परं ज्योति रुच्चैरनवम्
नयपक्षाक्षुण्णमीक्षंत एव ॥४॥ (स-क)

अर्थ—निश्चय व्यवहार रुप जो दो नयके विपयके भेदसे आपसमे विरोध है। उस विरोधको दुर करनेवाला "**स्यात्पद-कर** चिन्हित जो जिन भगवानका वचन उसमे जो पुरुष रमते है-प्रचुर प्रीति सहित अभ्यास करते हैं, वह पुरुष विना कारण

अपने आप मिथ्यात्व कर्मका उदयका वमन करे, इस अतिसय रुप परम ज्योति प्रकासमान शुद्ध आत्माको सिघ्रही अवलोकन करते है। कैसा है समयसार रुप शुद्ध आत्मा? नवीन नही उत्पन्न हुआ है, पहेले कर्मसे आच्छादित था वह प्रगट ज्योति-रुप व्यक्त हो गया है। फिर कैसा है? सर्वथा एकान्तरुप कुनयकी पक्षकार खन्डीत नही होता निर्बाध है?

प्रश्न—निश्चयनयको ही सत्यार्थ और व्यवहारनयको ही असत्यार्थ ही माननेमे क्या दोष है?

उत्तर—शुद्ध नयको जो सत्यार्थ कहा है, इस कारण वह अशुद्धनय अर्थात व्यवहारनय सर्वथा असत्यार्थ ही है, अैसा नही समजलेना। अैसा माननेसे वेदान्तमतवाले संसारको सर्वथा अवस्तु मानते है उनकी सर्वथा एकान्त पक्ष आ जायगा, तब मिथ्यात्व आजायगा। उस समय इस शुद्ध नयका भी अवलम्बन उन वेदातियोंकी तरह मिथ्याद्रष्टि हो जायगा। इसलिये सभी नयोको कथंचित रिति से सत्यार्थपनेका श्रद्धान करने पर ही सम्यगद्रष्टि होता है। इस तरह स्याद्वाद का समज जिन मतका सेवन करना मुख्य गौण कथन सुनकर सर्वथा एकान्त पक्ष न पकड लेना।

प्रश्न—व्यवहारनय क्या अभूतार्थ ही है?

उत्तर—असुद्ध द्रव्यार्थिक नय शुद्ध द्रव्यकी द्रष्टिमे अशुद्ध नय भी पर्यायार्थिक ही है, इसलिये व्यवहारनय है अैसा आसय जानना। यहां अैसा भी जानना की जिनमतका कथन स्याद्वाद

रुप है इसलिये शुद्धता और अशुद्धत्ता दोनो वस्तुके धर्म है, वह वस्तुका सत्व है, परद्रव्यसे संयोगसे ही हुवा ही भेद है। अशुद्धनयको असत्यार्थ कहनेसे अैसाता नही समजना कि यह वस्तु धर्म सर्वथाही नही, आकासके फूल्की तरह है। अैसा सर्वथा एकान्त समजनेसे मिथ्यात्व आता है। इसलिये स्याद्वाद का शरण ले शुद्धनयका आलंम्बनकरना चाहिये। स्वरुपकी प्राप्ति होनेके बाद शुद्धनयका भी आलंम्बन नहि रहता। जो वस्तु स्वरुप है वह है यह प्रमाण द्रष्टि है। प्रमाण द्रष्टि का फल वीतराग है अैसा निश्चय करना योग्य है।

प्रश्न—व्यवहारनयको एकान्त असत्यार्थ माननेमे क्या दोष है?

उत्तर—निश्चय नयतो जीवको शरीर और रागद्वेष मोहसे भिन्न कहती है। यदि इसका एकान्त किया जावे तब शरीर स्था राग द्वेष मोह पुद्गलमय ठहरे तब पुद्गलके घातसे हिसा नही हो शकती है अैसा राग द्वेष मोहसे बन्ध नही हो शकता है। इस तरह परमार्थसे संसार मोक्ष दोनोका अभाव होजायगा। अैसा एकान्त स्वरुप वस्तुका स्वरुप नही है। अवस्तुका श्रद्धान ज्ञान आचरण मिथ्या अवस्तु रुप है। इसलिये व्यवहारका उपदेश न्याय प्राप्त है।

प्रश्न—दोनो नयोमे कोनसा नय कार्यकारी है?

उत्तर—अपने अपने पदमे अर्थात अपनी अपेक्षामे दोनो ही नय कार्यकारी है क्योंकि तिर्थ और तीर्थके फल्की अैसी

ही व्यंवस्थिती है। जिससे तीरा जावे वह तीर्थ है असातों व्यवहार धर्म है, और जो पार होना वह व्यवहार धर्मका फल है, अथवा अपना स्वरुपका पाना वह तीर्थ फल है। असा ही दुसरे जगेह किया है कि,

जइ जिणमयं पवज्जह तामा ववहारणिच्छए मुयए।
एकेण विणा छिज्जइ तित्थं अण्णेण ऊण तच्च ॥

अर्थ—जो तुम जिनमत को प्रवर्तना चाहते हो तो व्यवहार और निश्चय इन दोनो नयोको मत छोडो क्योंकि एक व्यवहार नयके विना तो तीर्थ, व्यवहार मार्गका नाश होजायगा। और दुसरी निश्चय नयके विना तो (तीर्थफल) तत्व (वस्तुका) का नाश हो जायगा।

प्रश्न—व्यवहारनय कबतक प्रयोजन वान हे ?

उत्तर—व्यवहारनय वितराग दशा की प्राप्ति म हुइ हो तबतक प्रयोजन वान है। कहा भी है कि,

व्यवहरणनयः स्याद्यद्यपि प्राक्पदव्यामिह
निहितपदानां हतहस्तावलंबः।
तदपि परममर्थ चिच्चमत्कारमात्रं परविरहितमतः
पश्यतां नैष किंचित ॥ ५। (स-क)

अर्थ—जो व्यवहार नय है वह यद्यपि इस पहली पदवीमें (जबतक सुद्ध स्वरुप की प्राप्ति न हुइ तबतक) जिन्होने अपना पैर रखा है असा पुरुषोको हस्तावलंम तुल्य कहा है, सो वडा

खेद है । तो भी जो पुरुष चैतन्य चमत्कार मात्र, परद्रव्य भावोंसे रहित परम अर्थ (शुद्धनयका विषयभूत) को अंतरंगमे अवलोकन करते है, उसका श्रद्धान करते है, तथा उस स्वरुप लीन हुए चारित्र भावको प्राप्त होते है, उनके यह व्यवहारनय कुच्छ भी प्रयोजन वान नही है ।

प्रश्न—कोनसा नय मिथ्या और सत्य हैं ।

उत्तर—मिथ्या तथा सत्य नयका स्वरुप निम्न प्रकार है । कहा भि है कि,

मिथ्यासमूहो मिथ्याचेन्न मिथ्यैकान्ततास्तिनः ।
निरपेक्षा नया मिथ्या सापेक्षा वस्तुतेऽर्थकृत ॥

अर्थ—मिथ्यानयो का विषय समुह मिथ्या है ऐसा कहने पर उत्तर देते है कि, वह मिथ्या ही हो, ऐसा हमारे यहा एकान्त नहि है । किन्तु परस्पर की अपेक्षा रखनेवाले वे वास्तवमें अभिष्ट सिद्धि के कारण हैं । (ध.-९-१८२)

नामादिक व्यवहार दो नयोके आश्रीत होनेसे व्यवहारो की सत्यता प्रगट करता हैं । यदि यहां कहा जावे कि दोनो प्रकार के नयो के निमितसे होनेवाला संव्यवहार मिथ्या है, सो भी ठीक नही है, क्योकि वैसा पाया नही जाता । ओर दुर्नयोंके सत्यता हो नही शकती, क्योंकि वेह प्रतिपक्ष भूत विषयोका सर्वथा निषेध करते है इसिलिये स्वविषयोका अभाव होनेसे उनके सत्यता रह नही शकती, । इसी कारण दुर्नय संव्यवहार के कारण

नही हैं ।

शंका—शूनयोके अपने विषयों की व्यवस्था कैसे सम्भव है ?

समाधान—चुंकि, शुनय सर्वथा प्रतिपक्षभूत विषयो का निषेध नही करते, अतः उनके गौणता और प्रधानता की अपेक्षा प्रमाण बाधा के दुर करनेसे उक्त विषय व्यवस्था भले प्रकार सम्भव है ।

शंका—जबकी एकान्त अवस्तु स्वरुप हैं, तव वह व्यवहारका कारण कैसे हो शकता हैं ?

समाधान—अवस्तु स्वरुप एकान्त संव्यवहारका कारण नही हैं, किन्तु उसका कारण प्रमाणसे विषय किया गया अनेकान्त है क्योंकि वह वस्तु स्वरुप हैं

शका—यदि अैसा है तो फिर सब संव्यवहारका कारण नय कैसे हो शकता हैं ?

समाधान—इसका उत्तर कहते है, कौन अैसा कहते है कि नय सब संव्यवहारका कारण है । प्रमाण और प्रमाणसे विषय किये गये पदार्थ भी समस्त संव्यवहारका कारण है । किन्तु प्रमाण निमित्तक सब संव्यवहार नय स्वरुप है, अैसा हम कहते है । क्योकि सब संव्यवहारमें गौणता और प्रधानता पायी जाती है । अथवा प्रमाणसे नयोंकी उत्पति होती है, क्योंकि, वस्तुके अज्ञात होनेपर उसमें गौणता और प्रधानताका अभिप्राय बनता

नहि हैं। और नयोसे संव्यवहारकी उत्पति होती है, क्योंकि अपने अभिप्राय के वशसे एक व अनेक रुप व्यवहार पाया जाता हैं। इस कारण नयभी संव्यवहारका कारण है ऐसा कहनेमे कोई दोष नहीं है।

शंका—संव्यवहार नय स्वरुप ही है, ऐसा क्यों है?

समाधान—नही क्योंकि ऐसा स्वभाव है, तथा अन्य प्रकारसे व्यवहार करनेके लिये और कोई उपाय नही है। (ध. ९. २३९)

प्रश्न—निश्चय तथा व्यवहार नयमे किस प्रकारका विरोध है?

उत्तर—व्यवहार नय कहते हैं कि जीव कर्मसे बंधा हुआ है. जब निश्चय नय कहता है कि जीव कर्मसे बंधा हुआ नही है। इस तरह दो नयोके दो पक्ष हैं। इस तरह दोनो नयोंका जिसके पक्षपात हैं वह तत्व वेदी नही है, जो तत्ववेदी (तत्वका स्वरुप जाननेवाला) है, वह पक्षपातसे रहित है, नयमे खेंचताण नही करता है वही पुरुषका चिन्मात्रा आत्मा चिन्मात्र ही है उसमे पक्षपातसे कल्पना नही करता। उसी प्रकार व्यवहार नय कहते है कि जीव मोही है जब निश्चयनय कहता है कि जीव मोही नही है। व्यवहार नय कहते है कि जीव रागी है जब निश्चय नय कहते है कि जीव रागी नही है। व्यवहार नय कहते है कि जीव द्वेषी है, जब निश्चय नय कहते है कि जीव द्वेषी नही है। व्यवहार नय कहते है कि जीव कर्ता है, जब निश्चय नय

कहते है कि जीव कर्ता नही है। व्यवहार नय कहते है कि जीव भोक्ता है, जब निश्चय नय कहते है कि जीव भोक्ता नही व्यवहार नय कहते है कि जीव शूक्ष्म नही है जब निश्चय नय कहते हैं कि जीव शूक्ष्म हैं। व्यवहार नय कहते है कि जीव अनेक हैं, जब निश्चय नय कहते है कि जीव एक है। व्यवहार नय कहते है कि जीव अनित्य है जब निश्चय नय कहते है कि जीव नित्य हैं। व्यवहार नय कहते है कि जीव शान्त अर्थात अंत सहित है, जब निश्चय नय कहते है कि जीव अंत रहीत है। इसी प्रकार दोनो नयो मे पक्षपात है। जीव और पुद्गल कर्मके एक बंध पर्याय पनेसे देखा जाय अर्थात संयोग सम्बन्धसे देखा जाय तो जीव बंधा ही है परन्तु जीव तथा पुद्गलकर्मके अनेक द्रव्य पनेकर दिखा जाय अर्थात समवाय सम्बन्धसे देखा जाय तो जीव बंधा हुआ नही है अत्यंत भिन्न है। इसीप्रकार दोनो नयोसे देखना वही प्रमाण हैं। वही प्रमाण नय सम्यगद्रष्टि को ही होता है। मात्र एक नयके ही पक्षवाले मिथ्याद्रष्टि है। जो जीव नयके पक्षपातको छोड अपने स्वरुपमे गुप्त होके निरंतर स्थिर होते है वही पुरुष विकल्पके जालसे रहित शात चित हुऐं साक्षात अमृतको पीते है अर्थात वही जीव मोक्ष को पा शकता हैं। जो निश्चयकर जीवमे कर्म बंध हुए है अैसा कहना तथा जीवमे कर्म नही बधे हुए हैं अैसा कहना यह दोनो ही विकल्प नय पक्ष है। जो इस नय

पक्ष के विकल्पको उलंघके वर्तता है अर्थात छोडता है वही समस्त विकल्पोसे दूर रहता है। वही आप निर्विकल्प एक विज्ञानघन स्वभाव रुप होकर साक्षात परमात्मा हो जाता है। प्रथम तो जो जीवमे कर्म बंधा हैं अैसा विकल्प करता है वह जीवमें कर्म नही बंधा है " अैसा अेक पक्षका छोडता हुआ भी विकल्पको नही छोडता। और जो जीवमे कर्म नही बंधा है अैसा विकल्प करता है वह 'जीवमे कर्म बंधा है' अैसे विकल्परुप अेक पक्षको छोडता हुआ भी विकल्पको नही छोडता. और जो जीवमे कर्म बंधा भी है तथा नहीं बंधा भी है अैसा विकल्प करता है वह उन दोनो ही नयपक्षको नही छोडता हुआ विकल्पको नही छोडता। इसलिये जो सभी नय पक्षको छोडता है वही समस्त विकल्पोको छोडता है तथा वही आत्माको अनुवता है।

प्रश्न— क्या व्यवहारनय सर्वथा असत्यार्थ ही है?

उत्तर— व्यवहारनयको सर्वथा असत्यार्थ नही मानना चाहिये किन्तु कथंचित अर्थात निश्चयकी अपेक्षासे असत्यार्थ मानना चाहिये। क्योंकि, जब अेक द्रव्यको जुदा पर्यायसे अभेदरुप असाधारण गुणमात्रको प्रधानकर कहा जाय तब परस्पर द्रव्योंका निमित-नैमितिक भाव तथा निमतसे हुअे पर्यायें सब गौण होजाती है उस अेक अभेद द्रव्य द्रष्टिमे उनका प्रतिभास नही होता है इसलिये वे सब उस द्रव्यमे नही है। इस तरह कथंचित

निषेध किया जाता है। यदि उस द्रव्यमे कहा जाय तो व्यवहार नयसे कह शकते है। अैसा नय विभाग है। निश्चयनयकी द्रष्टिसे रागादिक जीवका नही है, परन्तु व्यवहार नयकी द्रष्टि से रागादिक जीवकां ही है, जीवका ही अनन्य परिणाम है। निमितनैमितिक भावकी द्रष्टिकर देखा जायतो रागादिक जीवका ही है। यदि सर्वथा असत्यार्थ कहे तो सब व्यवहार का लोप हो जाय तब मोक्षका भी लोप हो जाय इसलिये जिन देवका उपदेश **स्याद्वादरुप ही समजना सम्यकज्ञान** है। सर्वथा अेकान्त करनां **मिथ्यात्व** है।

प्रश्न— नयोका क्या सार है ?

उत्तर—जो कर्म नयके अवलम्बनमे तत्पर है अर्थात उसके पक्षपाती है वे भी डुबते हैं। जो ज्ञानको तो जानते ही नही और ज्ञान नयके पक्षपाती (इच्छुक) है वे भी डुबते है जो कियाकान्ड को छोड स्वछंद हैं, प्रमादी हुए स्वरुपमे मंद उद्यमी है वे भी डुबते है। और जो आप निरंतर (हमेशा) ज्ञान रुप हुए कर्मको तो करते नही तथा प्रमाद के वश भी नही होता, स्वरुपमे उत्साहवान है वही जीव सब लोकके उपर तैरत हैं अर्थात अपना कल्याणकर सिद्ध पदको पाता है—यहीसार है।

प्रश्न—व्यवहार कितना प्रकारका है ?

उत्तर—व्यवहार अनेक प्रकारका है। १ सदभूत व्यवहार २ असदभूत व्यवहार ३ असदभूत अनउपचरित व्यवहार ४

असदभूत उपचरित व्यवहार।

प्रश्न—सदभूत व्यवहार किसको कहते है?

उत्तर—आत्माम दर्शन ज्ञान चारित्र आदि गुणो है ऐसा कहना सदभूत व्यवहार है। आत्मामे केवलज्ञान है, आत्मामे केवल दर्शन है, आत्मामें अनंतसुख है, आत्मा वितरागी है, आत्मा सिद्ध है इत्यादि कहनां सदभूत व्यवहार है।

प्रश्न—असदभूत व्यवहार किसको कहते है?

उत्तर—आत्मामें मति, श्रुति, अवधि, मनःपर्यय ज्ञान है। आत्मामें क्रोध मान माया और लोभ होता है इत्यादि कहनां असदभूत व्यवहारसे कहा जाते है?

प्रश्न—असदभूत अनउपचरित व्यवहार किसको कहते है?

उत्तर—आत्मामें छोह पर्याप्ति होती है, आत्मा दश प्राणोसे जिता है आत्मा ज्ञानावरणादि पुदगल कर्मको बाधंता है अर्थात कर्मका कर्ता हे। आत्मा देव मनुष्य तिर्यंच नारकी होता है। आत्मा औदारिक वैक्रियक, आहारक, कार्माण शरीरमे रहता है। आत्मा एकेन्द्रिय द्विद्रिय, त्रीद्रिय. चतुरन्द्रिय, पंयेन्द्रिय होत्ता है. आत्मा संज्ञी असंज्ञी होता है. आत्मामे समचतुरस संस्थान आदि होता है, आत्मामे वज्रर्षभनाराच आदि संहनन होता है. आत्मा भोजन खाता है, आत्मा जल पीता है इत्यादि असदभृत अन उपचरित व्यवहारसे कहा जाता है।

प्रश्न— असदभूत उपचरित व्यवहार किसको कहता है?

उत्तर— यह मैरी स्त्री है, यह मेरा पीता है, यह मैरी माता है. यह मैरे पुत्र है यह मैरा मकान है, यह मैरी लक्ष्मी है, यह मैरी मील है, यह मैरा ग्राम है, केवली भगवान लोक-लोकको देखता हैं इत्यादि असंदभूत उपचरित व्यवहार नयसे कहा जाता है।

इसमे कोनसा व्यवहार अभूतार्थ है ? विचार करनां चाहिये। व्यवहार अपेक्षासे व्यवहार सत्यही हैं। परन्तु निश्चयकी अपेक्षासे व्यवहार असत्यही हैं। इसीप्रकार निश्चयकी अपेक्षासे निश्चय सत्यही हैं परन्तु व्यवहारकी अपेक्षासे निश्चय असत्यही हैं। अैसा ज्ञान करनां सम्यक ज्ञान हैं। एकान्त नय वाद मिथ्यात्व हैं।

शंका— श्री पंचाध्यायी प्रथम अध्यायकी गथा ५६७ से यह शरीर मैरा हैं. मे कर्मों को बांधता हू, इत्यादिको तो नया भास कैसे कहा हैं ?

समाधान— पंचाध्यायी प्रथम अध्याय गाथा ५२५ से व्यवहार नयका स्वरुप प्रतिपादन किया है वह तादात्म सबंधसे अर्थात समवाय सबंधसे कीया है इसी कारण संयोग सबंधको नया भास कहा हैं। वहां तो एक ही द्रव्यका स्वरुप समजानेका अभिप्राय है इसका यह अर्थ नही है कि परद्रव्योकी साथमे अर्थात पुद्गलकी साथमे आत्माका संयोग सबंध है ही नही। एकमे संसार नही एवं विकार भी नही. जबतक संयोग संबंध है तबतक ही संसार है। सिद्धमे संयोग संबंध नही है

वहां संसार भी नही है। केवली परमात्माको अभि संयोग सम्बन्ध है इसलिये वह संसारी ही है। यह तो कथन करनेकी शैली है। तादात्म सबंधसे कथन करने मात्र से संयोग सबंध मिट नही जाता। पदार्थ का ज्ञान करानेके लिये ही नय ज्ञान है। यदि संयोग सबंध नही होता तो पंचाध्यायीने भी दुसरा अध्यायमें नया भास रुप संयोग सबंध क्यो स्विकार किया? अमूर्त आत्मा मूर्तकि सराव आदिसे पागल क्यों बन जाता है? अमूर्त आत्मा भोजन सामग्री खानेसे भूखके दुःखसे कैसे मुक्त हो जाता है? यदि आत्मा खाता नही है मात्र विकल्प ही करता है तो एक विकल्प ऐसा करले के हमने भोजन खालिया ऐसे विकल्पसे भुखका दुःख क्यो नही मिटा लेता। इससे सिद्ध हुआ कि जैसी अवस्था है तैसा ही ज्ञान करना सम्यक ज्ञान है। अनेक प्रकारसे नय विभागका कथन शस्त्रोमे किया है इसलिये नयोका ज्ञान करना मोक्षमार्गमे प्रथमे प्रथम जरुरी है।

आत्माका व्यवहार आत्मामे ही होता है और पुद्गलका व्यवहार पुद्गलमे ही होता है। आत्माका व्यवहार पुद्गलमे न होवे और पुद्गलका व्यवहार आत्मामे न होवे। आत्मामे जो पुण्य और पाप रुप भाव होता है वही आत्माका व्यवहार है। ऐसा आत्माका व्यवहार छोडना ही धर्म है। समयसार ग्रन्थमे भी यही वात वंध अधिकारमे कही है—जैसे.

सभी वस्तुओमे सब अध्यवसान अर्थात रागादिक भाव है

वह जिन भगवानने त्यागने योग्य कहा है, कयोकि, वह आकुलता रूप ही है। सो सब भाव परके आश्रयसे प्रवर्तने वाला सभी व्यवहार छोडने लायक ही है। इस लिये सत्पुरुष है वह सम्यक् प्रकार एक निश्चय को ही अर्थात ज्ञायक स्वभावी आत्म पिन्ड को जिस तरह हो शके उस तरह अंगीकार करके शुध्ध ज्ञान स्वरुप अपनी आत्म स्वरुप महिमामे स्थिर होना वही परम धर्म है। वही सुखका मार्ग है। और सुखका मार्ग नहि है।

शंका—पुण्य भावमे अर्थात पुजा, गुरु भक्ति, पात्र दान, आदि मे तो सुख होता है ?

समाधान—वह सुख नही हें सुखाभास है। मिथ्या कल्पना है। अपना जीवन पर सुक्ष्म द्रष्टि से विचार करो तो दुःख दुःख छोडकर एक समय भी सुखमे जाता नही है। देखो फजरमे उठे त्यां सौचादि किया करने कि इच्छाका दुःख उस दुखसे मुक्त न हुआर यां एक इच्छा हुई कि मै स्नान करलु, जहा स्नान किया त्यां एक इच्छा पैदा हुई कि मैं पुजाके लिये जाऊ, जबतक मंदिर मे न जावे तबतक दुःखी। मंदिरमें गये त्यां अष्ट द्रव्य धोनेकी इच्छा हुई। जहां अष्ट द्रव्य धोया त्यां पुजा करनेकी इच्छा पैदा हुई। दो चार पुजा कीया त्यां घर जानेकी इच्छा हुई। यदि पुजामे सुख होता तो पुजा छोडकर घर क्यों आता ? घर आया त्यां मुनिको आहार दान देनेकी इच्छा हुई। प्रासुक जलका लोटा लेकर पडगाहनेके लिये अपने घरके फाटकमे

खडा रहा। जबतक मुनि न पधारे तबतक दुःख। जहां भाग्यो-दय से मुनि महाराज पधार गये, त्या एक इच्छा खडी हो गय की निरांतराय मुनि महाराजको आहार हो जावे तो अच्छा। जबतक निरातराय आहार न हुए तब तक दुःख। जहा मुनि महाराजका आहार हो गया, त्या अपने खानेकी इच्छा पैदा हो गय। जहा खानेमे सुखकी कल्पना नही करता है त्यां एक इच्छा यह हुई की आज दुकानमे (पेढीमे) जानेकी बहोत देरी हुई इसकी चिन्ता। पेढीमे गया त्यां वेपार आदिकी व्याधि। विचार करो कोनसा समय सुख का जाता है। इस लिये सब व्यव-हार छोडनेकाही है। व्यवहार छोडनेका उपदेश देता है, वहां **मिथ्याद्रष्टि कहै अरेरे ? महाराज सब व्यवहार छोडाता है ?** परन्तु मूर्ख विचारभी करता नहि कि व्यवहार किसका नाम है ? पुण्य पाप रूप भावका नाम तो व्यवहार है और यह व्यवहार छोडा विना आत्म शान्ति कभी नही मिलेगी। व्यवहार छोडना ही परम धर्म है।

प्रश्न—पुद्गलका व्यवहार किसको कहते है ?

उत्तर—पुद्गलमे स्पर्श, रस, गंध, और रूप गुण है उस गुणकी पर्यायोका बदलना यह पुद्गलका व्यवहार है। जैसे शरीर दुबला और मोटा होना। शरीर का रंग काला, धोला, कोढवाला होना। यह सब पुद्गल का व्यवहार है। जैसे शरीर के रंग मे जरासा फर्क हुआ अथवा लाल चबडी की अवस्था बदलके सुफेद हुई

ह्यां कहने लोगोंकी मुझको कोढ हो गया । लोग कहे कि न कहे उसकी पहेले अपने ही विकल्प द्वारा दुःखी हो जाता है । यथार्थ से विचार करो तो कोढमे किंचित मात्र दर्द का वेदन रूप दुःख नही है तो भी अज्ञान के कारण दुःखी हो जाता है, क्योकि उसने पुद्गल का व्यवहार को अपना व्यवहार मान रखा है । यह अज्ञान की जननी मिथ्यात्व है ।

कोइ २ अपेक्षाए आत्मद्रव्य, आत्म का गुणो, तथा आत्मा की पर्याय को भी निश्चय कहा जाता है क्योंकि वह आत्म द्रव्य से अलग वस्तु (अवस्था) नहि है । और जीव और पुद्गल दो भिन्न द्रव्य के संयोग से उत्पन्न हुई अवस्था को भी व्यवहार कहा जाता है । जैसे जीव दश प्राणो द्वारा पूर्वमे जीया था, वर्तमानमे जी रहा है, और भविष्यमे जीवेगा । यद्यपि यह दशो प्राणो संयोग सम्बन्ध से जीव से अलग नही है परन्तु जीव पुद्गल के स्व गुणो की अपेक्षा अर्थात तादात्म सम्बन्ध से दशो प्राण जीव का नही है परन्तु नियमसे पुद्गल का ही है । क्योंकि मरण कालमे दशो ही प्राण जीव से अलग हो जाता है, क्योंकि वह रूपी द्रव्यकी पर्याय हैं।

अखंड द्रव्य मे भेद पाडकर कथन करना वह भी व्यवहार है, जिसको शास्त्रीय भाषा मे एकत्व व्यवहार किया जाता है अर्थात तदात्म सम्बन्धसे कथन करनां उसीको नाम एकत्व व्यवहार है, जो कथन **सत्य वचन** से ही होता है । जीव और पुद्गल

के मिलाप से उत्पन्न हुई अवस्था का नाम शास्त्रीय भाषा में पृथकत्व व्यवहार है, अर्थात संयोग सम्बन्ध से कथन करना उसीका नाम पृथकत्व व्यवहार है। जिस कथन की भाषा को **अनुभय वचन** कहा जाता है। जैसे जीव में दर्शन ज्ञान चारित्र आदि गुणो है। जीव मे मति, श्रुत, अवधि, मन.पर्यय और केवल ज्ञान होता है। जीव मे क्रोध, मान, माया, लोभ तथा क्षमा, संतोष आदि होता है, यह कथन का नाम एकत्व व्यवहार है। जो व्यवहार मात्र सत्य वचन योग से ही कहा जाता है। जीव मे दश प्राण होता है। जीव देव, मनुष्य, तिर्यंच नारकी होता है। जीव आहार लेने से ही जीता है इत्यादि कथन का नाम पृथकत्व व्यवहार है। जो व्यवहार मात्र **अनुभय वचन योग से** कहा जाता है।

मोक्षमार्ग प्रकाशक शास्त्रमे ऐसा लिखा है कि—व्यवहार नय स्वद्रव्य परद्रव्य को वा तिनके भावनिको वा कारण कार्यादिक को कोई का कोई विषै मिलाय निरूपण करे है, सो ऐसा श्रद्धान ते मिथ्यात्व है। इस लिये इस का त्याग करना। परन्तु निश्चय नय तिन ही को यथावत निरुपण कहे है। कोई का कोई विषै न मिलावे है ऐसे ही श्रद्धान ते सम्यकत्व है इस लिये इसका श्रद्धान करना।

प्रश्न—जो ऐसे है तो जिनमार्ग विषै दोउ नय का ग्रहण करना कहा है सो कैसे ?

उत्तर—जिनमार्ग विषे कही तो निश्चय नयकी मुख्यता लिये याख्यान है उसीको तो 'सत्यार्थ असे ही है।' असा श्रद्धान करना। और कही व्यवहार नयकी मुख्यता लिये व्याख्यान है उसीको 'असे है नाही' निमितादि कि अपेक्षा उपचार किया है। असा श्रद्धान करना।

यह जो कथन है उसीका इतना ही अर्थ लेना चाहिये कि संयोग संबंधको तादात्म संबंध नही मानना। संयोग संबंधको तादात्म संबंध मानना मिथ्यात्व है, और तादात्म संबधको संयोग संबध मानना भी मित्यात्व है। संयोग संबधको संयोग नही मानना वह भी मिथ्याज्ञान है। संयोग संबधको नही माननेसे सारा व्यवहार धर्मका नाश हो जावेगा। यही बात श्री समयसार ग्रन्थकी गाथा ४६ की टीकामे विस्तारसे लिखा है कि व्यवहार नयको न माने और परमार्थ नय जीवको, शरीरसे भिन्न कहता है, उसका ही एकान्त किया जाय तो, त्रस स्थावर जीवोका घात निःशकपनेसे करना सिद्ध हो सकता है। जैसे भस्म के मर्दन करनेमे हिंसाका अभाव है उसी तरह उनके मारनेमे भी हिंसा नही सिद्ध होगी किंतु हिंसा का अभाव ठहरेगा, तब उनके घात होनेसे बंधका भी अभाव ठहरेगा। और उसी तरह रागी द्वेषी मोही जीव कर्मसे बंधता है, उसको छुडाना कहा गया है वह भी परमार्थसे रागद्वेष मोहसे जीव भिन्न दिखानेकर मोक्षके उपायका उपदेश व्यर्थ होजायगा तब मोक्षका भी अभाव ठहरेगा। इसलिये व्यवहार नय

अर्थात संयोग संबंध व्यवहारसे सत्यार्थ ही है।

यदि संयोग संबंध मिथ्या (गलत) ही है तो एक मिनिट अपना ही गला दबा कर प्रत्यक्ष अनुभव करलो, अगर एक सूय अपने शरीरमे चुबाकर अनुभव करलोकी आत्मा नाच उठता है कि नाही। **यह तो स्वानुभव प्रसिद्ध है**। तादात्म संबंधमे भी व्यवहार होता है, एवं संयोग संबधमें भी व्यवहार होता है। जैसा है तैसा जानना सम्यक ज्ञान है जैसें

आत्मामे दर्शन ज्ञान चारित्र हे ऐसा कहना भी व्यवहार है। आत्मामे केवलज्ञान होता हे वह कहना भी व्यवहार है। आत्मामे क्रोध, मान, माया, लोभ है वह कहना भी व्यवहार है। आत्मा दश प्राणोसे ही जीता है वह कहना भी व्यवहार है। आत्मा आहार खाते है यह कहना भी व्यवहार है। केवली भगवन्त लोकालोक कुं देखता है यह कहना भी व्यवहार है। इसमे अमुक व्यवहार तादात्म संबधसे हे और अमुक व्यवहार संयोग संबध है वैसा ही जानना सम्यक ज्ञान है। विशेष कहां तक लिखे ?

इति भेदज्ञान शास्त्रमध्ये प्रमाण नय निक्षेप अधिकार पूर्ण हुआ।

पुद्गल द्रव्यका स्वरुप

प्रश्न—पुद्गल द्रव्य का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—पुद्गल द्रव्य को भेद दिखाया जाता है। पुगद्ल द्रव्य का चार भेद है। १ स्कंध, २ स्कंध देश ३ स्कंध प्रदेश इन तीन पुद्गल स्कन्धो मे अनंत अनंत भेद है। (४) परमाणु का एक ही भेद है द्रष्टांत के द्वारा इस कथन को प्रगट कर दिखाया जाता है। अनंतानंत परमाणुओ के स्कन्ध की निशानी ८० एसी का अंक जानना। क्योकि समजाने के लिये थोडासा गणित करके दिखाते है। असी परमाणु का तो उत्कृष्ट स्कन्ध कहा जाता है। उसके आगे एक एक परमाणु घटाते जाना एकत्तालीस अंकताई परमाणुओंका जघन्य स्कन्ध है इसी प्रकार स्कन्ध के भेद एक एक परमाणुकि कमी से अनंत जानने। और चालीस परमाणु का उतकृष्ट स्कन्ध देश जानना। एकीस प्ररमाणु का जघन्य स्कन्ध देश जानना। एक एक परमाणु की कमीसे स्कन्ध देश का अनंत्त भेद जानना। तथा वीस परमाणु का उत्कृष्ट स्कन्ध प्रदेश जानना। दो परमाणु का जघन्य स्कन्ध प्रदेश जानना एक एक परमाणु की कमी से स्कन्ध प्रदेशका अनंत भेद जानना। और एक परमाणु अविभागी है। इसमे भेद कल्पना नही है। यह चार प्रकार

तो भेद के द्वारा जानना, और येही चार भेद मिलापके द्वारा भी गीने जातें है। मिलाप नामं संघातका है। दो परमाणु मिलनेसे जघन्य स्कन्धं प्रदेश होता है। इसी प्रकार एकं एक परमाणु मिलानेसे ईन तीन स्कन्धो के भेद उत्कृष्ट स्कन्धं ताई जानना। भेद संघात के द्वारा तीनो स्कन्धो के भेद परमागममे विशेषता कर गिने गये है। एक पृथिवि पिन्डमे चारो ही भेद होते है। सकलपिन्ड का नामं स्कन्ध कहा जाता है, आधेका नामं स्कन्धं देश, चोथाइका नामं स्कन्धं प्रदेश कहा जाता है। अवीभाग को नामं परमाणु कहा जाता है। इसी प्रकार खन्ड खन्ड करने पर भेदो से अनंते भेदो होते है। दोय परमाणु के मिलापसे लेकर सकल पृथिवी खन्ड पर्यंत संघात करि अनंत भेद होते है। भेद संघातसे पुद्गल की अनंत पर्यायें होती है। चार प्रकार के स्कन्धादि भेद कहे इनमे पूरन गलन स्वभाव है इस कारणं इसका नाम पुद्गल कहा जाता है। जो बढे घटे तिनको पुद्गल कहते है। परमाणु जो है सो अपने स्पर्स, रस, गन्ध, वर्ण, गुण के भेदो से षटगुणीं हानि वृद्धि के प्रभाव से पुद्गल नाम पाता है। और इसी परमाणु मे किसी कालमे स्कन्ध होने की प्रगट शक्ति है। जो स्कन्ध है ते अनंत परमाणु मिलकर अक पिन्ड अवस्था को करते हैं। इस कारणं उनमे भी पुरनगलन स्वभाव है और उनका भी नाम पुद्गल कहा जाता है वे पुद्गल छोह प्रकार के होते है,

जिन पुद्गलो से तीन लोक निर्मापित है। वे छोह निम्न प्रकार है। १ वादरबादर। २ बादर। ३ बादर शूक्ष्म. ४ शूक्ष्मबादर २ ५ शूक्ष्म ६ शूक्ष्म शूक्ष्म ये छह प्रकार जाननां।

जो पुद्गल दो खंड करने पर अपने आप फिर नही मीले अैसे काष्ट पाषाणादिकको बादर बादर कहते है। जो पुद्गल स्कन्ध खंड खंड किये हुए अपने आप मिल जाय अैसे दुग्ध, घृत, तेलादिक पुद्गलोको बादर कहते है। जो दिखनेमे तो स्थुल हो परन्तु खंड खंड करने मे नही आवे, हस्तादिसे ग्रहण करनेमे नही आवे अैसे धूप, चादनी, छाया आदिक पुद्गल बादरशूक्ष्म कहलाते हैं। जो स्कन्ध तो है शूक्ष्म परन्तु स्थूलसे प्रतिभासते हैं अैसे स्पर्स, रस गन्ध शब्दादिक पुद्गल शूक्ष्म बादर कहलाते है। जो स्कंध अति शूक्ष्म हैं, इन्द्रियोसे ग्रहण करनेमे नही आते अैसे जो कर्म वर्गणादिक है वह शूक्ष्म पुद्गल कहलाते हैं। जो कर्म वर्गणाओसे भी अति शूक्ष्म द्वियाणुक स्कंध ताई जे है ते शूक्ष्मशूक्ष्म कहलाते हैं।

समस्त स्कंधोका जो अंत का भेद है (अवीभाग खन्ड) है सो परमाणु कहलाता है वह परमाणु त्रिकाल अविनासी है। यद्यपि स्कंधो के मिलापसे अेक पर्याय से पर्यायान्तरको प्राप्त होता है, तथापि अपने द्रव्यत्वकर सदा टंकोत्कीर्ण नित्य हैं। वह परमाणु शब्द रहित हैं, यद्यपि स्कंधके मिलापसे शब्द पर्यायको धरता है तथापि व्यक्तरुप शब्द पर्यायसे रहित है। परमाणु अेक

प्रदेसी है द्वीअणुकादि रूप नहि है। जीसका दुसरा भाग नहि हो अैसा निरंश है। परमाणु द्रव्य है उसमे स्पर्श रस गन्ध और रूप चार गुण है। इन चारोही गुणोसे परमाणु मूर्तीक कहलाता है। परमाणु निर्विभाग है क्योकि जो प्रदेश आदिमे है वह. मध्य और अन्तमे है इस कारण दुसरा भाग परमाणुका नहि होता। द्रव्यगुणमें प्रदेश भेद नही होता इस कारण जो प्रदेश परमाणुका हे वही प्रदेश स्पर्स रस गंध वर्णका जान लेना। ये चार गुण परमाणुमें सदाकाल पाये जाते हे, परंतु गौण मुख्यके भेदसे न्यूनाधिक भी इन गुणोका कथन किया जाता है। पृथिवी, जल अग्नि वायु ये चारो ही पुद्गल जातिके परमाणुसे उत्पन्न है। इनके परमाणुके जाति जुदी नही है। पर्यायके भेदसे भेद होता है। पृथ्वी जातिके परमाणुओमें चारोही गुणोकी मुख्यता है। जलमें गंध गुणकी गौणता है, अन्य तीनो गुणोकी मुख्यता है। अग्नीमें गध और रसकी गौणता है, स्पर्स और वर्णकी मुख्यता है। वायुमें तीनो गुणोकी गौणता है, स्पर्सगुणकी मुख्यता है। पर्यायके कारण परमाणुमें नाना प्रकारके परिणाम होते है। कही पर किसी अेक गुणकी प्रगटता अप्रगटता के कारण नाना प्रकारकी परिणतिको धारण करती है।

प्रश्न—जिस प्रकार परमाणुओ के परिणमनसे गंधादिक गुण है उसी प्रकार शब्द भी प्रगट होता होगा ?

उत्तर—परमाणु एक प्रदेसी है इस कारण शब्द प्रगट नही

होता है । शब्द है वह अनेक परमाणूओ के स्कन्धोसे उत्पन्न होता है इस कारण परमाणु अशब्द मय है ।

द्रव्य करणेन्द्रियद्वारा भावकर्णेन्द्रियसे जो धुनी सुनी जाय उसे शब्द कहते है । वह शब्द अनंत परमाणूओ का पिंड अर्थात स्कन्धादि से ही उत्पन्न होता है, क्योंकि जब परस्पर महास्कंधोका संघट्ट होता है, तब शब्दकी उत्पति होती है । और स्वभावसे उत्पन्न अनंत परमाणुओका पिंड अैसी शब्द-योग्य वर्गणामे परस्पर मिलकर इस लोकमे सर्वत्र व्यापी (फैल) रही है । जहा जहां शब्दके उत्पन्न होनेको बाह्य सामग्रीका सयोग मीलता है तहा तहा वे शब्द योग्य वर्गणायें है सो स्वयमेव ही शब्द रुप होय परिणम जाती है । इस कारण शब्द निश्चय करके पुद्गलस्कंधोसे ही उत्पन्न होता है । केई मतावल्बी (वेदान्तादि) शब्दको आकासका गुण मानते है सो आकासका गुण कदापि नही हो शकता । यदि आकासका गुण माना जाय तो कर्णेन्द्रिय द्वारा ग्रहण करनेमे नही आता, कयोंकि आकाश अमूर्तीक है और अमूर्तीक पदार्थका गुणो भी अमूर्तीक होता है । इन्द्रिये मूर्तीक है और मूर्तीक पदार्थ ही इसके द्वारा जाना जाता है । इस कारण जो शब्द आकाशका गुण होता तो कर्ण इन्द्रियसे ग्रहण करनेमे नही आता । वह शब्द दो प्रकारका है, एक प्रायोगिक दूसरा वैश्रसिक । जो शब्द पुरुपादिकके सम्बन्धसे उत्पन्न होता है उसको प्रायोगिक कहते है । और जो प्रघादिकसे

उत्पन्न होता है सो वैश्रसिक कहलाता है। अथवा वही शब्द भाषा अभाषाके भेदसे दो प्रकारका है। तिनमेसे भाषात्मक शब्द अक्षर अनक्षरके भेदसे दो प्रकारका है। संस्कृत, पाकृत, आर्य. म्लेच्छादि, भाषादिरुप जो शब्द है वे शब अक्षरात्मक हैं। और द्वीन्द्रियादी जीवोंके शब्द है सो अनक्षरात्मक शब्द है। अभाषात्मक शब्दोंके भी दो भेद है। १ प्रायोगिक २ वैश्रसिक। प्रायोगिक तो तत, वितत, घन सुसिरादिरुप जानना। तत शब्द उसे कहते है जो वीणादिक से उत्पन हो। वितत शब्द ढोल दमामादिकसे उत्पन्न होते है। घन शब्द करतालादिकसे उत्पन्न होता है। और जो वासादिकसे उत्पन्न होता है सो सुषिर कहलाता है। इस प्रकार यह चार भेद जानना और जो मेघादिकसे उत्पन्न होते है वे वैश्रसिक अभाषात्मक शब्द हैं। यह समस्त प्रकारके शब्द पुद्गल स्कंधो से उत्पन्न होता है ऐसा जानना।

एक शुद्ध पुद्गल परमाणू कैसा है, जो सदा अविनासी है अपने एक प्रदेशकर रूपादिक गुणोसे भी कभी त्रिकालमें रहित नहि होता। फिर कैसा है? जगह देनेके लिये समर्थ है, परमाणूके प्रदेशसे जुदे नही ऐसे जो उसमें स्पर्शादि गुण उनको अवकाश देनेके लिये समर्थ है। फिर कैसा है? जगह देता भी नही अपने एक प्रदेशकर आदि मध्य अन्तमे निर्विभाग एक ही है। इस कारण दो आदि प्रदेशोकी समाई (जगह) उसमे नही

है। इस लिये अवकाशदान देनेको असमर्थ भी है। फिर कैसा है। अपने एक ही प्रदेशसे स्कन्धोका भेद करनेवाला है। जब अपने विघटनका समय पाता है उस समय स्कंधसे निकल जाता है, इस कारण स्कंधका खंड करने वाला कहा जाता है। फिर कैसा है? स्कंधोका कर्ता भी है, अर्थात अपना काल पाकर अपनि मिलन शक्ति से स्कंधोमें जाकर मिल जाता है इस कारण इसको स्कंधो का कर्ता भी कहा गया है। फिर कैसा है' कालकी संख्याका भेद करनेवाला है। एक आकासके प्रदेशमे रहनेवाले परमाणुको दूसरे प्रदेशमें मंदगतिसे गमन करते जो समय रूप काल परिणाम प्रगट होता है उसको भेद करता है, इस कारण काल अंसका भी निमित कर्ता है। फिर यह परमाणु द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी संख्याके भेदको भी करता है. सो दिखाया जाता है। यही परमाणु अपने एक प्रदेश परिमाणसे दो आदि प्रदेसोसे लेकर अनंत प्रदेश पर्यंत क्षेत्र संख्या का भेद कहता है। फिर यही परमाणु अपने एक प्रदेशके द्वारा प्रदेशसे प्रदेशांतर गति परिणामसे दो समयसे लेकर अनंत काल पर्यंत काल संख्याके भेदको करे है। फिर यही परमाणु अपने एक प्रदेशमे जो वर्णादिक भाव है, उसको जघन्य उतकृष्ट भेदसे उस भेद संख्या को भी करता है। यह चार प्रकारका भेद भाव संख्या परमाणु जनित जान लेना। पुद्गल पुरमाणुओ मे विशेप यह धात है कि जैसे आत्मामे भोगनेकी शक्ति है इसी प्रकार

पुद्‌गल द्रव्यमे भोगनेकी शक्ति नही हे। एक शुद्ध पुद्‌गल पर-परमाणुमें रस गुणकी एक, वर्णगुणकी एक, गन्ध गुणकी एक और स्पर्स गुणमेसे शीतरूक्ष, शीतस्निग्ध, उष्ण स्निग्ध, उष्ण रूक्ष इन चार युगलोंमे से कोइ एक युगल रुप पर्याय होती हे इस प्रकार एक परमाणुमे पाच पर्याय जानना। यह परमाणु स्कन्ध भावको परणया हुवा शब्दपर्याय का कारण हे, और जब स्कन्ध मे जुदा होता हे तब शब्दसे रहित हे। यद्यपी अपने स्निग्ध, रूक्ष पर्यायोका कारण पाकर अनेक परमाणु स्कंध परणतिको धरकर एक होता हैं। तथापि अपने एक रुपसे अर्थात अपने अस्तित्व स्वभावको नही छोडता यह सदाही एक द्रव्य रहता है। जो पांच प्रकार इन्द्रियोके विषय, पाच प्रकारकी इन्द्रिये. स्वासोस्वास, द्रव्य मन, द्रव्य कर्म, नोकर्म, इनके सिवाय जो जो अनेक पर्यायोकी उत्पतिके कारण नाना प्रकारकी अनंतानंत पुद्‌गल वर्गणाये हे, अनंती असंख्येयाणुवर्गणीं हे, और अनंती वा असंख्याती संख्येयाणुवर्गणा है, दो अणुके स्कन्ध तांई और परमाणु अविभागी इत्यादि जो भेद है वे समस्त ही पुद्‌गल द्रव्यमयी जानना।

शंका—जल पुद्‌गल द्रव्य है, शीतलता जलका गुण है, और गुणका कभी नाश होता नही यह सिद्धांत है। जब जल उष्ण होता है तब शीतलता उसमे देखनेमे आती नही तो क्या शीतलता गुणका नाश हो गया?

समाधान—जल पुद्‌गल द्रव्य नहि है, वहतो उपचारिक

द्रव्य है, यथार्थमे जल पुद्गल द्रव्यकी पर्याय है। शीतलता जलका गुण नहि है, परन्तु वह स्पर्स नामका गुणकी पर्याय है, किन्तु वह पर्याय सदा रहती हे इसलिये उपचारसे उसको गुण कहा जाता है। जीस कालमें जल उष्ण हुवा उसी कालमे शीतलताका नाश हो जाता है, क्योंकि एकी साथ दो पर्याय कभी रह नहि शकती है। जिस कालमे जल उष्ण हुवा उसी कालमे स्पर्श नामका गुण कायम है। शीतल पर्यायका नाश हुवा उष्ण पर्यायकी उत्पति हुई और स्पर्स नामका गुण ध्रुव हे। इसी प्रकार ज्ञान करना चाहिये। उसी प्रकार अग्नि--सोना आदि पुद्गल द्रव्य नहि हे परन्तु पुद्गल द्रव्यकी पर्याय है। वह तो उपचारसे द्रव्य कहा जाता है।

इति " **भेदज्ञान** " शास्त्र विषे पुद्गलास्तिकायका व्याख्यान पूर्ण हुआ।

धर्मास्तिकाय द्रव्य का स्वरुप

प्रश्न—धर्मास्तिकाय द्रव्य का क्या स्वरुप है ?

उत्तर—धर्मद्रव्य जो है सो काय सहित प्रवर्तें है। धर्मद्रव्य स्पर्स, रस, गंध, और वर्ण गुणोसे रहित है इस कारण अमूर्तीक है। क्योकि स्पर्स, रस, गंध, और वर्णवती वस्तु सिद्धांतमे मूर्तीक कही है। यह चार गुण जीसमे नही हें उसी का नाम अमूर्तीक है। इस धर्मद्रव्य मे शव्द भी नही है। क्योंकि शव्द भी मूर्तीक होते हैं। इस कारण शव्द पर्याय से रहित है। लोक प्रमाण असंख्यात प्रदेसी हैं। यद्यपि अखंड द्रव्य है परन्तु भेद दिखने के लिये परमाणुओ द्वारा असख्यात प्रदेसी गीना जाता है। धर्मद्रव्य सदा अविनासी टंकोत्कीर्ण वस्तु है, यद्यपि अपने अगुरुलघु गुणसे षट्गुणी हानिवृद्धि रुप परिणमता है, परिणामसे उत्पाद व्यय संयुक्त है, तथापि अपने ध्रौव्य स्वरुप से चलायमान नही होता, क्योकि द्रव्य वही है जो उपजे, विनशे, स्थिर रहै। इस कारण यह धर्म द्रव्य, अपने ही स्वभावको परिणये जो जीव पुद्गल तिनको उदाशीन अवस्थासे निमितमात्र गति को कारणभूत है। और यह अपनी अवस्था से अनादि अनंत है, इस कारण कार्य रुप नही है। कार्य उसे कहते है जो किसीसे उपज्या होय। गति को

निमित्त पाय सहायी है, इस लिये यह धर्म द्रव्य कारण रुप है किन्तु कार्य नही है। जैसे जल मच्छियोंके गमन करते समय न तो आप उनके साथ चलता है, और न मच्छियो को जबरजस्ति से चलावे है, किन्तु उनके गमन को निमित मात्र सहायक है। ऐसा ही कोइ एक स्वभाव है। जल मच्छली को जबरजस्तिसे चलाता नहि है, मच्छली अपनी शक्ति से ही चलती है तो भी, जल बिना चल नहि शकती इसी प्रकार, जीव और पुद्गल को धर्म द्रव्य जबरजस्ति से चलाता नहि हैं, जीव और पुद्गल अपनी २ शक्ति से ही चलता है, तो भी धर्म द्रव्य विना चल नही शकता। धर्म द्रव्य तो उदासीन है परन्तु कोइ एसा ही एक अनादि निधन स्वभाव है कि जीव पुद्गल गमन करे तो उनको निमित मात्र सहायक होत्ता है। यह धर्म द्रव्य का स्वरुप हुआ।

धर्मास्तिकाय द्रव्य वा स्वरुप

प्रश्न—अधर्मास्तिकाय द्रव्य का क्या स्वरुप है?

उत्तर—अधर्म द्रव्य अपनी सहज अवस्था से अपने असंख्यात प्रदेश लिये लोकाकास प्रमाणतासे अविनाशी है, अनादि कालसे तिष्टै है उसका स्वभाव भी जीव पुद्गल की स्थिरता को निमितमात्र कारण है। परन्तु अन्य द्रव्य को जबरजस्ति से नही ठहराता। जैसे भूमि अपने स्वभाव ही से अपनी अवस्था

लिये पहिले ही तिष्टै है स्थिर है और घोडादि पदार्थों को जोरावरी नही ठहराती । घोडादि जो स्वयं ही ठहरना चाहे तो पृथ्वी सहज अपनी उदासीन अवस्था से निमित मात्र स्थिति को सहायक है । उसी प्रकार आपही से जो जीव पुद्गल द्रव्य स्थिर अवस्था रूप परिणमे तो अधर्म द्रव्य अपनी स्वाभाविक उदासीन अवस्था से निमित मात्र सहाय होता है । जैसे धर्म द्रव्य निमित मात्र गति को सहायक हे, उसी प्रकार अधर्म द्रव्य स्थिरता को उदासीन सहकारी कारण जाननां ।

शंका—धर्म द्रव्य गति स्थिति को कारण नही हैं, परन्तु आकास ही द्रव्य गमन स्थिति को कारण है ? धर्म अधर्म द्रव्य नही है ।

समाधान—धर्म, अधर्मद्रव्य अवश्य है । जो वह दोनो द्रव्य नही होते तो लोक अलोक का भेद नही होता । धर्म अधर्म द्रव्यसेही लोक अलोककाही भेद होता हे । लोक उसको कहते हैं जहा जीवादिक समस्त पदार्थ वसता हो । जहा एक आकास ही है सो अलोक हैं । इस कारण जीव पुद्गल्की गति स्थिती लोकाकासमे है, अलोकाकासमे नहि है । जो इन धर्म अधर्म द्रव्यका गति स्थिती निमितका गुण नही होता तो लोका लोक का भेद नहि होता । जीव और पुद्गल ये दोनोही द्रव्य गति स्थिती अवस्थाको धरते है इनकी स्थिती गतिका बहिरंग कारण धर्म, अधर्म द्रव्य लोकमे ही है । जो वह धर्म अधर्म

द्रव्य लोकमें नही होते तो लोक अलोक अैसा भेद ही नही होता सब जगह ही लोक होता। इस कारण धर्म अधर्म द्रव्य अवश्य है। जहांतक जीव पुद्गल गति स्थितीको करते हैं वहांतक लोक है, उससे परे अलोक जानना।

यह धर्म अधर्म द्रव्य दोनोही अपने २ प्रदेशोको लिये हुये जुदे जुदे है, एक लोकाकास क्षेत्रकी अपेक्षासे जुदे जुदे नही है, क्योंकि, लोकाकासके जिन प्रदेशोमे धर्म द्रव्य है, उन ही प्रदेशोमें अधर्म द्रव्य भी है, दोनोही हिलनचलन रूप क्रियासे रहित है। परन्तु सर्व लोक व्यापी है। समस्त लोकव्यापी जीव पुद्गलोको गति स्थिति को सहकारी कारण है, इस कारण दोनो ी द्रव्य लोक मात्र असंख्यात प्रदेसी है। धम अधर्म द्रव्य, जीव पुद्गलको गति स्थितिको प्रेरक कारण नहि है, परन्तु उदासीन कारण है। जैसे पवन अपने चंचल स्वभावसे ध्वजाओकी हलन चलन क्रियाका प्रेरक कारण दिखनेमे जाता है, अर्थात जिस दिशादिमे पवन चलेगा वही ही दिशादिमे नियमसे ध्वजा हलन चलन क्रिया करेगी, तैसे ही धर्म द्रव्य प्रेरक निमित नही है। धर्म द्रव्य जो है सो आप स्वयं हलनचलन रूप क्रियासे रहित है, किसी कालमे आप गति परणतिको (गमनक्रियाको) नही धारता। इस कारण जीव पुद्गलकी गति परणतिका सहायक किस प्रकार होता है? उसका द्रष्टांत देते है। जैसे कि निष्कम्प सरोवरमें जल मच्छलीओके गतिको सहकारी कारण है, स्वयं प्रेरक होकर मच्छलीयोको नहि जल

चलाता, परन्तु मच्छली अपनी शक्तिसेही चल्ती है, जल बीना चल नहि शकती, उसी प्रकार जीव पुद्गल अपनी शक्तिसेही चलता है धर्म द्रव्य चलाता नहि, किन्तु जैसे जल बीना मच्छली चल नही शकती, उसी प्रकार धर्म द्रव्य बीना जीव पुद्गल चल नहि शकता। इसी प्रकार अधर्म द्रव्य भी निमित मात्र है। जैसे घोडा प्रथम ही गति कियाको करके फिर स्थिर होता है, अस्वारकी स्थितिका कर्ता दिखिये है, उसी प्रकार अधर्म द्रव्य प्रथम आप चलकर पुद्गलकी स्थिर किया का कर्ता आप नही है, किंतु आप निष्क्रिय है, इसकारण गति पूर्व स्थिति परिणाम अवस्थाको प्राप्त नही होता है। यदी पर द्रव्यकी क्रियासे इसकी गति पूर्व क्रिया नही होती तो किस प्रकार स्थिति क्रियाका सहकारी कारण होता है? भूमि चल्ती नही परन्तु गति क्रियाके करने हारे घोडेकी स्थिति क्रियाको सहकारणी है। उसी प्रकार अधर्म द्रव्य जीव पुद्गलकी स्थितिको उदासीन अवस्थासे स्थितिक्रियाका सहायी हे। धर्म, अधर्म द्रव्य, जीव पुद्गलकी गति स्थिति का उपादान कारण नही है, परन्तु उदासीन भावसे निमित कारण मात्र कहा जाता है। यदि यह धर्म अधर्म द्रव्य मुख्य कारण अर्थात उपादान कारण होकर जबरजस्तिसे जीवपुद्गलको चलाते और स्थिर करते तो सदाकाल जो चलते वही चलते ही रहते, और स्थिर होते वे सदा काल स्थिर रहते इस कारण धर्म अधर्म द्रव्य मुख्य कारण नहि हे यह बात सिद्ध हुइ। व्यवहारनयकी अपेक्षा उदासीन

वस्थासे निमित्त कारण हैं। निश्चय करके जीव पुद्गलकी गति स्थितिका उपादान कारण अपनेही परिणाम है। यह अधर्मास्तिकायका व्याख्यान पूर्ण हुआ।

आकास्तिकाय द्रव्य का स्वरूप

प्रश्न— आकास्तिकाय द्रव्यका क्या स्वरुप है ?

उत्तर— आकासद्रव्य अखंड हैं परन्तु लोक अलोकके भेदसे दो प्रकारका है। लोकाकास उसे कहते है जो जीवादि पाच द्रव्यो जीतना आकास क्षेत्रमे हैं उसीका नाम लोकाकास है। और अलोककास है जहापर आप एक आकास ही है। वह अलोकाकास एक द्रव्यकी अपेक्षासे लोकसे जुदा नही है, ओर वह अलोकाकास पांच द्रव्योसे रहित है, जब अपेक्षा लीजावे तब जुदा है। अलोकाकास अनंत प्रदेशी है। लोकाकास असख्यात प्रदेशी है।

शंका— लोकाकासका क्षेत्र असंख्यात प्रदेसी है उसमे अनंत जीवादि पदार्थ कैसे समा रहे है।

समाधान— एक घरमे जीसप्रकार अनेक दीपकोका प्रकास समाय रहा हैं, और जीस प्रकार एक छोटेसे गुटकेमे वहुतसी सुवर्णकी ासी रहती है उसी प्रकार असंख्यात प्रदेसी आकासमे सहजही अवगाहना स्वभावसे अनंत जीवादि पदार्थ समा रहे है। वस्तुओके स्वभाव वचनगम्य नही है, सर्वज्ञ देवही

जानते है, इसकारण जो अनुभवी है वे संदेह उपजाते नही, वस्तुस्वरुपमे सदा निश्चल होकर आत्मीक अनंत सुख वेदते है।

प्रश्न— धर्म, अधर्म द्रव्य गति स्थितिके कारण क्यो कहते हो- आकासको ही गति स्थितिमे कारण क्यो नहि माना जावे ?

उत्तर— जो गमन स्थितिका कारण आकासको ही मान लिया जावे तो धर्म, अधर्म द्रव्यके अभाव होनेसे मुक्त जीवोका अर्थात सिद्ध परमेष्टिओका अलोकाकासमे भी गमन होता। इससे साबीत होता है कि धर्म-अधर्म द्रव्य अवस्य है। उनसे ही लोककी मर्यादा है। लोकके आगे गमन स्थिति नहि है।

धर्म-अधर्म और आकास यह तीनो हीं द्रव्य एक क्षेत्रावगाहकर एक हे परतु निज स्वरुपसे तीनो पृथक पृथक है। यह तीन द्रव्यो व्यवहारनयकी अपेक्षा एक क्षेत्रावगाही है, अर्थात जहां आकासद्रव्य है तहाही धर्म, और अधर्मद्रव्य है। कैसे है यह तीनो द्रव्य बराबर है असंख्यात प्रदेश जिनके अैसे हैं। फिर कैसे है ? निश्चयनयकी अपेक्षा भिन्न भिन्न पाये जाते हैं, अर्थात निज स्वभावसे टकोतकीर्ण अपनी जुदी जुदी अवस्था लिये हुए है, अत अेव ये तीनोही द्रव्य व्यवहारकी अपेक्षा एक क्षेत्रावगाही है, इस कारण एक भावको और निश्चयनयकी अपेक्षा यह तीनो अपनी जुदीर सत्ताकेद्वारा भेदभावको करते है। एस प्रकार इन तीनो द्रव्योके व्यवहार निश्चयनयसे अनेक विलास जानने।

प्रश्न— क्षेत्र कितने प्रकारका है ?

उत्तर— द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा क्षेत्र एक प्रकारका है। अथवा प्रयोजनके आश्रयसे क्षेत्र दो प्रकारका है, लोकाकास, अलोकाकास। अथवा देशके भेदसे क्षेत्र तीन प्रकारका है। मंदराचलकी चुलीकासे उपरका क्षेत्र उर्द्धलोक है। मंदराचलके मूलसे निचेका क्षेत्र अधोलोक है। मंदराचलसे परिच्छिन्न अर्थात तत्प्रमाण मध्यलोक है।

इस प्रकार आकास्तिकाय द्रव्यका स्वरुप पूर्ण हुआ।

काल द्रव्य का स्वरूप

प्रश्न—काल द्रव्यका क्या स्वरुप है?

उत्तर—जो क्रमसे अति सूक्ष्म हुआ प्रवर्ते है वह तो व्यवहार काल है, और उस व्यवहारकालका जो आधार है वह निश्चयकाल द्रव्य है। यद्यपि व्यवहारकाल है सो निश्चय कालकी पर्याय है, तथापि जीव पुद्गलोके परिणामोसे वह जाना जाता है। इस कारण जीव पुद्गलोके नव जीर्णतारुप परिणामोसे उत्पन्न हुआ कहा जाता है। और जीव पुद्गलका जो परिणमन है सो बाह्य मे द्रव्य काल के होते संते समय पर्यायमे उत्पन्न है। इस कारण यह बात सिद्ध हुई कि समयादि रुप जो व्यवहार काल है सो तो जीव पुद्गलोके परिणामोसे प्रगट किया जाता है, और निश्चय काल जो है सो समयादि व्यवहार कालसे अविना

भावसे अस्तित्वको धरे हैं, क्योकि, पर्यायसे पर्यायीका अस्तित्व ज्ञात होता है। इनमेसे व्यवहारकाल क्षण विनश्वर है, कयोंकि, पर्याय स्वरुपसे सूक्ष्म पर्याय उतने मात्र ही है, जितने कि समयावलिकादि है। और निश्चय काल जो है सो नित्य है. क्योंकि, अपने गुण पर्याय स्वरुप द्रव्यसे सदा अवीनासी है।

जिस प्रकार जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकास इन पाचो द्रव्योमे गुण पर्याय है, और जैसा इनका सत् द्रव्य लक्षण है, तथा इनका उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य लक्षण है, वैसे ही गुण पर्यायादि द्रव्यके लक्षण कालद्रव्यमे भी है, इस कारण कालका नाम भी द्रव्य है।

कालको और अन्य पाचो द्रव्योको द्रव्य संज्ञातो समान है, परन्तु जीवादि पाच द्रव्योकी काय संज्ञा है. क्योकि, काय उसको कहते है, जिसके बहुत प्रदेश होते हैं। जीव, धर्म, अधर्म, और लोकाकास इन चारो द्रव्योके असंख्यात प्रदेश है. पुद्गलके परमाणु यद्यपि एक प्रदेशी है. तथापि पुद्गलोंमे मिलन शक्ति है इस कारण पुद्गल संख्यात, असंख्यात तथा अनत प्रदेशी है। परन्तु काल द्रव्यके बहुत प्रदेशरूप काय भाव नहि है।

कालाणु एक प्रदेशी है, लोकाकाशके असख्यात प्रदेश है इतनाही असख्याती कालणु है. सो लोकाकाशके एक एक प्रदेश पर एकएक कालणु रहता है।

शंका—काल किससे किया जाता है अर्थात कालका

साधन क्या है ?

समाधान—परमार्थ कालसे काल, अर्थात व्यवहारकाल, निष्पन्न होता है।

शंका—काल कहा पर है, अर्थात कालका अधिकरण क्या है ?

समाधान—त्रीकालगोचर अनंत पर्यायोंसे परिपूरित एक मात्र मानुषक्षेत्र सम्बन्धी सूर्यमंडल मेही काल है, अर्थात कालका आधार मनुष्य क्षेत्र सम्बन्धी सूर्यमंडल है।

शंका—देवलोकमें तो दिनरात्रि रूप, कालका अभाव है, फिर वहांपर कालका व्यवहार कैसे होता है ?

समाधान—नही कयोकि, यहां के कालसेही देवलोकमें कालका व्यवहार होता है.

शंका—यदी जीव और पुद्गलो का परिणाम ही काल है, सभी जीव और पुद्गलोंमें काल को संस्थित होना चाहिये ? तब असी दशामें मनुष्य क्षेत्र के एक सूर्य मंडलमें ही काल स्थित है यह बात घटित नहि होती है ?

समाधान—यह कोई दोष नही है, क्योंकि, उक्त कथन निरवद्य (निर्दोष) है, किन्तु लोकमें या शास्त्रमें उस प्रकार से संव्यवहार नहि है, पर अनादिनिधन स्वरूपसे सूर्यमंडल की क्रिया परिणामोमें ही काल का संव्यवहार प्रवृत है, इसलिये इसैका ही ग्रहण करना चाहिये ।

शंका—काल कितने समय तक रहता है ?

समाधान—काल अनादि और अपर्य वसित है। अर्थात काल का न आदि है, न अन्त है।

शंका—काल कितने प्रकार का होता है ?

समाधान—सामान्य से एक प्रकार का काल होता है। अतीत, अनागत, वर्तमान की अपेक्षा काल तीन प्रकार का होता है। अथवा, गुणस्थिति काल, भवस्थिति काल, कर्मस्थिति काल, उपपाद काल, और भावस्थिति काल, इस प्रकार काल का छेह भेद है। अथवा काल अनेक प्रकार का है, क्योंकि, परिणामोंसे पृथग्भूत काल का अभाव है, तथा परिणाम अनंत पाया जाता है। (ध.–४–३२०)

पुद्गल परिवर्तन का काल सब से कम है। क्षेत्र परिवर्तन का काल पुद्गल परिवर्तन काल से अनतगुणा हैं। काल परिवर्तन का काल क्षेत्र परिवर्तन के कालसे अनंतगुणा है। भव परिवर्तनका काल काल परिवर्तन काल से अनंतगुणा है भाव परिवर्तन का काल भव परिवर्तन के काल से अनंतगुणा है।

यह काल द्रव्य का स्वरुप पूर्ण हुआ।

क्रियावान द्रव्य का स्वरुप

प्रश्न—छोह द्रव्य मे कितना द्रव्य क्रियावान है ?

उत्तर—एक प्रदेश से प्रदेशांतर मे जो गमन करनां उसका नाम क्रिया है, षटद्रव्योमेंसे जीव और पुद्गल यह दोनो द्रव्य प्रदेश से प्रदेशांतरमे गमन करते है, और कंपरुप अवस्था को धरते है। इस आरण क्रियावंत कहे जाते है। और शेष के चार द्रव्य निष्क्रिय निष्कम्प है। जीव द्रव्य की क्रिया को निमित कर्म नोकर्म रुप पुद्गल ही है, इन की ही संगति से जीव अनेक विकार रुप होकर परिणमन करता हैं। और जब काल पाय कर पुद्गल मयी कर्म नोकर्म का अभाव होता हैं तब साहजिक निष्क्रिय निष्कम्प स्वाभाविक अवस्था रुप सिद्ध पर्याय को धरता है। इस कारण पुद्गल का ही निमित पाकर जीव क्रियावान जाननां। और काल द्रव्य का कारण पाकर पुद्गल अनेक स्कन्ध रुप विकार को धारण करता है। इस कारण काल पुद्गल की क्रिया को सहकारी कारण जाननां परन्तु इतना विशेष है कि जिवद्रव्य की तरह पुद्गल निष्क्रिय कभी भी नही होता। जीव शुद्ध हुए बाद क्रियावान किसी कालमें भी नही होयगा। पुद्गल का यह नियम नही है। सदा क्रियावान पर सहाय से रहता हैं।

शंका—जीवका उर्द्धगमन स्वभाव तब क्यो कहा ?

समाधान—गमन करना जीव का स्वभाव नहि है परन्तु विभाव भाव है। जीस जीवो को उत्पाद व्यय का स्वरुप का ज्ञांन नही है ऐसा वेदान्तमतावलम्बी ने प्रश्न कीया कि जब आत्मा सर्व कर्मोसे मुक्त हो गया तब अधोलोक की और गमन न करते उर्द्ध लोक की और गमन क्यो किया ? ऐसे जीव को समजाने के लिये **उपचार से कह दिया कि आत्मा का स्वभाव उर्ध्व गमन है**। ऐसा कह कर समजाने के लिये उपचार से उदाहरण के लिये शूत्र भी बना दिया कि

आविद्ध कुलाल चक्रवद व्यपगतलेपालावुवदेरएड बीज वद ग्न शिखावच्च ॥ (१०।७)

परतु 'वस्तुका स्वरुप ऐसा नहि। यह तो समजानेके लिये उपचारसे मात्र कहा है। जैसे जल पुद्गलकी पर्याय है, तथा अग्नि भी पुद्गलकी पर्याय है। दोनोमे क्रियावती शक्ति है और वह शक्ति दोनोमे विकारी है। तो भी समजाने के लिये उपचारसे जल और अग्निमे द्रव्यका उपचार कर कह दिया कि,

को शिखवत है निरको, निचेको ढल जाय
अग्नि शिखा उचिचले, यह अनादि स्वभाव ॥

विचारीये दोनोमे क्रियावती शक्ति विपरित परिणमन कर रही है। पथार्थसे विचारा जावे तो दोनोमे, क्रियावती शक्ति विकारी परिणमन कर रही है किसको स्वभाव शक्ति कहोगे ?

इसी प्रकार **आत्माका उर्द्धगमन स्वभाव नहि है** परन्तु उदाहरणके लिये उपचारसे कहा है। गमन करनाही आत्मा का विकारी परिणमन है। तब **प्रश्न** यह रहता हैं कि मूक्त आंत्माने उर्द्धगमन कैसे किया ? कर्मका तो अभाव हो गया है। तव विकारि परिणमन भी कह शकते नहि। तब यथार्थमे क्या है ? **समाधान– जिसको आप गमन देखते हो वह ते। संसारकी व्यय पर्याय है और उत्पाद पर्याय सिद्ध पर्याय है**। जैसे एक पुद्गल परमाणु सप्तम नरकसे रज्जुगतिसे तीव्र गतिसे गमन करे तो चौद रज्जु एक समयमे लोकके अगभागमे जाता है। वहा विचारेये कि वह पर-माणुकि व्यय पर्याय कहां तक मानी जावेगी ? और उत्पाद पर्याय कहा मानी जावेगी ? लोकके अग्र भागमे उत्पन्न होना वही उत्पाद पर्याय है, और वाकी की व्यय पर्याय है।

जैसे एक आत्मा अगीयारमे गुण स्थानसे गीर कर एक समयमे मिथ्यात्त्व गुणस्थानमे आता है। वहां अग्यारमे गुण स्था-नकी व्यय पर्याय कहा तक मानी जावेगी, और मिथ्यात्वकी उत्पाद पर्याय कहा से मानी जावेगी ?

इसका विचार करनेसे आपसे आप मालुम हो जावेगा कि चौदमा गुणस्थानका त्याग सो व्यय पर्याय हे और सिद्ध पदकी प्राप्ति अर्थात् लोकके अग्रभागमे स्थिर होना उत्पाद पर्याय य। **इससे सिद्ध हुआ कि उर्द्धगमन आत्माका स्वभाव-**

नही हैं, परन्तु विभाविक अवस्था है।

इति भेदज्ञान शास्त्र विषे क्रियावान द्रव्यका स्वरुप पूर्ण हुआ।

जीवोका विशेष स्वरुप

अनादि कालसे जीवो मिथ्यात्व, अज्ञान, अविरत भावोके कारणसे चार गति रुपी संसारमे भ्रमण कर रहा है, और अपना स्वभावका ज्ञान नहीं होनेसे दुःखी हो रहा है।

प्रश्न— अज्ञान किसको कहता है।

उत्तर— अज्ञानका अर्थ ज्ञान नही होना, या, कम ज्ञान होना, यह अर्थ नही लेना चाहिये, क्योकि, ज्ञानतो आत्माका स्वभाव भाव है, और स्वभाव बंधका कारण हो जावे तो आत्मा संसारसे कभी छुट या मुक्त नही हो शकता है। बंधका कारण मिथ्यात्व और कषाय भाव है। अज्ञानका अर्थ कषाय सहित ज्ञानोपयोग करनां चाहिये। ज्ञानका कार्य घुमना नही है परंतु स्थिर रहकर देखना है, किंतु अनादि कालसे ज्ञानकी पाछल इच्छाओ लगी है, इस इच्छाके कारण ज्ञान घुमता है, यह इच्छाओ मिटजानेसे ज्ञान आपसे आप स्थिर होजावेगा, कि तुरत ज्ञान केवलज्ञानरुप प्रगट होजावेगा।

सम्यगदर्शन, सम्यगज्ञान, और सम्यगचारित्र इन तीनोहीका जब एकबार परिणमन होता है तब मोक्षका मार्ग होता हैं।

चारित्र वही है जो दर्शन ज्ञान सहित है, दर्शन ज्ञानके विना जो चारित्र है, सो मिथ्या चारित्र है। चारित्र वही है जो रागद्वेष रहित समता रससंयुक्त हो, जो कषाय रस गर्भित है सो चारित्र नही है संक्लेश भाव हैं। अैसा चारित्र है सो साक्षात मोक्ष स्वरुप है।

जीवोके अनादि अविद्या का प्रतापसे पदार्थोकी विपरीत श्रद्धा है। जव आगम द्वारा यथार्थ ज्ञान कर मिथ्यात्व नष्ट होय तव यथार्थ प्रतिती होय उसीका नाम सम्यगदर्शन है। वही सम्यगदर्शन शुद्ध चैतन्य स्वरुप आत्म पदार्थके निश्चय करनेका वीज भूत है। यथार्थ ज्ञानका नाम सम्यग ज्ञान है, वही सम्यग ज्ञान आत्मतत्व अनुवनकी प्राप्तिका मूल है। सम्यग ज्ञान सम्यग दर्शन की प्रवृतिके प्रभावसे समस्त कुमार्गोसे निवृत होकर आत्मस्वरुपमे लीन होय, इन्द्रिय मनके विषय भूत वाहय पदार्थोमे रागद्वेष रहित जो साम्य भावरुप निर्विकार चैतन्य परिणाम, अर्थात वीतराग भाव सोही चारित्र है।

आगम द्वारा संयोग सम्बन्धसे जीवका क्या स्वरुप हे यह जाननेकी वडी जरुरत हे, क्योंकि निश्चयमे तो जीव अरुपी है इसलिये चक्षु इन्द्रिय द्वारा देख नहि शक्ते है तो भी संयोग द्वारा इसका स्वरुप जाना जाता है। इसलिये संयोगी स्वरुप जानना वडी आवस्यक है।

संयोग सम्बन्धकी अपेक्षासे जीव पाच प्रकारका है। १ एकेन्द्रिय-

जीव. २ द्वीइन्द्रियजीव ३ त्रिइन्द्रिजीव. ४ चौइन्द्रियजीव. ५. पेंचेन्द्रियजीव। जीव दो प्रकारका भी कहा जाता है। १ स्थावरजीव. २ त्रसजीव। जिसको स्थावरनामा नामकर्मका उदय है वह स्थावरजीव है। जिसको त्रसनामा नामकर्मका उदय है वह त्रस जीव है। एकेन्द्रियको स्थावर जीव कहते है। स्थावर जीव पाच प्रकारका है। १ पृथवीकायिक २ जलकायिक. ३ अग्निकायिक. ४ वायुकायिक. ५ वनस्पतिकायिक। यह पांच प्रकारके स्थावर जीवमें भी दो भेंद है। १ शूक्ष्म जीव. २ बादर जीव।

प्रश्न—— शूक्ष्म जीव किसको कहते है?

उत्तर—— जिसको शूक्ष्मनामा नामाकर्मका उदय है वह शूक्ष्म जीव है। जिसको गमन करनेमे कोई रोक शकता नही एवं जो कोइसे रुका जाता नही है। जो काटनेसे कटा नही जाता। जलनेसे जल नही शकता। मारनेसे मारा नही जाता। अैसा जीवोका नाम शूक्ष्म जीव है।

प्रश्न—— बादरजीव किसको कहते है?

उत्तर—— बादरनामा नामकर्मका जिसको उदय यह बादर जीव है। जिसका गमन दुसरेके द्वारा रुका जावे उसका नाम बादर जीव है।

एकेन्द्रिय जीवका स्वरुप

स्थावर नामानाम कर्मके उदयसे तथा स्पर्शन इन्द्रियावरणीय कर्मका आवरणके क्षयोपशमसे जिस जीवको अैसा शरीर मिला है कि, जिसमे रहते मात्र स्पर्शन इन्द्रियके विषयको भोग शकता है

या जान शकता है वे एकेन्द्रिय जीव अनेक २ अवान्तर भेदसे बहुत जात है।

पृथ्वी जिसका शरीर है वह पृथ्वी कायिक जीव हैं। पृथ्वी कायिक जीव दों प्रकारका होता है। १ शूक्ष्म. २ बादर।

जल जिसका शरीर है वह जल कायिक जीव है। जल कायिक जीव दो प्रकारका है। १ शूक्ष्म. २ वादर। अग्नि जिसका शरीर है वह अग्नि कायिक जीव हैं। अग्नि कायिक जीव दो प्रकारका है। १ शूक्ष्म. २ बादर। 'वायु जिसका शरीर है वह वायु कायिक जीव है। वायु कायिक जीव दो प्रकारका हैं। १ शूक्ष्म. २ वादर। वनस्पति जीसका शरीर हैं वह वनस्पति कायिक जीव है। वनस्पति कायिक जीव दो प्रकारका है। १ शूक्ष्म. २ वादर.। वनस्पति कायिक जीवमे और दो भेद है। १ साधारण, २ प्रत्येक।

प्रश्न— साधारण किसको कहते हैं?

उत्तर— जिसको साधारण नामा नामकर्मका उदय हैं वह साधारण जीव कहलाता है। एक शरीरमे अनंत जीव रहते हो अर्थात–अनंत जीवोका शरीर इन्द्रिय तथा स्वासोस्वास एकही हो उसे साधारण जीव कहते है। जिसका दुसरा नाम "**निगोद**" है।

शंका—अनन्तका क्या स्वरुप है?

समाधान—अनन्तका स्वरुप निम्न प्रकार है।

संते वएण णिट्ठादि कालेणाणंतएणवि ।
जो रासी सो अणंतो त्तिविणिदठो महेसिणा ।३०॥

अर्थ—व्ययके होते रहनेपर भी अनंतकालके द्वारा भी जो रासी समाप्त नही होती है, उसे महर्षियोने अनंत इस नामसे विनिर्दिष्ट किया है। (ध. ४–३३८)

शंका—असख्यात और अनंत मे क्या भेद है ? (ध. ३–२६७)

समाधान—एक एक संख्याके घटाते जाने पर जो रासी समाप्त हो जाती है वह असंख्यात हे, और जा रासी समाप्त नही होती है वह अनत है।

शंका—यदि ऐसा है तो व्यय सहित होनेसे नाशको प्राप्त होनेवाला अर्धपुद्‌गल परावर्तन काल भी असंख्यात हो जायगा ?

समाधान—हो जाओ।

शंका—तो फिर उस अर्धपुद्‌गल परावर्तन कालको. अनत संज्ञा कैसे दि गय है।

समाधान—नही, क्योकि, अर्धपुद्‌गलरूप परिवर्तन कालको जो अनत संज्ञा दी गय है, वह उपचार निमित्तिक है। आगे इसीका पृष्टीकरण करते है। अनंतरूप केवल ज्ञानका विषय होनेसे अर्धपुद्‌गल परिवर्तन काल भी अनंत है, ऐसा कहा जाता है।

शंका—केवलज्ञानके विषयत्वके प्रति कोई विशेपता न न होनेसे सभी संख्याओको अनन्तत्व प्राप्त हो जावेगा ?

समाधान—नही क्योंकि, जो संख्याअें अवधिज्ञानका विषय होशकती है, उनसे अतिरिक्त उपरकी संख्याअे केवल ज्ञानको छोडकर किसीभी ज्ञानका विषय नही हो शकती हैं। अतएव अैसी संख्याओमे अनन्तत्वके उपचारकी प्रवृत्ति हो जाती हैं। अथवा, जो जो संख्या पांच इन्द्रियोका विषय हैं वह संख्यात हैं। उसके उपर जो संख्या अवधिज्ञानका बिषय हो वह असंख्यात हैं। उसके उपर जो केवलज्ञानके विषय भावकोही प्राप्त होती है वह अनन्त है।

प्रश्न—प्रत्येक जीव किसको कहते हैं?

उत्तर—प्रत्येक नामा नामकर्मका उदय जिस जीवको हो, वह प्रत्येक जीव कहा जाता है। अर्थात एक शरीरका एक जीव मालिक हो जिसकी इन्द्रिया स्वाच्छोस्वास अलग २ हो अैसा जीवोको प्रत्येक जीव कहा जाता है।

निगोद जीव वनस्पति कायमेही होता है। निगोद जीवोका आयु एक स्वाच्छोस्वासके अठारवा भागका ही होता है।—पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्नि कायिक, और वायुकायिक जीवोके शरीरमें निगोद नही होता है। परन्तु त्रस काय जिसका शरीर औदारिक होते संते जिसमे मास रुधिर आदि सप्त धातु है अैसा शरीरके आश्रय **जो त्रस जीवो स्वाच्छोस्वासके अठारवा भागमे जन्म मरण करते है उसे उपचारसे निगोद संज्ञा दि जाती है।**

यद्यपि वह अनंत जीव नही है परन्तु असंख्यात है।
वनस्पतिकायिक जीवोमे दो भेद है १ प्रत्येक वनस्पति, २ साधारण वनस्पति। साधारण वनस्पति दो प्रका' की होती हे। १ शूक्ष्म २ बादर, साधारण वनस्पतिकायिक जीवोको निगोद जीव कहते हैं। साधारण वनस्पतिकायिक जीवोमे एक शरीरमे अनंत जीव रहते है अर्थात अनंत जीवोका शरीर स्वासोस्वास तथा इन्द्रिय एक ही है परन्तु सब जीवोका कार्माण शरीर अलग अलग है। प्रत्येक जीव रासी अनंत नही होती है, परन्तु असंख्यात होती है। साधारण वनस्पतिकायिक जीवो अनंत होते हैं वह असंख्यात नही होते हैं। धवल ग्रन्थ भाग ७ मे पृष्ट ५०२ से लिखा है कि वनस्पतिकायिक व निगोद जीव सर्व जीवो के अनत वहु भाग प्रमाण है शूत्रना २६। बादर वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक पर्यास, बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त. बादर निगोद जीव, बादर निगोद पर्याप्त, निगोद अपर्याप्त जीव सर्व जीवोके असंख्यातमे भाग प्रमाण हैं। शूत्रना २७–२८.

शूक्ष्म वनस्पतिकायिक व शूक्ष्म निगोद जीव सर्व जीवो के असंख्यात्त वहु भाग प्रमाण हे। शूत्रना २९–३०.

सूक्ष्म वनस्पतिकायिक व सूक्ष्म निगोद जीव पर्याप्त सर्व जीवोके संख्यात वहु भाग प्रमाण हे शूत्र ना ३१–३२.

शूक्ष्म वनस्पतिकायिक कहकर पुन. शूक्ष्म निगोद जीवो का भी पृथक वहुभाग बताया हे, इससे जाना जाता है कि सब

शुक्ष्म वनस्पतिकायिक ही निगोद जीव नही होते। इस विषयमें धवलाकारने शंका उठायी है कि,

शंका—यदि ऐसा है तो सर्व शुक्ष्म वनस्पतिकायिक निगोद ही है इस वचन के साथ विरोध आता है ?

समाधान—उक्त वचन के साथ विरोध नहि होगा, क्योंकि, शुक्ष्म निगोद जीव शुक्ष्म वनस्पतिकायिक ही हैं, ऐसा यहा अवधारण नही है।

शंका—तो फिर शूक्ष्म वनस्पतिकायिको को छोडकर अन्य शुक्ष्म निगोद जीव कोनसे है ?

समाधान—नही, क्योंकि, शूक्ष्म निगोद जीवो के समान उनके आधार भूत (बादर) वनस्पतिकायिकोंमे भी शूक्ष्म निगोद जीवत्व की संभावना है। इस कारण शुक्ष्म वनस्पति कायिक ही शुक्ष्म निगोद जीव नहि होते यह बात सिद्ध होती है।

शंका—शुक्ष्म नामा नामकर्म के उदय से जिस प्रकार वनस्पतिकायिक जीवो को शुक्ष्म पना होता है, उसी प्रकार निगोद नामकर्म के उदयसे निगोदत्व होता है। किन्तु बादर वनस्पति कायिक प्रत्येक शरीर जीवोंके निगोद नाम कर्म का उदय नही है, जिससे कि उनकी निगोद संज्ञा हो सके ?

समाधान—नही, क्योंकि, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर जीवोंके भी आधारमें आधेयका उपचार करने से निगोद होने में कोई विरोध नही है।

शंका—यह कैसा जाना जाता है ?

समाधान—निगोद प्रतिष्ठित जीवों के बादर निगोद जीव इस प्रकार के निर्देश से तथा बादर वनस्पति कायिकों के आगे निगोद जीव विशेष अधिक हैं, इस प्रकार कहे गये शुत्र वचनसे वह जाना जाता है। पृष्ठ ५०२–५०६.

फिर लिखा है कि शूत्र ,शूक्ष्म वनस्पतिकायिक व शूक्ष्म निगोद जीव अपर्याप्त सर्व जीवोके संख्यातमे भाग प्रमाण है शूत्रना ३३, ३४

शंका—निगोद जीव सब वनस्पति कायिक ही है अन्य नही है इस अभिप्रायसे कुच्छ भागाभाग शूत्र स्थित है, क्योकि शूक्ष्म वनस्पति कायिक भागा भाग के तीनोही शूत्रोमें निगोद जीवोके निर्देश का अभाव है ? इसलिये उन सूत्रोसे इस सूत्रोंका विरोध है।

समाधान—यदि अैसा है तो उपदेशको प्राप्त कर यह शूत्र नही है अैसा आगम निपुण जन कह शकते हे। किंतु हम यहां कहनेके लिये समर्थ नही है, क्योकि हमें अैसा उपदेश प्राप्त नहीं है।

अौर फिर भी लिखा है कि—

बादर वनस्पति कायिक **प्रत्येक** शरीर जीवोमें बादर निगोद जीव प्रतिष्ठित असंख्यात गुणा है। सूत्रना ६२ पृष्ट ५३७

बादर निगोद जीव निगोद प्रतिष्टित से बादर

पृथ्वी कायिक जीव असंख्यात गुणा है। शूत्रनां ६४ (इस सूत्रसे बादर निगोद प्रतिष्ठितसे बादर पृथ्वी कायिक जीव असंख्यात गुणादिखाया है। **निगोद जीवतो एक शरीरमे अनत ही रहते है जब बादर पृथ्वीकायिक अनंत कभी भी नहीं होते हे परन्तु असंख्यात ही होते है। इसलिये यह शुत्र किस अपेक्षासे लिखा गया है वह विशेष विचार मागता है)**

वादमे सूत्र है कि वनस्पतिकायिकोंसे निगोद जीव विशेष अधिक है। सूत्रनां ७५ (**वनस्पतिकायिकमे ते। प्रत्येक जीव तथा निगोद जीवे। दोनोही आजाता है, फिरभी वनस्पतिकायिकसे निगोद जीव विशेष कैसे बताया** इस विषय पर धवलाकारने शका उठायी है (कि)

शंका—यहा शका कार कहते है कि यह सूत्र (सूत्रना ७५) निष्फल है, क्योंकि, वनस्पति कायिक जीवेंासे पृथगभूत निगोद जीव पाया नही जाता है। तथा वनस्पतिकायिक जीवेंासे पृथगभूत पृथविकायिक आदिमें निगोद जीव हे, असा आचार्योका उपदेशभी नही है, एसलिये इस सूत्रको सूत्रत्वका प्रसंग हो शके ?

समाधान—तुम्हारे द्वारा कहे हुये वचनमे भले ही सत्यता हो, क्योंकि, बहुतसे सूत्रोमे वनस्पतिकायिक जीवोमे आगे निगोद पद नही पाया जाता, निगोद जीवोके आगे वनस्पतिकायिकोंका पाठ पाया जाता है, और असा बहुतसे आचार्योसे सम्मत भी है।

किन्तु यह शुत्र ही नही हैं, ऐसा निश्चित कहना उचित नही हैं। इस प्रकार तो वह कह शकते हैं जो कि चौदह पूर्वका धारक हो अथवा केवलज्ञानी हो। परन्तु वर्तमान कालमें न तो वह दोनो है, और न उनके पासमें सुनकर आये हुए महापुरुष भी इस समय उपलब्ध होते हो। अत एव सुत्रकी असातनासे भयभीत रहनेवाले आचार्योंको स्थाप्य समजकर दोनोही सुत्रोका व्याख्यान करना चाहिये।

शंका—निगोद जीवोके उपर वनस्पतिकायिक जीव वादर वनस्पति कायिक प्रत्येक शरीर मात्रसे विशेष अधिक होते है, परन्तु वनस्पति कायिक जीवोसे. निगोदजीव किससे विशेष अधिक होते है?

समाधान—वनस्पतिकायिक जीव ऐसा कहनेपर वादर निगोदसे प्रतिप्ष्टित, अप्रतिप्ष्टित जीवोका ग्रहण नही करना चाहिये क्योकि आधेयसे आधारका भेद देखाजाता हैं।

शंका—वनस्पतिनामा नाम कर्मके उदयसे संयुक्त होनेकी अपेक्षा सर्वोके एकता है?

समाधान—वनस्पतिनामांनामकर्मोदिय की अपेक्षा उससे एकता रहे, किंतु उसकी यहा विवक्षा नही हे। यहा आधारत्व और अनाधारत्व की विवक्षा है। इस कारण वनस्पति कायिक जीवोमे वादर निगोदासे प्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित जीवोंका ग्रहण नहीं किया है।

शंका—बादर निगोद जीवोंसे प्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित जीवोंके निगोद संज्ञा कैसे घटित होती है ?

समाधान—नही, क्योंकि, आधारमे आधेयका उपचार करनेसे उनके निगोदत्व सिद्ध होता है ।

शंका—वनस्पतिनामा नामकर्मके उदयसे संयुक्त सब जीवोंके " वनस्पति संज्ञा " सूत्रमें देखि जाती है । बादर निगोद जीवोंसे प्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित जीवोंके यहां सूत्रमे वनस्पतिसंज्ञा क्यो नही निर्दिष्ट की ?

समाधान—इस शंका का उत्तर **"गणधर गौतम"** से पुछना चाहिये । हमने तो " **गणधर गौतम** " बादर निगोद जीवोंसे प्रतिष्ठित जीवोंके " वनस्पति " संज्ञा नही स्वीकार करते इस प्रकार उनका अभिप्राय कहा है । (ध. ७–५२९)

अनंतकाल निकालनेका जीवोंके लिये दोही स्थान है । १ निगोद. २ सिद्धपद । ससार अवस्थामे अनंतकाल निगोद मेही निकाला जाता है । और मुक्त आत्माओ अनंतकाल सिद्धअवस्था में निकालता है परन्तु त्रसपर्याय में अनंत काल निकल नहि शकता हे । त्रस अवस्था मर्यादित है.

प्रश्न—त्रस कायिक जीवोंका उतकृष्ट काल कितना है ?

उत्तर—त्रसकायिक जीवोंका उतकृष्ट काल पूर्वकोटी पृथक्त्वसे अधिक दो हजार सागरोपम और त्रसकायिक पर्याप्तक जीवोंका उतकृष्ट काल पूरे दो हजार सागरोपम प्रमाण हैं । (ध. ४–४०८)

इतना कालमें आत्माने अपना कल्याण किया तो उतम नहितर नियमसे आत्मा अकेन्द्रियमे जायगा जहा अनंत कालमे भी सुअवसर मिलनेका कारण मिलता ही नहीं है। इस लिये त्रस पर्यायमे ही अपना कल्याण कर लेना यही जीवका परम कर्तव्य है। उत्कृष्ट स्थितिका पुण्यका काल भी भोगनेका काल त्रस पर्याय ही है. बादमे वही पुण्य कर्म प्रकृतियां नियमसे पापरूप परिणमन कर जाती हे।

प्रश्न— तिर्यंचगतिसे तिर्यंच जीवोका जघन्य अंतर कितना है?

उत्तर— तिर्यंचगतिसे तिर्यंच जीवोका अंतर कमसेकम क्षूद्र भवग्रहण मात्र कालतक तिर्यंच जीवोका तिर्यंचगतिसे अन्तर होता है। (ध. ७. १८९)

प्रश्न— स्वस्थान-स्वस्थान वेदना समुद्घात और कषाय समुद्घात इन पदोंकी अपेक्षा वादर कृथवीकायिक जीव जब कि लोकके असंख्यात वे भाग प्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं, तो वे सर्व लोकमें रहते है ऐसा सूत्रद्वारा कहा गया है वह कैसे घटित होता है।

उत्तर— नही, क्योकि, मारणान्तिक समुद्घात और उपपादकी अपेक्षा बादर पृथवीकायिक जीव सर्वलोकमें रहते हैं, इस प्रकारका उपदेश दिया गया है। (ध. ४. ९१)

शंका-- पृथवियोंमें सर्वत्र जल नही पाया जाता है, इस लिये जल कायिकजीव पृथवियोमें सर्वत्र नही रहते है?

समाधान— ऐसी आशंका नही करनी चाहिये, क्योंकि बादर नामक नाम कर्मके उदयसे बादरत्वको प्राप्त हुए जलकायिक जीव यद्यपि पृथवियोंमें सर्वत्र नही पाये जाते हैं, तो भी उनका सर्व पृथवियोंमें अस्तित्व होनेमें कोई विरोध नही आता है। (ध.४.९२)

शंका— बादर तेजकायिक जीव सर्व पृथवियोंमें रहते है यह कैसे जाना जाता हे ?

समाधान— आगमसे यह जाना जाता है कि बादर तेजस्कायिक जीव सर्व पृथवियोंमें रहते हैं। (ध. ४. ९२)

शंका – बादर वायुकायिक पर्याप्तरासी लोकके संख्यातवें भाग प्रमाण है, जब वह मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद पदोंको प्राप्त हो तब वह सर्व लोकमे क्योंं नही रहती हैं ?

समाधान— नही रहती हैं, क्योंकि, राजुप्रतर प्रमाण-मुखसे और पांच राजु आयामसे स्थित क्षेत्रमें ही प्रायः करके उन वादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंकी उत्पति होती है। (ध. ४. ९९)

प्रश्न— अग्नि और वायु कायिक जीव मरणकर कहां जाता है ?

उत्तर— अग्नि कायिक व वायुकायिक बादर व सूक्ष्म पर्याप्तक व अपर्याप्तक जीव तीर्यंच पर्यायोसे मरणकर एक मात्र तिर्यंचगतिमें ही जाते है। क्योंकि, समस्त अग्निकायिक वायु-कायिक संक्लिष्ट जीवोके शेष गतियोमे जाने योग्य परिणाम का अभाव पाया जाता हैं। (ध ६. ४५८)

प्रश्न— एकेन्द्रिय जीवोको सहनन क्यो नही होता ?

उत्तर— एकेन्द्रिय जीवोंमे संहनन कर्म का उदय नही होता हैं। (ध. ६. ११६)

प्रश्न— सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोकी जघन्य, उत्कृष्ट आयुस्थिति कितनी है।

उत्तर— कमसेकम अन्तर्मुहूर्त काल तक जीव सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक रहते है। और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक रहते हैं। (ध. ७. १३९)

विग्रह गतिमे तीन मोडा मात्र शुक्ष्म एकेन्द्रिय जीवो मे उत्पन्न होनेवाले जीवो के ही होता हैं।

शंका—सूक्ष्म एकेन्द्रियोमे उत्पन्न होनेवाले सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवके तीन विग्रह होते है, यह नियम कैसे जाना ?

समाधान—यद्यपि इस विपयमें कोइ नियम नही है, तो भी संभावना की अपेक्षा सूक्ष्म एकेन्द्रियोका ही ग्रहण किया है। अतएव सूक्ष्म एकेन्द्रियोमें उत्पन्न होनेवाले बादर एकेन्द्रिय या सूक्ष्म एकेन्द्रिय अथवा त्रसकायिक जीव ही तीन विग्रह करते है, यह नियम ग्रहण करना चाहिये, क्योकि, यही उपदेश आचार्य परम्परासे आया हुआ है। (ध.-४.-४३४)

वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त की जघन्य अवगाहनासे द्विन्द्रिय पर्याप्तिक की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—वेदना क्षेत्र विधानमें कहे गये अवगाहना दंडकसे यह जाना जाता है कि प्रत्येक शरीर की जघन्य अवगाहनासे द्विन्द्रिय पर्याप्तक की जघन्य अवगाहना असख्यात गुणी है। (ध. ४. ९४.)

बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तो के सिवाय अन्यत्र सर्व जघन्य स्थिति बन्ध नही पाया जाता है।

शंका—इसीका क्या कारण है ?

समाधान—विशिष्ट जातियों कि विशुद्धियोंको देखकर ही स्थिति बंध के जघन्यता संभव है। इस लिये बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तो के सिवाय उसका अन्यत्र पाया जाना संभव नही है। (ध. ६. १९२)

त्रस काय जीवोका स्वरुप

दोइन्द्रिय, तीइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और पचेन्द्रिय जीवोको त्रस कायिक जीव कहा जाता है। दोइन्द्रिय, तीइन्द्रिय और चौन्द्रिय जीवोको विकलत्रय जीव कहा जाता है।

प्रश्न—दोइन्द्रिय जीव किसको कहते है।

उत्तर—त्रस नामा नामकर्मके उदयसे तथा स्पर्सन रसना इन दो इन्द्रियोके आवरणका क्षयोपशमसे जीस जीवने अैसा शरीर मीला हें कि जिसमे रहते मात्र स्पर्स तथा रस विषयोका इन्द्रियो

द्वारा अनुभव कर शकता हे अर्थात भोग कर शकता हे जैसे जीवोंको दो इन्द्रिय जीव कहते हैं। दोन्द्रिय जीवोंसे बोलनेकी शक्ति प्राप्त हो जाती है। वह अनेक प्रकारके जीव हैं। जैसे शंख, सीपिये, पांवरहित गिंडोला. कृमि, लट आदि अनेक जाती के हैं।

प्रश्न—विकलेन्द्रियोंके वचनोमे अनुभय पना कैसे आ शकता हैं ?

उत्तर—विकलेन्द्रियोंके वचन अनध्यवसाय रूप ज्ञानके कारण है. इसलिये उन्हें अनुभय रूप कहा हैं।

शंका—उनके वचनोमें ध्वनिविषयक अध्यवसाय अर्थात निश्चय तो पाया जाता है, फिर उन्हे अनध्यवसायका कारण क्यों कहा जाता हैं ?

समाधान—नही, क्योंकि, यहांपर अनध्यवसायसे वक्ताका अभिप्राय विषयक अध्यवसायका अभाव विवक्षित है। (ध. १–२८८)

प्रश्न—तेन्द्रिय जीव किसको कहते है ?

उत्तर—त्रसनामा नामकर्मके उदयसे तथा स्पर्शन रसना नासिका इन तीन इन्द्रियोके आवरणका क्षयोपशमसे जीस जीवने अैसा शरीर मिला है कि जीसमे रहते मात्र स्पर्श, रस और गन्धका विषयोका इन्द्रियो द्वारा अनुभव एवं भोग कर शकता है अैसे जीवको तेइन्द्रिय जीव कहते हैं। वह अनेक प्रकारका जीव है। जैसे जुं. कुंभी. खटमल. चींटा–चिंटी आदि अनेक

जातीके है।

प्रश्न—चौइन्द्रिय जीव किसको कहते है ?

उत्तर—त्रस नामा नामकर्मके उदयसे और स्पर्सन, रसन, गन्ध और नेत्र इन चार इन्द्रियोके आवरणका क्षयोपशमसे जीस जीवने अैसा शरीर मिला हें कि. जिसमे हते मात्र स्पर्स रस गन्ध और रुपका विषयोका इन्द्रिये। द्वारा अनुभव 'अर्थात भोग करता है अैसे जिवोको चौइन्द्रिय जीव कहते है। वह अनेक प्रकारका है। जैसे डांस, मच्छर, मक्खी, मधुमखी, भवरा, पतंग आदि अनेक जाती के है।

प्रश्न—पंचेन्द्रिय जीव किसको कहते है ?

उत्तर—पंचेन्द्रिय जीव दो प्रकारका है। १ असंज्ञी. २ संज्ञी असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच जाती मे ही होता है। संज्ञी पंचेन्द्रिय चार प्रकारका है। १ तिर्यंच २ नारकी ३ देव ४ मनुष्य

प्रश्न— असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच किसको कहते है ?

उत्तर— त्रस तथा तिर्यंचगति नाम कर्म के उदयशे और स्पर्सन, रस - घ्राण चक्षु. श्रौत्रेन्द्रियावरण कर्मका आवरणका क्षयोपशमसे तथा नोइन्दियावरणीय कर्मका उदयसे जीस जीवको अैसा शरीर मीला है जीसमे रहते स्पर्स, रस, गन्ध, रुप, और शब्द विषयोका अनुभव—भोग कर शकता है, परन्तु जीसको मन आवरणका उदय होनेसे हित अहितका ज्ञान नही कर शकता है अैसे जीवोको पंचेन्द्रिय असंज्ञी जीव कहते है। वह भी अनेक प्रकारका है।

अैसे सापकी अेक जाती, तोताकी अेक जाती आदि।

प्रश्न— असंज्ञी पेचेन्द्रिय तिर्यंच जीव मरण कर नारक एवं देवमे कहा तक जा शकता है?

उत्तर— असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्य जीव मरण कर प्रथम पृथवीके नारकी जीवोमें उत्पन्न हो शकता है. त्था देवोमे भवनवासी वानव्यंतर देवोमें उत्पन्न हो शकता है। (ध. ६. ४५६)

प्रश्न— संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंचका क्या स्वरुप हैं?

उत्तर— त्रस नामा नामकर्म त्था तिर्यंच नामा नामकर्मका उदयसे त्था स्पर्स, रस, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र, त्था नोइन्द्रियावरणीय कर्मका क्षयोपशमसे जीस जीवको औदारिक शरीर मीला है। जीसमें रहकर पाच इन्द्रियो द्वारा पाच इन्द्रियोका विषयका भोग भोगनेकी शक्ति प्राप्त हुई है। तिर्यंचकी उत्पती दो प्रकारसे होती है। १ सर्मूच्छम २ गर्भज। तिर्यंच तीन प्रकारका होता है। १ जलचर २ स्थलचर. ३ नभचर। यह जीवोको शव्द श्रुत ज्ञान नही होनेसे भी भाव ज्ञान हिताहितका होता है। तिर्यंच सभीको निच, गौत्रका ही उदय है। तिर्यंच संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव भी दो प्रकारके होते है। १ भोगभूमीके. २ कर्मभूमिके। भोगभूमि तिर्य च सम्यग दर्शनकी प्राप्ति कर शकता है। परन्तु वहा पाचवा गुणस्थान रुप भाव नही हो शकता है। भोगभूमी के तिर्यंच नियमसे मरण कर देवगति मे जाता है। कर्म भूमी सर्मूच्छम संज्ञी पंचेद्रिय जीव जीसको मोहनीय कर्मकी २८

अठाईस कर्म प्रकृतिकी सता है वही जीव भी पंचमगुणस्थान रुप भाव कर शकता हैं। समूर्च्छम संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवोको प्रथमोपसम सम्पकत्वकी प्राप्ति नही हो शकती है। समूर्च्छम संज्ञी पचेन्यिद्रय तिर्यंचका आयु उतक्रुष्ट १ एक कोड पूर्वका हो शकता है। गर्भज संज्ञी पंचेन्द्रियजीव प्रथमोपसम सम्यकत्वकी प्राप्ति कर शकता हैं। यह जीव पंचम गुणस्थान तकका निर्मल परिणाम कर शकता है। मनुष्यमे पंचम गुणस्थानवर्ती जितने जीव हैं इससे असंख्यात गुणा विशेष तिर्यंच पंचमगुणस्थानवर्ती जीव है। तिर्यंच जीवो पंचमगुणस्थानवर्ती विशेप स्वयंभू रमण समुद्रमे हैं। गर्भज तिर्यंचोकों अवधिज्ञानकी प्राप्ति हो शकती है। सज्ञी समुर्च्छम पंचेन्द्रिय तिर्यंच भी उत्तकृष्ट आरण अच्युत स्वर्गतक जा शकता है।

शंका—जिसको शव्दश्रुत ज्ञान नही है अैसे तिर्यंचोको भावज्ञान कैसे हो शकता है।

समाधान—जैसे हीरण एवं साप आदि को राग रागणीका शव्द श्रुत्र ज्ञान नहो है और भाव ज्ञान है जिस कारण से रागरागणीमे अति अनुरागी होकर बन्धनमें पडते, है एवं मरणको भी प्रास हो जाता है। कुत्ताको रोटी डालनेसे वह सामने वेठकर आनंदसे पुंछ हिलाकर खाता है, परन्तु रोठी ले भागकर नहीं खाता है। वही कुता यदि चोका घरमेसे चोरी कर रोटी उठा ले जावे तो नियमसे वह दुर भागकर छुपी रिति

से खावेगा परन्तु सामने बेठकर नहि खावेगा, क्योंकि, वह जानता है कि यह रोटी चोरी कर लाया हूं, यदि सामने बेठकर खाऊगा तो नियमसे लाठी खाने पडेगी । इस प्रकार भाव ज्ञान उसीको हो जाता है, यद्यपि चोरी किसका नाम है वह मुखसे बोल नही शकता है । तिर्यंच पंचम गुणास्थानवर्ती श्रावक पद धारी हो जावे तो भी वह, मनुष्य पात्र जिवोको दान दे नही शकता है । यदी तिर्यंच जीव मुनि महाराज आहार ले रहा है वहा छुजावे तो मुनि महाराज को अंतराय आ जाती हे यह चरणानुयोग की विधि है, किन्तु तिर्यंच मुनि महाराज को आहार दान देनेकी अनुमोदना कर शकता हैं । तिर्यंच, तिर्यंचमो मे आहार दान देनेकी विधि है । संयता संयत तिर्यंच जीव सचित भज्जन के प्रत्याख्यान अर्थात व्रतो को ग्रहण कर लेते हैं उनके लिये वनस्पति के शुक्के पत्तों आदिकका दान देनेका व्यवहार हे । (ध. ७–१२३)

प्रश्न—सामान्य तिर्यंचो के अपर्याप्त कालमें तीनो अशुभ लेश्यायें क्यो होती है ?

उत्तर—क्योकि, तेजो लेश्या और पद्म लेश्या वाले भी देव यदि तिर्यंचोमें उत्पन्न होते हे तो नियमसे उनकी शुभ लेश्यायें नप्ट हो जाती है, इसि लिये तिर्यंचोंकी अपर्याप्त अवस्थामें तीन अशुभ लेश्यायें होती है । (ध २. ४७३)

शुक्ल लेश्यावाले तिर्यंच शुक्ल लेश्या वाले देवोमे उत्पन्न

नही होते है ।

शंका—किस प्रमाणसे यह कहा जाता है ?

समाधान—क्योंकि, पांच वटे चौदाह भाग प्रमाण स्पर्शन क्षेत्रके उपदेश का अभाव है. इससे जाना जाता हैं कि शुक्ल लेश्या वाले तिर्यंच जीव मरकर शुक्ल लेश्या वाले देवोंमें उत्पन्न नही होता हैं । (ध. ४—२००)

प्रश्न— तिर्यंच सासादन सम्यगद्रष्टि मरणकर कहा जाता है ?

उत्तर - तिर्यंच सासादन सम्यगद्रष्टि संख्यात वर्षकी आयुवाले तिर्यंच, तिर्यंच पर्यायोसे मरणकर तिर्यंचगति, मनुष्यगति, और देव-गतिमे जाता हे। तिर्यचगतिमे जानेवाले संख्यातवर्षकी आयुवाले सासादन सम्यगद्रष्टि तिर्यचं एकेन्द्रिय और पंचेन्द्रियमे जाते है, विकलेन्द्रियोमे नही जाते हैं।

शंका—यदि एकेन्द्रियोमें सासादन सम्यगद्रष्टि जीव उत्पन्न होते हैं तो पृथवी कायादिक जीवोमे मिथ्यात्व और सासादन यह दो गुणस्थान होना चाहिये ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, आयु क्षिण होनेके प्रथम समयमें ही सासादन गुणस्थानका विनाश हो जाता है। (ध. ६—४५८)

प्रश्न—संज्ञी तिर्यंच मिथ्याद्रष्टि जीव मरणकर देवोमे कहातक जा शकता है ?

उत्तर—संज्ञी तिर्यंच मिथ्याद्रष्टि पंचेन्द्रिय पर्याप्त संख्यातायु

वाले तिर्यंचजीव भवनवासीयोसे लगाकर सतार सहस्त्रार तकके कल्प वासी देवोमें जा शकता है। क्योंकि सतार सहस्त्रार कल्पके उपर सम्यकत्व और अणुव्रतोके विना गमन नही होता है। (ध. ६–४५५)

प्रश्न—पंचेन्द्रिय लब्ध पर्यांसक जीवोमे लगातार कितना भव होता है?

उत्तर—पंचेन्द्रिय लब्ध पर्याप्तक जीवोंमे लगातार निरन्तर उत्पन्न होनेका भव चोवीस होते है। (ध. ४–४०१)

प्रश्न—तिर्यचोकी उतकृष्ट अवगाहना किस प्रकार है?

उत्तर—शख नामक द्विन्द्रिय जीव बारह योजनकी लम्बी अवगाहना वाला होता है। गोम्ही नामक त्रीन्द्रिय जीव तीन कोस लम्बी अवगाहना वाला होता है। भ्रमर नामक चोइन्द्रिय-जीव एक योजनकी लम्बी अवगाहना वाला होता हे। और महामत्स नामक पचेन्द्रिय जीव एक हजार योजनकी लम्बी अवगाहना वाला होता है। (ध. ४–३३)

नारकी जीवो का स्वरूप.

त्रस नामा नामकर्म त्था नारक गति नाम कर्मके उदयसे 'त्था स्पर्श, रस, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र तथा नोइन्द्रियावरण कर्मका क्षयोपशमसे जिस जीवोको वैक्रियिक शरीर मीला है, जिसमे रहकर पांच इन्द्रियो द्वारा पंच इन्द्रियोके विषयोका भोगनेकी अभिलाषा होती है किन्तु तीव्र असाता कर्मका उदयसे सामग्री मिलती ही नही है जिससे महादुःखी हैं। जिसको हित अहित का ज्ञान है नारक पृथवी सात प्रकारकी है, जिसमे जन्म उपपाद से ही होता है। नारक भूमिका नाम निम्न प्रकार है। १ रत्नप्रभा २ शर्करा प्रभा ३ वालुकाप्रभा ४ पंकप्रभा ५ घुमप्रभा ६ तमःप्रभा ७ महातमप्रभा. ये साती भूमिया इस मध्य लोकके नीचे तीन हवाओके वलय घेरे से घिरी क्रमसः नीचे नीचे की और स्थित है। इन सात भूमिमे ८४ चोरासी लाख नरका वास निम्न प्रकार है। रत्नप्रभामे ३० त्रीस लाख; सर्कराप्रभामे २५ पचीस लाख, बालुकामे १५ पद्राहलाख, पंकप्रभामे १० दश लाख, घुमप्रभामे ३ तीन लाख, तम·प्रभामे पाचकम एक लाख, और महातम प्रभामे पाच आवास मिलकर कुल ८४ चौरासी लाख आवास है। नारकी जीवोकी आयु पहले नरकमे एक सागरकी, दुसरेमे तीन सागरकी, तीसरेमे सात सागरकी, चोथेमे दश सागरकी, पांचवेमे सतरह

सागरकी, छठे मे बाईस सागरकी, और सातवे नरकमे तेंतीस, सागरकी उतकृष्ट है। पहेली तथा दुसरी नारकमे कापोत लेश्या है। तीसरी नरकके उपरीतम भागमे कापोत लेश्या है, और अघस्तन भागमे नील लेश्या है। चोथी नरकमे नील लेश्या है। पाचवी नरकके उपरके भागमे नील लेश्या हैं और नीचले भागमें कृष्ण लेश्या है। छठवी नारकमे कृष्ण लेश्या है, और सातवी नारकमे परमकृष्ण लेश्या है। पहेलीसे चार पृथवीमें तथा पाचवीं घुमप्रभाके उपरके भागोमे अर्थात दो लाख आवासोमे उष्ण वेदना है, और घुम प्रभाके नीचले भागसे अर्थात एक लाख आवासोमें तथा छठवी, सातवी, पृथवीमे शीत वेदना है। नारकीयोके मात्र नपुसक वेद है अर्थात स्त्री तथा पुरुष दोनोकी साथ रमनेका भाव है। शरीरका आकार नपुंशक रुप नही है परन्तु भाव वेद ही नपुंशक हैं.। सभी नारक स्थानमे सम्यगदर्शनकी प्राप्ति हो शकती है. परन्तु सातवी नारक वाले जीवो का अैसा ही स्वभाव है कि यह वहासे सम्यगदर्शन सहित वापिस निकलते नही है, परन्तु मिथ्यात्व अवस्थामेही निकलेंगे। सम्यगद्रष्टि जीव सम्यगदर्शन सहित प्रथम नरकमे ही जाता हे इससे आगे व नहि जाता है। तिसरी नरकसे निकला हुआ जीव तीर्थंकर भी हो शकता है। नरकगतिमे यह विशेप बात हे कि नरक गतिमेसे निकला हुआ जीव नियमसे सज्ञी पचेन्द्रिय ही बनेगा परन्तु देवगति वाले जीव मरणकर एकेन्द्रियमे भी जा शकता हैं।

शंका—नारकीओमें तीन अशुभ लेश्या होते संते वह संज्ञी पंचेन्द्रियो मे ही क्यों उत्पन्न होता है ?

समाधान—नारकी जीवोको अशुभ लेश्या क्षेत्रजन्य **दुःख मेसे बचनेके लिये होती है** परन्तु वहा रहकर भोग भोगनेमें लालसा नहि है। देवोका देवगतिका **भोगो भोगनेंकी लालसासे** एकेन्द्रियमें जाना पडता है जबकी नारकी की भोग भोग-नेकी तीव्र लालसा नही होनेसे संज्ञी पंचेन्द्रियमें नियमसे आता है।

प्रश्न—तृतिय पृथवीमें नील लेश्या की संभावना होनेसे तीर्थंकर प्रकृति के वन्ध के मनुष्योंके समान नारकी भी स्वामी होते है ?

उत्तर—अैसा नही हं, क्योकि, वहा नील लेश्या युक्त अघस्तन इन्द्रकमे तीर्थंकर प्रकृति के सत्व वाले मिथ्याद्रष्टियोंकी उत्पति का अभाव हे। इसका कारण यह कि वहा उस पृथवी की उत्कृष्ट आयु देखी जाती हे। और उत्कृष्ट आयु वाले जीवोमे तीर्थंकर संत कर्मिक मिथ्याद्रष्टियोका उत्पाद हे नही, क्योकि वैसा उपदेश हैं नही; अथवा नारकीयों मे उत्पन्न होनेवाले तीर्थंकर सन्त कर्मिक मिथ्याद्रष्टि जीवों के सम्यगद्रष्टि के समान कापोत लेश्या को छोडकर अन्य लेश्या का अभाव होनेसे नील और कृष्ण लेश्या मे तीर्थंकर की सत्ता वाले जीव नही होते है। (ध. ८. ३३२.)

प्रश्न—नरक गतिसे नारकी जीवो का जघन्य अन्तर काल

कितना होता है ?

उत्तर—कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक नरकगतिसे नारकी जीवोंका अन्तर होता हैं। क्योकि नरक से निकल कर गर्भोक्रान्तिक तिर्यंच जीवोमे अथवा मनुष्योंमे उत्पन्न हो सबसे कम आयु के भितर नरकायु को बान्ध कर मरण कर पुनः नरकोंमे उत्पन्न हुए नारकी जीवोंके नरक गतिसे अन्तर्मुहूर्त मात्र अन्तर पाया जाता है। (ध. ७. १८७)

प्रश्न—सप्तम नरकसे निकला हुआ नारकी कहा उत्पन्न होते हैं और वहा वह सम्यगदर्शनकी प्राप्ति कर शकता हैं कि नहि ?

उत्तर—सातवीं पृथ्वी का नारकी नरक से निकल कर तिर्यंच गतिमे ही उत्पन्न होते है, परन्तु वही तिर्यंच इन छेह की उत्पत्ति नही करते है। (१) आभीनिबोधिक ज्ञान, (२) श्रुत ज्ञान (३) अवधि ज्ञान (४) सम्मगमिथ्यत्वगुणस्थानको (५) सम्यकत्व को उत्पन्न नही करते (६) और संयमासंयम को उत्पन्न नही करते हैं। (ध. ६. ४८४)

श्री धवलग्रन्थमें सप्तम नरकके आये हुए तिर्यंच जीवों के सम्यकत्व की प्राप्ति का सर्वथा प्रनिषेध किया गया है, परन्तु तिलोयपण्णति (२-२९२) तथा प्रज्ञापना (२०-१०) मे उनमेंसे कितने ही जीवों द्वारा सम्यक्त्व ग्रहण किये जाने का विधान पाया जाता है।

प्रश्न—छठवी नारक पृथवी मे से निकले नारकी कोनसी गतिमे किस पद को प्राप्त कर शकता हैं ?

उत्तर—छठवी पृथवी में से निकला नारकी मनुष्य और तेर्यंच गतिमें जाता है वहा आभिनिबोधिक ज्ञान २ श्रुत ज्ञान ३ अवधिज्ञान (४) सम्यगमिथ्यात्व ५ सम्यकत्व ६ और संयमासंयम उत्पन्न कर शकता हैं। (ध. ६. ४८६)

प्रश्न—पांचवी नारक पृथवी में से निकला नारकी जीव मनुष्य गतिमें किस पदको प्राप्त कर शकता है ?

उत्तर— पांचवी पृथवीमें से निकला नारकी, मनुष्य होकर आभिनिबोधिक ज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, सम्यगमिथ्यात्व, सम्यकत्व, संयमासंयभ और कोइ संयम की प्राप्ति करता है। (ध.–६–४८८)

प्रश्न—चोथी नारक पृथवी मे से निकला नारकी मनुष्य गतिमें किस पदको प्राप्त कर शकता है ?

उत्तर—चोथी नारकी में से निकला जीव मनुष्य होकर मति–श्रुत–अवधि–मनःपर्यय और केवल ज्ञान को तथा संयमासंयम, संयम सिद्धपद को प्राप्त करता हे, परंतु वल्देव नारायण चक्रवर्ती और तीर्थंकर नही होते है। (ध.–६–४८९)

देव जीव का स्वरुप

त्रस नामा नामकर्म तथा देवगति नामानाम कर्म का उदयसे तथा स्पर्स, रस, घाण, चक्षु, श्रोत्र तथा नोइन्द्रियावरणं कर्मका क्षयोपशमसे जीस जीवको वैक्रियिक शरीर मीला है, जिसमें रहकर पांचइन्द्रियो द्धारा पंचइन्द्रियोके विषयोका उतकृष्ट भोग भोगनेकी शक्ति प्राप्त हुई है। जिसको हित अहितका ज्ञान है। जिसकी उत्पति उपपाद से होती है। वह चार प्रकारके देव है। १ भवनवासी २ व्यन्तर ३ ज्योतिषी ४ वैमानिक। इनमे से भवनवासी दश प्रकारके है। व्यन्तर देव आठ प्रकारके है। ज्योतिषी देव पांच प्रकारका है, तथा वैमानिक देवो दो प्रकारका है। भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी, तथा सौधर्म, इशान यह दो कल्पवासी देवो शारिरिक सम्बन्धसे मनुष्योकी तरह देवीयोसे काम सेवन करते है। बाकी के कल्पवासी देवो, देवागनाओका स्पर्सकर, रुपदेखकर, शब्द शुनकर, मनमे चिन्तवन कर अपनी अपनी काम-वासनाओ पूर्ण हो जाती है। कल्पातीत देवो अथवा नौग्रैवेयिक नौअनुदिश तथा पाच अनुत्तर इनमे रहनेवाले अहमिन्द्रोकी कषाय इतनी मन्द है कि इनके विषय वासना होती ही नही है। भवनवासी, व्यन्तर, और ज्योतिषी इन तीनो निकायोके देवोमे अपर्याप्त अवस्थामे कृष्ण—नील कपोत और पीत लेश्या रहती है,

किन्तु पर्याप्त अवस्थामे मात्र पीतलेश्या रहती है। कल्पवासी देवोमे तीन शुभ लेश्याये रहती है। कल्पातीत देवोमें मात्र शुक्ल लेश्या ही रहती हैं। देवोमें तीन वेदोमें से दो वेदका ही भाव होता हैं। देवीओकी साथ रमनेका भाव तथा देवोकी साथ रमनेका भाव होता है, किन्तु नपुंशक भाव नही होता हैं।

प्रश्न—देव पर्याय मे सुख भोगनेका अनेक साधनो है तो भी वहां सुख नहि हैं अैसा कैसे कहा जाता है ?

उत्तर—देव पर्यायमे भी एकान्तिक दुःख ही हो। जिसने मिसरी देखी नही है वह मीसरी मीठी होती है, अैसा मात्र शब्दसे बोलते है परन्तु इसीका स्वाद का ज्ञान नही है. अैसे आत्मिक सुखकी जिसको गन्ध नहि है वही जीवो कहते है कि देव पर्यायमे सुख हे, परन्तु विचार तो करो कि, यदि देवगतिमे सुख होते तो वह एक विपय छोडकर दुसरा विषयको क्यो ग्रहण करते ? विषय से विषयान्तरके जाना वही दुःख की तो निशानी है। एक वस्तुमे सुखका अनुभव नहि हुवा तब तो दुसरा विषयोमे पतंगकी माफक जंपापात करते है। अज्ञानी जीवो कल्पना करता है कि देव पर्यायमे सुख हैं परन्तु ज्ञानी तो कहते है कि वहा किंचित सुख नहि हैं। ज्यां विषयोसे दुसरा विषयेमे जानेकी भावना है वही भावनाही दुःखकी जननी है।

प्रश्न— मरणकाल में किस देवोकी लेश्याये परिर्वतन हो जाती है ?

उत्तर— तिर्यंच और मनुष्योमें उत्पन्न होनेवाले देवो, जो परमार्थके अजानकार और तीव्र लोभ कषायवाले असे मिथ्या-द्रष्टि और सासादन सम्यगद्रष्टि देवोंके मरते समय संक्लेश उत्पन्न हो जानेसे तेज, पद्म और शुक्ल लेश्याये नष्ट होकर कृष्ण, नील और कापोत लेश्याओमें यथा संभव कोई एक लेश्या होजाती है। किन्तु जो मनुष्योमें ही उत्पन्न होनेवाले है, मंद लोभ कषायवाले हे, परमार्थ के जानकार है, और जिन्होने जन्म जरा और मरण के नष्ट करेनेवाले अरहन्त भगवन्तमें अपनी बुद्धि को लगाया है, असे सम्यगद्रष्टि देवोंके चिरतन तेज, पद्म और शुक्ल लेश्याए मरण करनेके अनन्तर अन्तर्मुहूर्त तक नष्ट नही होती है। (ध. २. ७९४)

प्रश्न— भवनवासी देवोंके विमानोंमे पृथवीकायिकादि जीवो निवास करते हैं ?

उत्तर—बादर पृथवी कायिक, बादर जल कायिक, तेज कायिक और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, तथा इनके अपर्याप्त जीव भी भवनवासीयोंके विमानोंमें व आठ पृथवीयोंमें निचितक्रमसे निवास करते है।

शंका—तेजसकायिक, जल कायिक, और वनस्पति कायिक जीवोकी वहा कैसे संभावना है?

समाधान— नही, क्योंकि, इन्द्रियोंसे अग्राह्य व अतिसय शूक्ष्म पृथ्वी सम्बद्ध उन जीवोके अस्तित्वका कोई विरोध

नही है। (ध. ७. ३३२)

प्रश्न—देवगतिसे मरणकर फिर देवगतिमे उत्पन्न होनेका जघन्य अंतरकाल कितना है ?

उत्तर—देवगतिसे देवो भवनवासी वानव्यन्तर-ज्योतिषी देवो और सौधर्म इसान कल्पके देवोकी जघन्य आयु बन्ध अन्तर्मुहूर्त काल मात्र है। क्योंकि, देवगतिसे आकर गर्भोपक्रांतिक पर्याप्त तिर्यंचोमे व मनुष्योमें उत्पन्न होकर पर्याप्तियां पूर्णकर देवायुबांध पुनः देवोमे उत्पन्न हुए जीवके देवगतिसे अंतर्मुहूर्तमात्र अंतर पाया जाता है।—

सनतकुमार-और महेंद्र कल्पके देवोंकी भी अंतरकी प्ररुपणा जघन्य अंतर मूहूर्त पृथक्त्व मात्र काल होता है। क्योंकि, सनत-कुमार महेन्द्र देवोमेसे गर्भोपक्रातिक तिर्यंच व मनुष्योमें उत्पन्न होकर मुहूर्तपृथकत्व काल रहकर आयुको बांधकर पुनः सनतकुमार महेन्द्र देवोमें उत्पन्न हुए जीवके मुहूर्त पृथकत्व मात्र कालका अंतर पाया जाता है।

ब्रह्म-ब्रह्मोतर व लांतव कापिष्ट कल्पवासी देवोंका देवगतिसे कमसे कम दिवस पृथकत्व कालमात्र अपनी देवगतिसे अंतर होता है। कयोंकि उक्त देवों द्वारा जो आगामी भवकी आयु बांधी जाती है उसका स्थितिबंध दिवस पृथक्त्वसे कम होता ही नही है।

शंका—दिवस पृथक्त्वकी आयुमें तो तिर्यंच व मनुष्य

गर्भसे भी नही निकलपाते, और इसलिये उनमें अणुव्रत व महाव्रत भी नही हो शकते ? ऐसी अवस्थामें दिवस पृथकत्वकी मात्र आयुके पश्चात पुनः देवोमें कैसे उत्पन्न हो शकते हे ?

समाधान—यह शंका ठीक नहीं है, क्योकि, परिणामोंके निमितसे दिवस पृथकत्व मात्र जीवीत रहनेवाले तिर्यंच व मनुष्य पर्याप्तक जीवों के देवोमें उत्पन्न होनेमे कोई विरोध नही आता।

शुक्र, महाशुक्र, सतार, सहस्रार कल्पवासी देवोका देवगति से अंतर कमसेकम पक्ष पृथकत्व काल तक अंतर होता हैं।

आनत, प्राणत और आरण अच्युत कल्पवासी देवोका देवगतिसे अंतर कमसेकम मास पृथकत्व काल मात्र होता हैं। क्योंकि, आनत प्राणत आरण और अच्युत कल्पवासी देवोका द्वारा बाधी जानेवाली मनुष्यायुका स्थितिबंध कमसेकम मास थकत्वसे निचे नही होता हैं।

शंका—जब आनत आदि चार कल्पवासी देव मनुष्योमें उत्पन्न होते है, तब मनुष्य होकर भी वे गर्भसे लेकर आठ वर्ष व्यतीत होजानेपर अणुव्रत व महाव्रतोंको ग्रहण करते है। अणुव्रतोंको व महाव्रतोंको ग्रहण न करनेवाले मनुष्योकि आनत आदि देवोंमें उत्पत्ति नहीं होती, क्योकि ऐसा उपदेश नहीं पाया जाता। अतएव आनत आदि चार देवोंका मास पृथकत्व अंतर करना युक्त नही है, उनका अंतर वर्ष पृथकत्व होना चाहिये ?

समाधान—अणुव्रतों व महाव्रतों से संयुक्त ही तिर्यंच व मनुष्य आनत प्राणत देवोमें उत्पन्न हो ऐसा नियम नहीं है, क्योंकि, ऐसा माननेपर तो तिर्यंच असंयत सम्यगद्रष्टि जीवोंका जो छोह राजु स्पर्शन बतलानेवाला शूत्र है उससे विरोध उत्पन्न हो जावेग। देखो पटखंडागम जीवट्ठाणा स्पर्शनानुगम शूत्रनां २८ व टीखा पुस्तक नंबर ४ पृष्ट २०७) और आनत प्राणत कल्पवासी असंयत सम्पगद्रष्टि देव जब मनुष्यायुकी जघन्य स्थिति बाधते है, तब व वर्ष पृथकत्वसे कमकी आयु स्थिति नही बांधते क्योंकि, महाबंधमें जघन्य स्थिति बंधके काल विभागमें सम्यगद्रष्टि जीवोंकी आयु स्थितिका प्रमाण वर्ष पृथकत्व मात्र प्ररुपित किया गया है। अतः आनत प्राणत मिथ्याद्रष्टि देवके मास पृथकत्व मात्र मनुष्यायु बांधकर फिर मनुष्योंमें उत्पन्न हो मास पृथकत्व जीवीत रहकर पुन. अन्तर्मुहूर्त मात्र आयु वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच समूर्च्छिम पर्याप्त जीवोंमें उत्पन्न होकर पर्याप्तक हो, संयमा संयम [अणुव्रत] ग्रहण करके आनात आदि कल्योंकि आयु बांधकर वहां उत्पन्न हुए जीवके शूत्रोक्त मास पृथकत्व प्रमाण जघन्य अंतर काल होता है।

नौग्रेवेयक विमानवासी देवोंका देवगतिसे जघन्य अंतर वर्ष पृथकत्व काल तक होता है। क्योंकि नौग्रेवेयक विमानवासी देव वर्ष पृथकत्वसे निचेकी जघन्य आयु स्थिति बाधतेही नही है।

अनुदिश आदि अपराजित पर्यंत विमानवासी देवोंका देवगतिसे

जन्घय अंतर वर्ष पृथकत्व काल और उतकृष्ट सातिरेक दो सागर प्रमाण काल अंतर होता है। क्योकि अनुदिसी आदि देवके पूर्वकोटीके आयुवाले मनुष्योमे उत्पन्न होकर एक पूर्व कोटी तक जीवत रहकर सौधर्म इसान स्वर्गको जाकर वहां अढाई सागरोपम काल व्यतित कर पुन पूर्व कोटी आयु वाले मनुष्योमें उत्पन्न होकर सयमको ग्रहण कर अपने अपने विमानमे उत्पन्न होनेपर उनका अंतरकाल सात्तिरेक दो सागरोपम प्रमाण प्राप्त हो जाता है ? (ध-७-१९०)

प्रश्न— देवोमे तीन शुभ लेश्या है तो भी वह मरणकर एकेन्द्रिय पर्यायमे जा शकता है. ओर नारकीयोमे तीनो अशुभ लेश्या है तो भी वह मरण कर नियमसे संज्ञी पंचेन्द्रियही होता है इसीका क्या कारण है ?

उत्तर— देवोमे तीन शुभ लेश्या होते संते **देव गतिका भोग भोगनेका भाव है** जिस कारणसे वह अपनी अपनी लेश्याके अनुकूल मरणकर एकेन्द्रियादि पर्यायमे जाता है, जबकी **नारकीको भोग भोगनेकी भावनां नही है. परन्तु नारक क्षेत्रकी अति पिडाके कारण नारक क्षेत्रसे बचनेके लिये तिव अशुभ लेश्या है** जिस कारणोसे वह मरणकर नियमसे संज्ञी पंचेन्द्रिय ही बनता है। जैसे एक मनुष्यकी उपर दश आदमी हुमलाकर रहा है. मार रहा है। तब वही मनुष्यका भाव उसीको मारनेका वहा नही

होता है परन्तु वह दुःखसे बचनेके लिये तीव्र संक्लेस परिणाम द्वारा कोशीप करता है, इसी प्रकार नारकी जीव नारक क्षेत्र जन्यदुःखसे बचनेके लिये तीव संक्लेसरुप परिणामोरुप है। परन्तु नरकमे भोगनेका तीव्र संक्लेसरुप परिणामोसे रहते नही, इसी कारणसे वह जीव मरणकर नियमसे सज्ञी पंचेन्द्रिय ही होता हैं।

देवोंके शरीरमें शंहनन नही होता है।

प्रश्न—देवगतिमें छह संहनन क्यो नही होते है?

उत्तर—नही, क्योकि, देवोंमें संहननोके उदयका अभाव है। (ध. ६–१२३)

प्रश्न—देवगतिके साथ उद्योत प्रकृतिका बंध क्यो नही होता है?

उत्तर—नही, क्योकि; देवगतिमें उद्योत प्रकृतिके उदयका अभाव है, और तिर्यग गतिको छोडकर अन्य गतियोके साथ उसके बंधनेका विरोध है।

शंका—देवोमें उद्योत प्रकृतिका उदय नही होनेपर देवोके शरीरमें दीप्ति (कान्ती) कहांसे होती है?

समाधान—देवोंके शरीरोंमें दीप्ति वर्णनाम कर्मके उदयसे होती है। (ध. ६-१२६)

प्रश्न—असंख्यात योजन प्रमाण विहार करनेवाले देव होते है।

उत्तर—नही, क्योकि, असंख्यात योजन प्रमाण विहार करने वाले देव सर्व देवरासीके असंख्यात भाग मात्र हैं।

शंका—यह किस प्रकार जाना जाता है ?

समाधान—मिथ्याद्रष्टि विहारवत्स्वस्थान राशि तीर्यगलोकके (पूर्व पश्चिम एक राजु चवडा उतर दक्षिण सात राजु लम्बा एक लाख योजन उंचा) के संख्यातवे भाग प्रमाण क्षेत्रमे रहती है। इस प्रकारसे व्याख्यानसे उक्त बात जानी जाती है। (ध. ४–३७)

प्रश्न—असंख्यात योजन क्षेत्रको रोककर विक्रिया करने वाले भी देव पाये जाते हैं ?

उत्तर—नही, क्योकि, असंख्यात योजन विक्रिया करनेवाले दव सामान्य देवोंके असंख्यातवे भाग मात्र ही होते है। कितने ही आचार्य ऐसा कहते है कि सभी देव अपने अवधि ज्ञान के क्षेत्र प्रमाण विक्रिया करते है। परन्तु उनका यह कथन घटित नही होता है, क्योकि वेक्रियिक समुद्घातको प्राप्त हुइ राशि तिर्यग लोकके संख्यातमे भाग प्रमाण क्षेत्रमे रहती है, ऐसा व्याख्यान देखा जाता हैं। (ध. ४–३८)

प्रश्न—सर्वार्थसिद्धि देवोकी संख्या कितनी है ?

उत्तर—सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवोकी सख्या मनुष्यनियोंके प्रमाणसे तिगुणे है। तथा कोई आचार्य ऐसा भी कहते है कि सर्वार्थसिद्धि देव मिथ्याद्रष्टि मनुष्यनियोसे तिगुणे और सात गुणे है। तथा कोई आचार्य ऐसा भी कहता है कि सर्वार्थसिद्धि देव सामान्यसे संख्यात समय गुणाकार है। इसलिये यहा गुणाकारके विषयमे तीन उपदेश है। तीनोंके मध्यमें एक ही

जात्व (श्रेष्ट) उपदेश है, परन्तु वही जाना नही जाता है इस कारण तीनोंकाही संग्रह करना चाहिये (ध. ७-५७६)

प्रश्न—एक चन्द्रके कितना परिवार है ?

उत्तर—एक चन्द्रके परिवारमे (एक सूर्यके अतिरिक्त) अठासी गृह और अटठाईस नक्षत्र होते है, तथा तारोका प्रमाण निम्न है।

छावटिंठ च सहस्सं णवयसद पंच सतरि य होंति ।
एय ससी परिवारो ताराण कोडि कोडीओ ॥३

अर्थ—चन्द्रके परिवारमे छ्यासठ हजार नौसो पचहत्तर कोडा कोडी ६६९७५०००००००००००००००० तारे होते है। (ध. ४-१५२)

मनुष्य जीव का स्वरुप.

त्रस नामा नामकर्म तथा मनुष्यगति नामा नाम कर्मका उदयसे तथा स्पर्स, रस, घ्राण, चक्षु श्रोत्र एवं नौइन्द्रियावरणीय कर्मका क्षयोपशमसे जिस जीवको औदारिक शरीर मीला है, जिसमे रह-कर पाच इन्द्रियो द्वारा पंचेन्द्रियोके विषयोका भोग भोगनेकी शक्ति प्राप्त होती है। मनुष्य मात्र ही संज्ञी है। मनुष्यकी उत्पति दो प्रकारसे होती है। १ समूर्च्छम २ गर्भज। समुर्च्छम. मनुष्यको भी दश प्राण होता है। समुर्च्छम मनुष्यकी आयु स्वा-

स्वोस्वासके अठारवे भागमे, होती है। जिसका अपर्याप्त अवस्थामें ही मरण हो जाता है। मांस, रुधीर आदि सप्त धातु वाले शरीरमे असे जो जीवो उत्पन्न होते है. इसीको उपचारसे निगोद भी कहा जाता है, क्योंकि, असा जीवोकी आयु निगोद जीवोंके समान रहनेसे उपचार दिया जाता हैं। समुर्च्छिम जीव तो आत्म कल्याण कर नही शकता है।

गर्भज मनुष्य दो प्रकारका होता है। १ भोगभूमी मनुष्य २ कर्मभूमि मनुष्य।

भोगभूमि मनुष्य—देवकुरु उतम भोगभूमि हैं जहां तीन पल्यकी आयु होती है। हरिक्षेत्र मध्यम भोगभूमि है जहां दो पल्यकी आयु होती है। हैमवत क्षेत्र जघन्य भोगभूमी है जहा एक पल्यकी आयु होती है। भोगभूमियो की आयु की अन्तिम घडीयोमे बालकबालिका युगल पैदा होता है। और वह ४९ दिनमे भोगोपभोग भोगने लगाता है। यह युगलका पतिपत्नि का ही सम्बन्ध होता है। दस प्रकारके कल्पवृक्षसेंही अपनी इच्छाके अनुकूल भोगोकी सामग्री सहज मील जाती है। यह युगलका अर्थात पति पत्निका मरण एक साथ ही होता है. क्योंकि, अलग २ मरण होनेसे रागके कारणसे दुःखका अनुभव होता है. किन्तु, भोगभूमिमें संसारी सुखकी ही प्रधानता होनेसे दुःख वियोगका प्रसंग बनताही नही है। यह युगलीया मरकर नियमसे देवगतिमें जावेगा, उसकी दुसरी गति होती नही है। इसलिये

सम्यगदर्शनकी प्राप्ति हो शकती है, परन्तु वहां संयमासंयम भाव होताही नही है यह भोग भूमिकी महिमा है। गौत्रकी अपेक्षासे तो मनुष्य मात्र ही उच्च गौत्री है, परन्तु भोग भूमिमे व्यवहारसे गौत्रका भेद पडता नही है, क्योंकि वहा आजीवीकाका निमित से कोई भी कार्य होता ही नही है, कयोंकि वहा सर्व व्यवहार कल्प वृक्ष से ही होता है।

कर्मभूमि मनुष्य—कर्म भूमिके मनुष्य भी दो प्रकारके होते है। १ आर्य मनुष्य. २ अनार्य मनुष्य। जिसको आत्मीक धर्म प्राप्त करनेकी भावना होती है वह आर्य मनुष्य है। जिसको आत्मीक धर्म प्राप्त करनेकी भावना होती नही वही अनार्य हैं जिसको म्लेच्छ कहते है। प्रधानपने यह भेद भूमि जन्य है। म्लेच्छ खन्डोमे रहनेवाले जीवोमे धर्म बुद्धि होती ही नहीं है. यह इस भूमिकी एक महिमा है. जिस कारणसे अनादि अकृतिम चैतालय वहा एक भी नही हे. इससे सिद्ध होता है कि इस भूमिकी ही महिमा है। आर्यभूमिके मनुष्यका म्लेच्छ भूमिमे जन्मी हुई कन्याओके साथ विवाह—सादी करनेका व्यवहार है। म्लेच्छ भूमिमे जनम लिया हुआ स्त्री एवां पुरुष यदि आर्य भूमिमे आजावेतो वह अपना परिणामो निर्मल करे तो मुनि अर्जिकाका पद तकका परिणामो निर्मल कर शकता है परन्तु यही परिणाम म्लेच्छ भूमिमें रहकर निर्मल कर नही शकता है। परन्तु यह जीवोका इतना निर्मल परिणामो नही हो शकता है कि उसी

भवशे वह मोक्ष चला जावे। इतनी इस जीवोमे विशेषता है। म्लेच्छ भूमिमें रहते वह जीवोका भाव आत्मीक धर्म प्राप्त करनेका कभी होता ही नही हैं ए यह भूमिकी एक विशेष बात है।

भरत ऐरावत तथा विदेह क्षेत्रमे रहनेवाले जीवोको आर्यक्षेत्र वासी कहाजाता है। कर्म प्रकृतिकी अपेक्षासे उचगौत्रके उदयमे ही मनुष्यगति मिलती है। एक आयुमें एक ही गौत्रका उदय रहता है, किन्तु गौत्रका परिवर्तन होता ही नही। कार्यकी अपेक्षासे अर्थात आजीवीका की अपेक्षासे व्यवहारमे उपचारसे गौत्रका भेद होता है, तो भी व्यवहार गौत्र परिवर्तन है। ब्राह्मण क्षत्रिय और वैस्य उचगौत्री कहा जाता है, और शुद्र नीचगौत्री कहा जाता हे। जो जीवो आत्मिक धर्ममे विवेकशील है उसीको ब्राह्मण कहा जाता हे। जो प्रजाकी रक्षा करते हें उसीको क्षत्रिय कहा जाता है। जो गौधन एवं खेती वणीज करते हैं उसीको वैश्य कहा जाता है। जो क्षत्रिय वैश्यकी चाकरी करता है उसीको शुद्र कहते हे। ब्राह्मण जाति ब्राह्मण, वैस्य, और शुद्रकी कन्याओकी साथ सादी कर शकता है। क्षत्रिय जाति क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य और शुद्रकी कन्याओकी साथ सादी–विवाह कर , शकता है। वैश्य जाति– वैस्य और शुद्रकी कन्याओकी साथमे सादी–विवाह कर शकता है, किन्तु वह ब्राह्मण एवे क्षत्रिय कन्याकी साथ सादी–विवाह कर नही शकता है। शुद्र जाति मात्र शुद्रकी ही

कन्याकी साथ विवाह कर शकता है, परन्तु वह ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यकी कन्याओकी साथ सादी—विवाह कर नही शकता है। परन्तु वर्तमानमे इस प्रकारका व्यवहार देखनेमें नही आता है। आगेके कालमें मामा और फुफाकी पुत्रीकी साथ सादी—विवाह करनेका रिवाज था, परन्तु वर्तमानमें इस प्रकारका व्यवहार देख-नेमें नही आता। जिससे मालुम होता है अर्थात सिद्ध होता है कि यह सब व्यवहार परिवर्तन शील है। आज जिसकी साथ बेटी व्यवहार नहि है किन्तु कल इसकी साथ व्यवहार हो शकता है, इससे सिद्ध होता है कि यह सब व्यवहार पविर्तन शील है। आज जो मेतर अस्पर्स शुद्र है उसकी साथ छुनेका व्यवहार नहि है परन्तु वही अस्पर्सशुद्र यदी मुसलीम, या ईसाय अर्थात क्रीशचीयन, एन्ग्लोइन्डीयन हो जावे तो इसकी साथ छुनेका व्यवहार वर्तमानमें भी देखनेमे आते हैं इससे **सिद्ध होता है कि यह सब व्यवहार परिवर्तन शील है।**

मनुष्यगतिमे तीनो प्रकारका वेदोका भाव एक जीवमे हो शकता है. अर्थात स्त्रीकी साथ रमनेका भाव, पुरुषकी साथ रमनेका भाव, और स्त्री-पुरुष दोनोकी साथ रमनेका भाव एक जीवमे हो शकता है। यह भाव परिवर्तन शील है। किन्तु तीन प्रकारका शरीरका ढाचा जो अंगोपाग नामा नाम कर्मकी प्रकृतिके उदयमे बनता है, वह परिवर्तन शील नही है. यह ढाचा एक पर्यायमे एक ही रहता है।

ग्रहितमिथ्यात्व- अर्थात कुदेव. कुगुरु. और कुधर्म माननेकी बुद्धि मनुष्य पर्यायमे ही होती है. और गतिमे ग्रहित मिथ्यात्व नही होता है इस अपेक्षासे मनुष्य गतिकी महिमां है।

उतकृष्ट पात्र जीवोको आहार दान मनुष्य गत्तिमे ही दिया जाता है, और गतिमे यह बात नही है यह मनुष्यगतिकी महिमा है. और गतिमे उतकृष्ट पात्र जीवोको आहार दानकी अनुमोदना हो शकती है।'

मोहनीय कर्मकी २८ अठाईस प्रकृति वाले मनुष्य लघु कालमे सम्यग दर्शनकी प्राप्ति कर शकता है परन्तु प्रथमोपशम सम्यक्त्व एवं संयम भाव आठ वर्षके पहेला नही हो शकता है। मनुष्य गति छोडकर और कोई गतिके जीवोमे दर्शन मोहनीय नामा कर्मकी क्षपणा करनेकी शक्ति नही है। मनुष्य गतिमे ही क्षायक सम्यगदर्शनकी प्राप्ति हो शकती है. और गतिमे क्षायक सम्यगदर्शनकी प्राप्ति नही हो शकती है यह भी मनुष्यगतिकी महिमा है। क्षायक सम्यगद्रष्टि जीव—देव तिर्यंच तथा नरक गतिमे मरण कर जा शकता है, परन्तु यह तीन गतिमें रहने वाला जीव नूतन क्षायक सम्यगदर्शनकी प्राप्ति नही कर शकता है।

शंका—क्षायक सम्यगदर्शनकी प्राप्ति केवली और श्रुत केवलीके निकटमे अथात पादमूलमे ही होना है ऐसा क्या नियम है.।

समाधान—यह तो निमितकी महिमा देखानेके लिये कथन किया है. अर्थात विशेषकर केवली श्रुत केवलीके निकटमे होता है, किन्तु यह कोई खास नियम नही है। तीसरी नरक भुमिके नारकी जिसका तीर्थंकर गौत्रका बन्ध हुवा है वही जीव नियमसे क्षयोपशम सम्यगद्रष्टि है। तीर्थंकर प्रकृति वाला मनुष्य होकर मुनि वनता है, तब दूसरा गुरुका शिष्य नही बनता, परन्तु मौन व्रत सहित एकल विहारी रहता है। ऐसा जीव केवली श्रुत केवली की पास जाता नही है, परन्तु स्वयं श्रुत केवली बनकर अपना परिणामो द्वारा दर्शन मोहनीय नामा कर्म की प्रकृतियोका क्षय कर क्षायक सम्यगद्रष्टि बन जाता हे, इससे **यह सिद्ध हुआकी दुसरे केवली श्रुत केवलीकी पास जाने से ही क्षायक सम्यगदर्शन होता है यह नियम नहीं है। जैसे कृष्ण महाराज का जीव।**

त्रीसठ शलाका पुरुष मनुष्यगतिमे ही होते हैं यह मनुष्य गतिकी महिमा है। मनःपर्ययज्ञानकी प्राप्ति मनुष्य गतिमे ही होती हैं और गतिमे मनःपर्ययज्ञान नही होता है यह मनुष्य गति की महीमा है। सप्तम नरकमे जानेका भाव मनुष्य और मच्छ कर शकता है, परन्तु सिद्धगतिमें जानेका भाव मच्छ कभी कर नही शकता है, यह भाव मात्र मनुष्यगतिमें पुरुषलिंगकोही हो सकता हे, यह मनुष्य गतिकी महिमा है। इससे साबित होता है कि सप्तम नरकमे जानेका भाव जो कर शके वही सिद्ध गतिमें जानेका

भाव प्राप्त कर शकता है यह नियम नही है। देव गतिके जीवो विशेषमे विशेष चोथा गुणस्थान तक का निर्मल भाव कर शकता हे, इससे विशेष निर्मल भाव वैक्रियिक शरीर वाले जीवोमे होइ नही शकता, क्योंकि वैक्रियिक शरीर वाले जीवोमें बुद्धि पूर्वक त्याग होता ही नही है। मनुष्यगति असी हे जिसमे जीव पुरुष पर्यायमे अपना प्ररिणाम निर्मल करनेको मागे (चाहे) तो वही जीव नर मे से "**नारायण**" अर्थात आत्मामेसे "**परमात्मा**" बन शकता हे यही मनुष्य गतिकी महिमा है।

प्रश्न—सुमेरु पर्वतके शिखर पर चढनेमें समर्थ ऋषीयोंके क्या एक लाख योजन उपर उडकर गमन करनेकी संभावना नही है ?

उत्तर—भले ही सुमेरुके उर्द्धप्रदेशमे ऋषीयोके गमन करनेकी शक्ति रही आवे किन्तु मनुषक्षेत्रके उपर एक लाख योजन उडकर सर्वत्र गमन करनेकी शक्ति नही है, अन्यथा मनुष क्षेत्रके संख्यातमे भागमे असा आचार्योका वचन नही बन शकता यही शुत्र

पमत्त संजदप्पहुडि जाव अजोगि केवली हि केवडियं खेतं फोसिदं लोगस्स असंखेज्जदि भागो॥

अर्थ— प्रमत्त संयत गुणस्थानसे लेकर अयोगी केवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोने कितना क्षेत्र स्पर्स किया है ? लोकका असंख्यातवा भाग स्पर्स किया है। (ध.४.१७१)

प्रश्न— अपर्याप्तक मनुष्य मरण कर कोनसी गतिमें जाता है ?

उत्तर—मनुष्य अपर्याप्तक मनुष्य मनुष्य पर्यायोसे मरण करके तिर्यंच और मनुष्य गतिमें जाते है, क्योंकि अपर्याप्तक मनुष्योके तिर्यंच और मनुष्य इन दो आयुको छोडकर अन्य आयुका वन्धका अभाव है। (ध. ६. ४६९)

सम्यगद्रष्टि मनुष्य सम्यगदर्शन सहित मरण करके सिद्धा विदेह क्षेत्रमें मनुष्य नहि हो शकता है। मिथ्यात्व अवस्थामें ही मरणकर मनुष्य विदेह क्षेत्रमें मनुष्य हो शकता है।

इति **भेदज्ञान** शास्त्र विषे जीवका विशेष प्ररुपक अधिकार पूर्ण हुआ।

जीवोंके भावका स्वरुप.

सिद्धातमे जीवके पाच भाव कहे हैं। १ औदयिक २ औपशमिक ३ क्षायोपशमिक ४ क्षायिक ५ पारणामिक भाव। जो शुभाशुभ कर्मके उदयसे जीवके भाव होय उनको औदयिक भाव कहते हैं। और कर्मोंके उपशमसे जीवके जो भाव होते हे, उनको औपशमिक भाव करते हैं। जैसे किचडके नीचे बैठनेसे जल निर्मल होता है, उसी प्रकार कर्मोंके उपशम होनेसे औपशमिक भाव होते हे।

शंका—उपशम किसे कहते हैं।

समाधान—उदय, उदीरणा. उत्कर्षण, अपकर्षण, परप्रकृति-

संक्रमण स्थिति काण्डक घात, और अनुभाग काण्डकघात के विना ही कर्मोंके सतामे रहनेको उपशम कहते है। (ध-१-२१२)

जो भाव कर्मके उदय अनुदयकर होय वे क्षायोपशयिक भाव कहाते है।

और जो सर्व प्रकार कर्मोके क्षय होनेसे भाव होते हें उनको क्षायिक भाव कहते है।

शंका—क्षय किसे कहते है ?

समाधान—जिनके मूल प्रकृति और उतर प्रकृति के भेदसे प्रकृतिबंध, स्थितिबंध, अनुभागबंध, और प्रदेश बंध का क्षय हो जाना उसे क्षय कहते है। (ध. १-२१५)

कर्मोपाधि रहित अर्थात जिसमे कर्मका सदभाव अथवा अभाव कारण नहि पडता है अैसा स्वाभाविक भावका नाम पारिणामिक भाव है। कर्मोपाधिके मेदसे. और स्वरुपके मेद होनेसे ये ही पाच भाव नाना प्रकारका होते है। औदयिक, औपशमिक, और क्षयोपशमिक ये तीन भाव कर्म जनित हैं, क्योंकि, कर्म के उदयसे, उपशमसे और क्षयोपशमसे होते है, इस कारण कर्म जनित कहा जत्ता है। और पारिणामिक भाव कर्म जनित नही है, क्योकि, वह शुद्ध पारिणामिक भाव जीवके सहज ही भाव है, इस कारण कर्म जनित नहि है।

प्रश्न—सर्व द्रव्योंमें पाच भावोंमें कौन कौन भाव है ?

उत्तर—जीवोंमें पांचोंही भाव पाये जाते हैं, किन्तु शेप

द्रव्योंमें पांच भाव नही है। पुद्गल द्रव्यमें औदयिक और पारिणामिक इन दोही भावोकी उपलब्धि होती है। और धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकासद्रव्य और काल द्रव्यमें केवल एक पारिणामिक भाव हैं। (ध. ५–१८६).

प्रश्न—औदियक भाव कितने प्रकारका है ?

उत्तर—औदयिक भाव स्थानकी अपेक्षा आठ प्रकारका है, और विकल्पकी अपेक्षा एकीस प्रकारका है।

शंका—स्थान क्या वस्तु है ?

समाधान—भावकी उत्पतिका कारण स्थान कहते हैं। कहा भी है कि,

गदिलिंग कषाया विय–मिच्छादंसणम सिद्ध दण्णाणं
लेस्सा असंजमो च्चिय होंति उदयस्स ठाणाइं ॥

अर्थ–१ गतिचार, २ लिंग तीन, ३ कषायचार, ४ मिथ्यादर्शन एक, ५ असिद्धत्व एक, ६ अज्ञान एक, ७ लेस्याछोह और ८ असंयम एक ये औदयिक भावके आठ स्थान है। (ध. ५. १८९)

शंका—असिद्धत्व क्या वस्तु है ?

समाधान—अष्ट कर्मोके सामान्य उदयको असिद्धत्व कहते है।

शंका—पांच जाति, छोह संहनन, छोह संस्थान, आदि औदयिक भाव कहा है वह किस भावमे अन्तर्गत है ?

समाधान—उक्त जातियो आदिकका गति नामक औदयिक भावमें अन्तर्भाव होता है, क्योंकि, इन जाति, संस्थान आदिका उदयगतिनाम कर्मके उदयका अविनाभावि है। इस व्यवस्थामें लिंग, कषाय आदि औदयिक भावोसे भी व्यभिचार नहि आता है, क्योंकि, उन भावोमें उस प्रकारकी विवक्षाका अभाव है। (ध ५ १८९)

प्रश्न—औपशिमिक भाव कितने प्रकारका है?

उत्तर—औपशमिक भाव स्थानकी अपेका दो प्रकारका है, और विकल्पकी अपेक्षा आठ प्रकारका है। औपशमिक भावके सम्यकत्व और चारित्र यह दोही स्थान होता है, क्योंकि औपशमिक सम्यकत्व और औपशमिक चारित्र ये दोही भाव पाये जाते है। इनमेसे औपशमिक सम्यकत्व एक ही प्रकारका है, और औपशमिक चारित्र सात प्रकारका है। १ नपुसकवेदउपसम. २ स्त्रीवेदउपशम. ३ पुंवेदकी साथ छोह नोकषाय उपशम. ४ क्रोध उपशम. ५ मान उपशम. ६ माया उपशम ७ लोभ उपशम. इस प्रकार औपशमिक चारित्र सात प्रकारका है। (ध. ५. १९०)

प्रश्न—क्षयोपशमिक भाव कितने प्रकारका है?

उत्तर—क्षयोपशमिक भाव स्थानकी अपेक्षा सात प्रकारका है और विकल्पकी अपेक्षा अठारह प्रकारका है। १ चारज्ञान. २ तीनअज्ञान. ३ तीनदर्शन. ४ लब्धिपाच. ५ सम्यकत्वएक. ६ चारित्रएक ७ देशसंयम एक इसप्रकार है। कहा भी है कि,

(ध. ५. १८९) -

णाणण्णाणं च तहा दसण-लद्धी तहेव सम्मत्तं ।
चारित्तं देसजमो सतेव य होंति ठाणाइं ॥ ९ ॥

प्रश्न—क्षायिक भाव कितना प्रकारका है ?

उत्तर—क्षायिक भाव स्थानकी अपेक्षा पाच प्रकारका हैं, और विकल्पकी अपेक्षा नौ प्रकारका है। १ दानादि लब्धीपांच. २ क्षायक सम्यकत्व एक. ३ क्षायक चारित्र एक. ४ केवल दर्शन एक. ५ केवलज्ञान एक, इसप्रकार है। कहा भी है कि,

(ध. ५. १८०)

लद्धिओ सम्मत्तं चारितं दंसणं तहा णाणं ।
ठाणाइं पंच खइए भावे जिण भासियाइं तु ॥

प्रश्न— पारिणामिक भाव कितना प्रकारका है ?

उत्तर— पारिणामिक भाव तीन प्रकारका है, १ चैतनत्व. २ भव्यत्व. ३ अभव्यत्व। जीस जीवमे सम्यगदर्शन प्राप्त करनेकी शक्ति है, यह भव्य जीव कहलाते है। जीस जीवमे सम्यगदर्शन प्राप्त करनेकी शक्ति नहि है वह अभव्य जीव कहलाता है।

प्रश्न—भव्य अभव्य जीवके गुण है या पर्याय है ? यदि पर्याय है तो वह किस गुणकी पर्याय है।

उत्तर—भव्य अभव्य आत्माकी श्रद्धा नामका गुणकी स्वाभावीक सहज पर्याय है। वह पर्याय स्वभावसे ही अनादिसे उत्पन्न हुई है, इस कारण उसको पारिणामिक भाव कहते है। जीस भावमे कर्मका

सदभाव अथवा अभाव कारण न पडे जो सहज भाव हो उसीको पारिणामिक भाव कहते है। वह भव्य भाव क्षायक सम्यगदर्शन प्राप्त होनेसे आपसे आप विलय हो जाता है।

भव्यत्व भाव शादि शान्त भी होते है। पर्यायार्थिक नयके अवलम्बनसे जबतक सम्यकत्व ग्रहण नही किया तबतक जीवका भव्यत्व भाव अनादि अनंतरूप है। क्योंकि तबतक उनका संसार अंत रहित है। किन्तु सम्यकत्व ग्रहण करने पर अन्यही भव्य भाव उत्पन्न हो जाता है, क्योकि, प्रथमोपसम सम्यकत्व उत्पन्न होजानेपर केवल अर्धपुद्गल परिवर्तनमात्र कालतक संसार में स्थिति रहेती है। इसी प्रकार एक समय कम उपार्धपुद्गल परिवर्तन संसारवाले दो समय कम उपार्धपरिवर्तन ससारवाले आदि जीवोके पृथक् पृथक् भव्य भावका भी कथन वन शकता है इस प्रकार सिद्ध होजाती है कि भव्य जीव शादि शात भी होते है। (ध. ७—१७७)

प्रश्न—पाच प्रकारके भावोमेसे तीसरे गुणस्थानमे कौनसा भाव है?

उत्तर—तीसरे गुणस्थानमे क्षयोपशमिक भाव है।

शंका—मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे सम्यगमिथ्यात्व गुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीवके क्षयोपशमिक भाव शंभव है?

समाधान—वह इस प्रकार है कि वर्तमान समयमें मिथ्यात्व कर्मके सर्वघाती स्पर्धकोंका उदयाभावी क्षय होनेसे उन्हींका सत्तामे रहना वही उपशम, और सम्यग मिथ्यात्व कर्मके

सर्वघाती स्पर्धकोंके उदय होनेसे सम्यग मिथ्यात्व गुणस्थान पेदा होता है इस लिये वह क्षयोपशमिक भाव हैं।

शंका—तीसरे गुणस्थानमें वहां सम्यगमिथ्यात्व प्रकृतिके उदय होनेसे वहा औदयिक भाव क्यों नही कहां है ?

समाधान—नही कयोंकि, मिथ्यात्व प्रकृतिके उदयसे जिस प्रकार सम्यकत्वका निरन्वय नाश होता है, उस प्रकार सम्यग मिथ्यात्व प्रकृतिके उदयसे सम्यकत्वका निरन्वय नाश नही होता है. इसलिये तीसरे गुणस्थानमे औदयिक भाव न कहकर क्षयोपशमिक भाव कहा हैं।

शंका—सम्यगमिथ्यात्वका उदय सम्यगदर्शनका निरन्वय विनासतो करता नहि हैं फिर उसे सर्वघाती क्यों कहा है ?

समाधान—अैसी शंका ठीक नहीं हैं, कयोंकि, वह सम्यगदर्शनकी पूर्णताका प्रतिबन्ध करता है इस अपेक्षासे सम्यग-मिथ्यात्वको सर्वघाती कहा हैं (ध. १-१६७

शंका—प्रतिबन्धी कर्मके उदय होनेपर भी जो जीवके गुणका अवयव (अंश) पाया जाता है, वह गुणांश क्षयोपशमिक कहलाता है, कयोकि, गुणोंके संपूर्णरूपसे घातनेकी शक्ति का अभाव क्षय कहलाता है। क्षय रुप ही जो उपशम होता हैं वह क्षयोपशम कहा जाता है। किन्तु सम्यगमिथ्यात्व कर्मके उदय रहते हुए सम्यकत्वकी कणीका भी अविशिष्ट नही रहती हैं, अन्यथा, सम्यग मिथ्यात्व कर्मके सर्वघाती पना वन नही सकता

है। इस लिये सम्यग मिथ्यात्व भाव क्षयोमशमिक है, यह कहना घटित नही होंता ?

समाधान—सम्यगमिथ्यात्व कर्मके उदय होंनेपर श्रद्धाना-श्रद्धान कथंचित मिश्रीत जीव परिणाम उत्पन्न होता है। उसमे जो श्रद्धान अंश है, वह सम्यकत्वका अवयव अंश है, उसे सम्यगमिथ्यात्व कर्मका उदय नष्ट नही करता हे इसलिये सम्यग मिथ्यात्व भाव क्षयोपशमिक हैं।

शंका—अश्रद्धान भावके विना केवल श्रद्धान भाग के ही सम्यगमिथ्यात्व यह संज्ञा नही हे इस लिये सम्यगमिथ्यात्व भाव क्षयोपशमिक नही है ?

समाधान—उक्त प्रकारकी विवक्षा होनेपर सम्यगमिथ्यात्व क्षयोपशमिक भाव भले ही न होवे किंतु अवयवी के निराकरण और अवयवके अनिराकरण की अपेक्षा व क्षयोपशमिक भाव है। अर्थात सम्यग मिथ्यात्वके उदय रहते हुए अवयवी रुप शुद्ध आत्माका तो निराकरण रहता है, किंतु अवयव रुप सम्यकत्व गुणका अंश प्रगट रहता है। इस प्रकार क्षयोपशमिक भी वह सम्यग मिथ्यात्व द्रव्य कर्म सर्वघाती ही होवे, क्योकि जात्यंन्तर भूत सम्यग मिथ्यात्व कर्मके सम्यकत्वका अभाव है, किन्तु श्रद्धान भाग अश्रद्धान भाग नही होता है, क्योकि श्रद्धान और अश्रद्धान के एकताका विरोध है। और श्रद्धान भाग कर्मोदय जनित भी नही है, क्योकि इसमे विपरितता का अभाव है। और न उनमें सम्यकत्व मिथ्यात्व संज्ञाकाही

अभाव है, क्योंकि समुदायोमें प्रवृत हुए शब्दोकी उनके एक देशमेंभी प्रवृती देखी जाती है। इस लिये यह सिद्ध हुआकि सम्यग मिथ्यात्व क्षयोपशम भाव है। (ध. ५-१९८)

सम्यकत्वकी अपेक्षा भलेही सम्यग मिथ्यात्वके स्पर्धको में सर्व घाती पना हो, किन्तु अशुद्धनयकी विवक्षासे सम्यग मिथ्यात्व प्रकृतिके स्पर्धकोंमें सर्व घाति पन्ना नहि होता, क्योंकि, उनका उदय रहनेपर भी मिथ्यात्व मिश्रीत सम्यकत्वका कण पाया जाता है। सर्वघाती स्पर्धकतो उन्हे कहते है, कि जिसका उदय होनेसे समक्ष प्रति पक्षी गुणका घात हो जाय। किंतु सम्यग मिथ्यात्वकी उत्पतिमें तो हम सम्यकत्वका निर्मूल विनाश नही देखते, क्योंकि, यहा सदभूत और असदभूत पदार्थोंमें समान श्रद्धान होता देखा जाता है। इस लिये क्षयोपशमिक भाव मानना उपयुक्त है। (ध.७-११०)

कितनेही आचार्यो असा कहता है कि मिथ्यात्वके सर्वघाती स्पर्धकोके उदय क्षयसे, उन्हीके सदवस्थारुप उपशमसे, सम्यकत्व प्रकृतिके देशघाती स्पर्धकोंके उदय क्षयसे, उन्हींके सदवस्थारुप उपशमसे अथवा अनुदयरुप उपशमसे और सम्यग मिथ्यात्व कर्मके सर्वघाती स्पर्धकोके उदयसे सम्यग मिथ्यात्व भाव होता है, इस लिये सम्यग मिथ्यात्व के, क्षयोपशमिकता सिद्ध होती है। किंतु उनका यह कथन घटित नही होता है, क्योंकि, असा माननेपर तो मिथ्यात्व भावके भी क्षयोपशमिकता का प्रसंग प्राप्त होता है। क्योंकि, सम्यग मिथ्यात्वके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदय क्षयसे, उन्हीके

सदवस्थारुप उपशमसे, और सम्यकत्व देशघाती स्पर्धकोंके—उदय क्षयसे, उन्हीके सदवस्थारुप उपशमसे, अथवा अनुदय रुप उपशमसे तथा मिथ्यात्वके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयसे मिथ्यात्व भावकी उत्पति पायी आती हैं, वैसा मानने पर अतिव्याप्ति दोष का प्रसंग आता है। (ध. ५–१९९)

शंका—तो फिर क्षयोपशमिक भाव कैसे घटित होता है।

समाधान—यथा स्थित अर्थके श्रद्धानको घात करनेवाली शक्ति जब सम्यकत्व प्रकृति के स्पर्धकोंमें क्षीण हो जाती है तब उनकी क्षायक संज्ञा है। क्षीण हुए स्पर्धकोंके उपशमको अर्थात प्रसन्नताको क्षयोपशम कहते है।

शंका— सम्यगमिथ्याद्रष्टि गुणस्थानमे अज्ञान भाव क्यों नहि है?

समाधान—श्रद्धान और अश्रान इन दोनोमे एक साथ मिला हुआ होनेके कारण संयतासंयतके समान भिन्न जातीयताको प्राप्त सम्यग मिथ्यात्वका पाचो ज्ञानोंमें अथवा तीनो अज्ञानोंमें अस्तित्व होनेका विरोध हैं। (ध. ५–२२४)

प्रश्न—पांच भावोमेंसे किस भावका आश्रय लेकर प्रमत-संयत गुणस्थान उत्पन्न होता है?

उत्तर—संयम की अपेक्षा यह गुणस्थान क्षयोपशमिक हैं।

शंका—संज्वलन कषाय के उदयसे संयम होता है, इस लिये उसे औदयिक नामसे क्यो नही कहा जाता है?

समाधान—नही, क्योंकि, संज्वलन कषायके उदयसे संयम की उत्पति नही होती है।

शंका—तो संज्वलन का व्यापार कहां पर होता है ?

समाधान—प्रत्याख्यानावरण कषाय के सर्वघाती स्पर्धको के उदयाभावी क्षयसे उत्पन्न हुए संयममे मलके उत्पन्न करनेमे संज्वलनका वेपार है। (ध.-१-१७६)

प्रश्न—आहारक काययोगी और आहारक मिश्र काय योगी वाले प्रमतसंयतको क्षयोपशमिक भाव कैसे कहा ?

उत्तर—आहारक और आहारकमिश्रकाय योगीयोंमे क्षयोपशमिक भाव होनेका कारण यह है कि उदयको प्राप्त चार संज्वलन और सात नोकषाय, इन ग्यारहचारित्र मोहनीय प्रकृतियों के देशघाती स्पर्धकों की उपशम संज्ञा है, क्योंकि संपूर्ण रुपसे चारित्र घातने की शक्तियोका वहा पर उपशम पाया जाता है। तथा इन्ही ग्यारह चारित्र मोहनीय प्रकृतियोंके सर्वघाती स्पर्धको की क्षय संज्ञा है, क्योंकि वहापर उनका उदयमें आना नष्ट हो चुका है। इस प्रकार क्षय और उपशम, इन दोनोसे उत्पन्न होनेवाला संयम क्षयोपशमिक कहलाता है। अथवा, चारित्र मोह सम्बन्धी उक्त ग्यारह कर्मप्रकृतियों के उदय की ही क्षयोपशम संज्ञा है, क्योंकि, चारित्र के घातने की शक्ति के अभाव की क्षयोपशम संज्ञा है। इस प्रकार के क्षयोपशम से उत्पन्न होनेवाला प्रमादयुक्त संयम क्षयोपशमिक है। ध.-५.-२२०)

प्रश्न—(सयोगीकेवलीके) सयोग भाव कौनसा भाव है ?

उत्तर—सयोग ये अनादि पारिणामिक भाव हैं। इसका कारण यह है कि यह योग न तो उपशम भाव है, क्योंकि मोहनीय कर्म के उपशम नही होनेसे भी योग पाया जाता है। न व क्षायक भाव है, क्योकि आत्मस्वरुपसे रहित योग की कर्मोंके क्षयसे उत्पति माननेमें विरोध आता है। योग घाती कर्मोदय जनित भी नही है, क्योकि, घातीकर्मोदयके नष्ट होने पर भी संयोगी केवलीमें योगका सद्भाव पाया जाता है। न योग अघातिकर्मोदय जनित भी नही हैं, क्योकि, अघातीकर्मोदय के रहने पर भी अयोगी केवलीमें योग नही पाया जाता है। योग शरीर नाम कर्मोदय जनित भी नही है, क्योकि पुद्गल विपाकी प्रकृतियोंके जीव परिस्पन्दनका कारण होनेमें विरोध हैं।

शंका—कार्मण शरीर पुद्गलविपाकी नही है; क्योकि उससे पुद्गलो के वर्ण, रस, गंध, स्पर्श, संस्थान आदिका आगमन आदि नही पाया जाता है। इस लिये योगको कार्माण शरीरसे उत्पन्न होनेवाला मान लेना चाहिये ?

समाधान—नही. क्योंकि, सर्व कर्मो का आश्रय होने से कार्माण शरीर भी पुद्गल विपाकी ही हैं, इसका कारण यह है कि वह सर्व कर्मोंका आश्रय या आधार है।

शंका—कार्मण शरीर के उदय विनष्ट होने के समयमें ही योगका विनाश देखा जाता है इसलिये योग कार्माण शरीर

जनित है ऐसा मानना चाहिये ?

समाधान— नही, क्योंकि, यदि ऐसा माना जाय तो अघातीकर्मोदयके विनाश होनेके अन्तर ही विनिष्ट होनेवाले पारिणामिक भवतव्य भावके भी औदयिक पनेका प्रसंग प्राप्त होता है।

इस प्रकार उपयुक्त विवेचनसे योगके पारिणामिक पना सिद्ध हुआ। अथवा योग यह औदयिक भाव है, क्योंकि शरीर नामकर्मके उदय का विनाश होनेसे पश्चात ही योगका बिनाश पाया जाता है, ऐसा माननेपर भव्यत्व भावके साथ व्यभिचार भी नही आता है, क्योंकि, कर्म सम्बन्धके विरोधी पारिणामिक भाव की कर्मसे उत्पति माननेमें विरोध आता है। (ध. ५-२२५)

योगको यदि क्षयोपशमिक भाव माना जावे तो सयोगी जीनको योगका अभाव माना जावेगा ? असलमे तो योग औदयिक भाव है और औदयिक योगका सयोगी केवलीमे अभाव माननेमें विरोध आता हैं। (ध—५—२२५)

प्रश्न—संक्लेश भाव किसको कहते है ?

उत्तर— असाताके बन्धयोग्य परिणामको संक्लेस भाव कहते है।

प्रश्न— विशुद्धभाव किसको कहते हैं ?

उत्तर— साताके बन्धयोग परिणामको विशुद्ध भाव कहते हैं।

कितनेही आचार्य ऐशा कहते है कि उतकृष्ट स्थितिसे अधस्थन स्थितियोको बाधनेवाले जीवका परिणाम विशुद्ध इस नामसे कहलाते है। और जघन्य स्थितिसे उपरिम द्वितीय तृतीय आदि

स्थितियोके बांधनेवाला जीवका परिणाम संक्लेस कहलाता है। किन्तु उनका यह कथन घटित नही होता है, क्योंकि, जघन्य और उतकृष्ट स्थिति के बान्धनेके योग्य परिणामको छोडकर शेष मध्यम स्थितियोके बाधने योग्य सर्व परिणामोके भी संक्लेस और विशुद्धताका प्रसंग आता है। किन्तु असा है नाहि, क्योंकि, एक परिणामके लक्षण भेदके विना द्विभाव अर्थात दो प्रकारके होनेका विरोध है।

शंका— वर्धमान स्थितिको सक्लेस और हीयमान स्थिति को विशुद्धका लक्षण मानलेनेसे भेद विरोधको प्राप्त नही होता है ?

समाधान— नही, क्योकि, परिणाम स्वरुप होने से जीव द्रव्यमे अवस्थाको प्राप्त और परिणामान्तरोमे असभव असे वृद्धि और हानि इन दोनो धर्मोके परिणाम लक्षणत्वका विरोध है। कपायकी वृद्धि भी संक्लेसका लक्षण नही है। क्योकि अन्यथा स्थितिबन्धकी वृद्धि बन नही शकती है। तथा विशुद्धके कालमे वर्धमान कपायवाले जीवके भी संक्लेसत्वका प्रसंग आता है। और विशुद्धिके कालमे कपायोकी वृद्धि नही होती है असा कहना भी युक्त नाही है, क्योंकि, असा मानने पर साता आदिके भुजा-कार बन्धके अभावको प्रसंग प्राप्त होता है। तथा असाता और साता इन दोनोके बन्धका संक्लेस और विशुद्धि इन दोनोको छोडकर अन्य कोई कारण नही है. क्योकि, वैसा कोई

कारण पाया नही जाता है। कषायोकी वृध्धि केवल असाताका वन्धका कारण नही है, क्योकि, उसके अर्थात कषायोकी वृद्धि के कालमें साताका बन्ध भी पाया जाता है। इसी प्रकार कषायोकी हानी केवल साता के बन्ध के कारण नही है, क्योंकि वह भी साधारण हें अर्थात कषायोके हानिके कालमें असाताका भी बन्ध पाया जाता हे। दुसरी बात यह हे कि, विशुद्धियां उतकृष्ट स्थितिमें अल्प होकर गणना की अपेक्षा बढती हुई जघन्य स्थिति तक चली जाती है। किन्तु संक्लेस जघन्य स्थितिमे अल्प होकर उपर प्रक्षेप उतर कमसे अर्थात सदस प्रचय रुपसे वढते हुए उतकृष्ट स्थिति तक चले जाते हैं। इस लिये संक्लेसोसे विशुद्धियां प्रथगभूत होती है, अैसा अभिप्राय जानना चाहिये। (ध.—६—१८०)

ईति **'भेदज्ञान'** शास्त्र मध्ये जीवो का भाव का अधिकार संपूर्ण हुआ।

निमित्त का स्वरुप

द्रव्योकि विकारी अवस्था धारणकरनेमे जो परद्रव्योकी सहाय ली जाती हें एवं सहज सहायता मिल जाती है अैसा परद्रव्योका नाम निमित्त हैं।—

निमित्त दो प्रकारका है। १ प्रेरक निमित्त २ उदासीन निमित्त।

प्रेरक निमित्त—जो नियमसे परिणति करावे सो निमित्त हैं। जैसे पवन ध्वजाके लिये प्रेरक निमित्त है। जिस दिशामे पवन चलता होगा वही दिशामे नियमसे ध्वजा फिरकेगी। यद्यपि पवनका एक अंश ध्वजामे नही जाता हे और ध्वजाका एक अंश पवन मे नही जाता है। दोनो द्रव्य अपने अपने गुणपर्यायमेही स्थित रहते संते सयोगसम्बधसे निमित नैमित्तिक सम्बन्ध बन जाता है। इसी प्रकार पोद्‌गलिक द्रव्य कर्मका उदय जो कि एकसमयकी अवस्थाहे वही संसारी आत्माके लिये प्रेरक निमित्त है। जितना अंशमें कर्मका उदय होगा इतनाही अंशमे आत्माका गुण नियमसे विकारी परिणमन करता होगा। यद्यपि तादात्म सम्बन्धसे कर्मका एक अंश आत्मामे चला नही जाता हैं, एवं तादात्म सम्बन्धसे आत्माका एक अंश कर्ममे चला जाता नही हे, तो मी सयोग सम्बन्धसे दोनोमें समान अवस्था हो रही है। जबतक कर्मोंकी साथमें आत्माका संयोग सबन्ध है तब तक ससारहें, और संयोग सबन्धका अभावका नाम मुक्त दशा है। कर्मोका सयोग आत्माका गुणकी हीन अवस्थाका प्रतिपादक हैं, अर्थात शुचक है।—कर्मोंकी साथमें आत्माका निमित नैमितिक सबन्ध है।

उदासीन निमित्त—जैसे जल मच्छलीयो के लिये उदासीन निमित्त है। जल मच्छलियोको चलाता नही हें, मच्छलियो अपनी शक्तिसे चलती हें. तो भी जल वीना मच्छलियो

चल नही शकती हैं । पोदगलिक द्रव्यकर्मोको छोडकर संसारके सभी पदार्थोंका अर्थात अनंतजीवद्रव्य, अनंताअनंत पुद्गल द्रव्य. धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, और कालद्रव्य, देव, गुरु, शास्त्रादि सब पदार्थों को नोकर्म कहा जाता है । यह नोकर्म का नाम उदासीन निमित्त है । आत्मामे जितना भाव होता है वह सभी भावो पर पदार्थ के आश्रित होता है । आत्मा स्वयं भाव करता हे परन्तु परपदार्थो वीना भाव नही कर शकता हैं । यद्यपि पदार्थों आत्मा को भाव करता नहि है परन्तु पदार्थों विना आत्मा भाव कर शकता नही । देवगुरु शास्त्र आत्मा का कल्याण नही कर शकता है परन्तु देवगुरु शास्त्र का ज्ञान किया बिनां कल्याण होता भी नही है । नोकर्म की साथ आत्मा का निमित्त नैमितिक सम्बन्ध नही हे परन्तु निमित उपादान सम्बन्ध हे । निमित्त नैमित्तिक संबन्धमें निमित्तके अनुकूल ही नैमित्तिक की अवस्था होती है, परन्तु निमित्त उपादान सम्बंधमे उपादानमे जैसी अवस्था होती है अैसी निमित्तमे नही होती है ।

जैसे देवगति नामकर्म के उदयमें आत्मा को देवरुप अवस्था धारण करनी पडेगी, और मनुष्यगति नामकर्म के उदयसे आत्माको मनुष्य पर्याय धारण करनी पडती हे, इसीका नाम निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है ।

जैसे दो पुरुप बैठे हैं । वहांसे एकी स्त्री सहज पसार होगयी

इसीको देख एक पुरुषने अपने भावमें विकार पैदा कर लिया तब वह मनुष्य कहते है कि, स्त्रीको देखकर मुजको विकार हुआ। वही स्त्रीको पुरुषने विकार भाव करनेमे निमित्त बनाली। दुसरा पुरुषमे विकार भाव नही हुवा, वह तो मात्र स्त्री को ज्ञेयरुपमे जानने वाला रहा। जिस प्रकार पुरुषमे विकार हुवा परन्तु वह स्त्रीमें विकार नही हुवा है। जड़ा अपराधकर निमित्त बनाया जाता है अैसा सम्बन्धका नाम निमित्त-उपादान सम्बन्ध अर्थात उदीरणा कहा जाता है।

निमित्तनैमित्तिक सम्बन्धमे आत्मा पराधीन है और निमित्त-उपादान सम्बन्धमे आत्मा स्वतंत्र है। अर्थात कर्मका उदयमें आत्मा पराधीन है और उदीरणामें आत्मा स्वतंत्र है।

प्रश्न—एक द्रव्यमे दुसरा द्रव्यका अत्यंत अभाव है तब निमित्तने क्या किया ? शास्त्र निविषै आत्माको कर्म नोकर्मसे भिन्न अबद्ध स्पृष्ट कैसे कहा है ?

उत्तर—अैसाही प्रश्न मोक्षमार्ग प्रकाशक शास्त्रमे **निश्चयाभासी** जीवने कहा हैं वहा लिखा है कि ' **संबंध अनेक प्रकारका है। तहां तादात्म संबंध अपेक्षा आत्माको कर्म नोकर्मसे भिन्न कहा है। तहां द्रव्य पलटकरि एक नाही हो जाय है और इस ही अपेक्षा अबद्ध स्पृष्ट कहा है। बहुरि संयोग संबंध अर्थात निमित्तनैमित्तिक संबंध अपेक्षा बंधन है ही।**

उनके (कर्म) निमित्ततै अनेक अवस्था धरे ही है। तातै सर्वथा निर्बंध मानना मिथ्या द्रष्टि है! इससे साबित होता है कि तादात्म संबंधसे परद्रव्यका आत्मामे अत्यंत अभाव है और **संयोग संबंधसे परद्रव्यका आत्मामे अत्यंत सदभाव हैं।**

शंका—आत्माये स्वतंत्र पने रागादिक किया है उसमें परद्रव्य क्या करेगा? क्योंकि सब द्रव्योमें अपने अपने गुणोका उत्पाद व्यय ध्रुव हो रहा है वहां निमित्त क्या करेगा? क्योंकि एक द्रव्यकी क्रियाका (कर्मका) दुसरा द्रव्य कर्ता कभी भी नही होसकता है?—

समाधान—आत्मामें अमुक पर्याय दो द्रव्यके मिलापसे भी होती है उसीको आप आत्माकी पर्याय कहोगे या पुद्गलकी पर्याय कहोगे? जैसे मनुष्य देव तिर्यंच नारकी आदि अवस्था। दशप्राण आदि अवस्था। जैसे मनुष्य पर्यायका व्यय हुआ देव पर्यायकी उत्पति हुई और आत्मा वहीका वही ध्रुव रहा।

शंका—यह तो आत्माका प्रदेशत्व नामके गुणकी विकारी पर्याय है उपचारसे देव मनुष्यादि पर्याय कही जाती है?

समाधान—जैसे मनुष्यका आकार और देवका आकार समान है तब वहां प्रदेशत्व नामके गुणकी तो समान विकारी पर्याय है तब ऐसी अवस्थामे मनुष्यको आप देव कहोगा? क्या गधेके शींग जैसा यह उपचार है? जैसा मनुष्यका आकार है

वैसाही सिध्ध परमात्माका आकार है तब वहां मनुष्य और सिध्धको समान मानोगे ? मनुष्य पर्यायका व्यय हुआ सिध्ध पर्यायकी उत्पति हुई और आत्मा ध्रुव रहा। **इससे सिद्ध होता है कि मनुष्यादि पर्यायको आप कथंचित आत्माकी पर्याय कह शकते हो कथंचित पुद्गलकी पर्याय कह शकते हो यही स्याद्वाद है।**

प्रश्न--अब आप ही कहो कि, जैसे सांख्यमति आत्मा को रागादिक का अकर्ता **ही मानता है,** वैसे आप कैसे मानते हो ?

उत्तर---सम्यकत्व चरण चारित्र की अपेक्षा आत्मा चतुर्थ गुणस्थान से रागादिक का अकर्ता ही हैं ।-- देखिये समयसार का कलश २०५, और संयम चरण चारित्र की अपेक्षा आत्मा सप्तम गुणस्थान से रागादिक का अकर्ता ही है । देखिये समयसार गाथा २८५ एवं इसीकी टीका ।

सम्यकत्व चरण चारित्र की अपेक्षा चतुर्थ गुणस्थानसे सम्यग दृष्टि आत्मा **रागादिक का कर्ता चारित्र मोहनीय कर्मको मानते है।** अपनेको रागादिक का कर्ता नही मानता है । उसी प्रकार संयम चरण चारित्र की अपेक्षा सप्तम गुणस्थानसे चारित्र मोहनीय कर्मका उदय को रागादिक का कर्ता मानता है । अर्थात **बुद्धि पूर्वक रागादिक होता है, तबतक रागादिक को अपने को कर्ता मानता है, और अबुद्धिपूर्वक रागादिक को कर्म की वरजोरी से होजाने के कारण**

कर्म को रागादिक का कर्ता मानता है।

शंका—रागादिक आत्मा का गुणकी ही पर्याय है वह पुद्‌गल द्रव्यकी पर्याय नही है। इसलिये यदि सम्यगद्रष्टि आत्मा निश्चयसे रागादिकको आत्माही कर्ता माने तो वह सम्यगद्रष्टि है या नही ?

समाधान—यदि सम्यगद्रष्टि निश्चयसे ही रागादिकको अपनेको ही कर्ता माने तो वह मिथ्याद्रष्टि ही है, क्योंकि, जब निश्चयसे अपनेको ही रागादिकका कर्ता माना, तब रागादिकका नाश कैसे हो शकता है ? **इससे सिद्ध होता कि कथंचित आत्मा रागादिकका कर्ता है। कथंचित आत्मा रागादिकका कर्ता नही है। यही मानना सम्यकत्व है। और इसीका नाम स्याद्वाद है।**

शंका—तब क्या चारित्र मोहनीय पुद्‌गल कर्म कर्ता और आत्माकी रागादिक परणती कर्म ऐसाही आपका कहना है कि ?

समाधान—ऐसा ही मानना चाहिये, क्योंकि, एकान्तसेही रागादिक परणतिका आत्माही कर्ता माना जावे तो वहां एकान्त मिथ्यात्व का दोष आता है। यद्यपि रागादिक आत्माकी पर्याय होते संते जब तक रागादि करनेका भाव है अर्थात **बुद्धिपूर्वक रागादिक हो रहा है, तब तक उपादानकी प्रधानतासे उस रागादिकका कर्ता**

आत्माकोही मानना चाहिये, और जब रागादिक करनेका भाव ही नही है, परन्तु कर्मके उदयकी बरजोरीसे रागादिक हो जाता है, उसीको निमित्त कर्ताकी प्रधानतासे रागादिकका कर्ता चारित्र मोहनीय द्रव्यकर्मोंको मानना यही स्याद्वाद है। आत्माकी इच्छा रागादिक करनेकी नही है. तो भी, कर्मकी बरजोरीसे रागादिक होजाता है, वही तो निमित्तिकक्रिया है, यह कर्मने क्या कमती काम किया ?

निमित्तकी क्रियाके आधिन हुआ वीना कभी भी विकारी क्रिया होती ही नही है यह सिद्धांत है। यदी स्वभावसे ही विकार होजावे तो विकारका नाश कभी भी होई नही शकता हैं। इसी प्रकार वचनरुप पुद्गलीक वर्गणाकी इच्छा शब्द रुप होनेकी नही है परन्तु आत्माके योग और उपयोग रुपी निमित्तकी बरजोरीसे वचनरुपी पुद्गलीक वर्गणाको शब्द रुप अवस्था धारण करनी ही पडती है। मट्टीकी इच्छा घट रुप होनेकी नही है, परन्तु कुमकारके योग उपयोग रुप निमित्तकी बरजोरीसे मट्टीको घट रुप अवस्था करनीही पडती है।

कोई कहे मट्टीये स्वय घट रुप अवस्था धारण की है, वचन रुपी पुद्गल वर्गणाये स्वय शब्द रुप अवस्था धारण की है उसमे निमित्तने क्या किया ?

प्रश्न—मट्टीकी घट रुप अवस्था होना, वचन वर्गणाकी शब्द

रूप अवस्था होना वह पुद्गल द्रव्यकी स्वभावीक पर्याय है या विकारी पर्याय है।

उत्तर—वह पुद्गल द्रव्यकी विकारी पर्याय है।

शंका—वह पुद्गल द्रव्यने विकारी पर्याय किसको आधीन होकर धारण की ? क्योंकि, **विकारी पर्याय पर द्रव्यको आधीन हुआ बीना होती ही नही यह न्याय है। और न्यायमे तर्क चलता ही नही है।**

समाधान—पुद्गलने स्वतंत्र विकारी पर्याय धारण की हैं। निमित्तके आधीन होकर विकारी पर्याय धारण की हैं ऐसा कहना मै नही चाहता हूं, क्योंकि, ऐसा कहनेसे निमित्तकी प्रधानता आजाती हे जो मुजको स्वीकार नही है।

शंका—तब सम्यगद्रष्टि आत्मा स्वयंविकारी पर्यायका कर्ता है ऐसा क्यो नही मानते हो ?

समाधान—ऐसा कहनेसे या माननेसे **मैं मिथ्याद्रष्टि हो जाता हूं इससे यह बात मुजको स्वीकार नही है। सम्यगद्रष्टिके लिये तो विकारका कर्ता परद्रव्य चारित्र मोहनीय नामा कर्म है, और पुद्गलका विकारके लिये पुद्गल स्वयं विकार करता ऐसा माननेसे विरुद्ध मानना मुजे स्वीकार नही है।**

यह आपका न्याय युक्त, जवाब नही हे, यह तो मात्र आपका हठ वादही है। **जहां हठवाद है वहां तो अज्ञान है, और**

जहां अज्ञान है वहां तो मिथ्यात्व है।

विकारी अवस्थामे कर्ता दो प्रकारका माना जाता है। १ उपादानकर्ता २ निमित्तकर्ता। जहां बुद्धिपूर्वक अर्थात इच्छा पूर्वक कर्म किया जाता है वह कर्मका कर्ता उपदान कर्ता ही गिना जाता है, परन्तु जहां कर्म करनेकी इच्छा है ही नही परन्तु पर द्रव्यकी वरजोरीसे वह कर्म किया जाता है वहां निमित्तको कर्ता माना जाता है। **उपादानकर्ताको उपादानकर्ता जानना एवं निमित्तकर्ताको निमित्त कर्ता जाननां सम्यकज्ञान है, परन्तु उपादानकर्ताको निमित्तकर्ता जाननां और निमित्तकर्ताको उपादान कर्ता जाननां मिथ्याज्ञान है।**

प्रश्न—रागादिक होनेमे आत्मा निमित कारण है, कि दुसरा कोइ ?

उत्तर—जैसे स्फटिकमणि आप शुद्ध है वह ललाई आदि रंग स्वरुप आप तो नही परीणमती परन्तु वह दुसरे लाल काले आदि द्रव्यो कर ललाई आदि रंग स्वरुप परिणमती है, इसी प्रकार ज्ञानी आप शुद्ध है, वह रागादि भावोसे आप तो नही परिणमता परन्तु अन्य रागादि दोषोसे रागादि रुप किया जाता है। अकेला आत्मा परिणमन स्वभाव रुप होनेपर भी अपने शुद्ध स्वभाव पनेकर रागादि निमित्त पनेके अभावसे आप ही रागादि भावो कर नही परिणमता अपने आप ही रागादि परिणाम को निमित्त नही है, परन्तु परद्रव्य स्वयं रागादि भावको प्राप्त होने

पनेसे आत्मा के रागादिक का निमित्त भूत हैं, उस कर शुद्ध स्वभावसे च्युत हुआ ही रागादि कर परिणमता है ऐसा वस्तु का स्वभाव है। कहा भी है कि

नजातु रागादि निमित्त भावमात्मात्मनो याति यथार्ककांतः।
तस्मिन्निमित्तं परसंग एव वस्तुस्वभावोऽय मुदेति तावत् ॥१७५॥

अर्थ—आत्मा अपने रागादिक के निमित भावको कभी नही प्राप्त होता. उस आत्मामें रागादिक होनेका निमित पर द्रव्य का संग सम्बन्ध ही है। यहां सूर्यकांतमणि का द्रष्टांत है जैसे शूर्यकांतमणि आप ही तो अग्निरुप नही परिणमती उसमे सूर्यका बिंब अग्निरुप होनेका निमित है, वैसे जानना। यह वस्तु का स्वभाव उदय को प्राप्त है किसीका किया हुआ नहीं है। (समयसार कलश, १७५)

आत्मा आपसे रागादि भावो का अकारक ही है. क्योंकि, आप ही कारक हो तो अप्रतिक्रमण और अप्रत्याख्यान इनके द्रव्य भाव इन दोनो भेदो के उपदेश की अप्राप्ति आती है। जो निश्चयकर अप्रतिक्रमण और अप्रत्याख्यान दो प्रकार का (भेद) का उपदेश है वह उपदेश द्रव्य और भाव के निमित नैमितिक भाव को विस्तारता हुआ आत्मा के अकर्ता पनेको जतलाता है। **इस लिये यह सिद्ध हुआ कि परद्रव्य तो निमित्त है और नैमितिक आत्मा के रागादिक भाव है।** यदि ऐसा न माना जाय तो द्रव्य अप्रतिक्रमण और द्रव्य अप्रत्याख्यान इन

दोनो के कर्ता पनेके निमित पनेका उपदेश है वह व्यर्थ ही हो जायगा। और उपदेश के अनर्थक होनेसे एक आत्मा के ही रागादिक भावके निमित्त पने की प्राप्ति होनेपर सदा (नित्य) कर्ता पनेका प्रसंग आयगा उससे मोक्ष का अभाव सिद्ध होगा। इस लिये आत्मा के रागादिक भावो का निमित "परद्रव्य ही रहे" ऐसा होनेपर आत्मा रागादिक भावोका अकारक ही है यह सिद्ध हुआ। (समयसार गाथा २८३-८५ की टीका.)

शंका—सम्यगदर्शन होनेमें अंतरंग हेतु स्व आत्मा ही होता है?

समाधान—यदि सम्यगदर्शन होनेमें अतंरंग हेतु स्व आत्मा ही होता है तो आत्मा तो अनादि का हें अभितक सम्यगदर्शन क्यो नहि हुआ? सम्यगदर्शन तीन प्रकारका होता है १ उपशम सम्यगदर्शन. २ क्षयोपशम सम्यगदर्शन. ३ क्षायक सम्यगदर्शन। तीन प्रकार के सम्यगदर्शन होनेमे एक ही आत्मा अतरग हेतु कैसे हो शकता है? इससे सिद्ध होता है कि दर्शन मोहनीय कर्मका अभाव आदि सम्यक्त्व होनेमे अतंरंग हेतु हैं। कहा भी है कि—

सम्मत्त पडिणिवद्धं मिच्छत्तं जिणवरेहि परिकहियं।
तस्सोदयेण जीवो मिच्छादिट्ठित्ति णायव्वो ॥ १६१ ॥
णाणस्स पडिणिवद्धं अण्णाणं जिणवरेहि परिकहियं।

तस्सोदयेण जीवो अण्णाणी होदि णायव्वो ॥ १६२ ॥
चारित्त पडिणिबद्धं कसाय जिणवरेहि परिकहियं ।
तस्सोदयेण जीवो अचरितो होदि णायव्वो ॥ १६३ ॥

—समयसार

अर्थ— सम्यक्त्वका रोकनेवाला मिथ्यात्व कर्म है ऐसा जिनवर देवने कहा है, उस मिथ्यात्वके उदयसे यह जीव मिथ्या-द्रष्टि हो जाता है। ऐसा जानना चाहिये। ज्ञानका रोकनेवाला ज्ञानावरणीय कर्म है ऐसा जिनवर देवने कहा है, उसके उदयसे यह जीव असानी होता है ऐसा जानना चाहिये। चारित्रका प्रतिबंधक चारित्र मोहनीय नामाकर्म है ऐसा जिनदेवने कहा है उसके उदयसे यह जीव अचारित्री अर्थात कषायी हो जाता है ऐसा जानना चाहिये।

सम्यक्त्वको मोक्षका कारण स्वभाव है, उसका रोकनेवाला मिथ्यात्व है सो आप स्वयं कर्म ही है उसके उदयसे ही ज्ञानको मिथ्याद्रष्टि पना है। ज्ञानको भी मोक्षका कारण स्वभाव है उसके रोकनेवाला ज्ञानावरणीय है सो आप स्वयं कर्म ही है उसके उदयसे ज्ञानको अज्ञानीपना है। चारित्रको भी मोक्षका कारण स्वभाव है उसका प्रतिबंधक चारित्र मोहनीय है सो आप स्वयं कर्म ही है उसके उदयसे ही ज्ञानके अचारित्रपना है। जिस कारण कर्मके स्वयमेव मोक्षका कारण सम्यगदर्शन ज्ञान चारित्र उनका तिरोधायीपना है इसी कारण कर्मका प्रतिपेध किया जाता है।

जिस समयमें कर्म का उदय हे उसी समयमे आत्माकी पुरुषार्थकी हीनता ही है। आत्माकी पुरुपार्थकी हीनता नही होती तो सामने कर्मका उदय कभी भी नही होता। इसीका नाम तो निमितनैमितिक संबंध है।

एक समयकी पर्याय छद्मस्थके ज्ञानका विपय ही नही है एसी ज्ञानकी पराधीन अवस्थामे कहना कि **मोहनीय कर्म के उदयमें राग करना की नही करना आत्माका हाथकी बात है यह तो मात्र मिथ्या बकवाद है। उदयमे पुरुषार्थ हो ही नही शकता है, क्योंकि, उदय एक समय की पर्याय है और एक समय की पर्याय छद्मस्थ के ज्ञानमे आती नही। पुरुषार्थ ऊदीरणा** अर्थात बुद्धिपूर्वक अपराध मे यदि आत्मा चाहे तो कर शकता हैं। जैसे आप अपनी एक अंगुली अडोल स्थिर उची किजिये? अब वहा आपको कोई प्रश्न करे कि यह अंगुलीमें जो आप का आत्मा के प्रदेश है उसमें जो योग नामका गुण है वह विकारी है या शुद्ध है?

उत्तर—उस अंगुलीमे योग नामका आत्मा का गुण विकारी है, क्योकि, यदि वह विकारी नही होता तो मेरा चौदवा गुणस्थान होना चाहिये? परन्तु चौदवा गुणस्थान नहि है?

प्रश्न—उस गुणको आप शुद्ध कर दिजिये?

उत्तर—मेरे से यह शुद्ध नही होता है, मेरे मे इतनी शक्ति वर्तमानमें नही है।

प्रश्न—आप अपनी दुसरी अंगुली खडी कर हीलाई है ? अब कहो उस अंगुली में योग नाम का आत्मा का गुण वेकारी है या शुद्ध है ?

उत्तर—यहीं अंगुली में भी योग नामका गुण विकारी है ?

प्रश्न—अडोल अंगुली में और हील्ती अंगुली मे योग नामका गुणमे जो विकार हें उसमे क्या अंतर है. क्योंकि एक अंगुली अडोल है जब दुसरी अंगुली बुद्धिपूर्वक हिलाई जाती है।

उत्तर—अडोल अंगुलीमे योग नामका आत्माका गुण उदय रुप विकारी है जब हिल्ती अ गुलीमें योग नामका आत्माका गुण उदीरणा रुप विकारी है यह दोनो में अ तर है।

प्रश्न—हिल्ती अंगुलीमें जो उदीरणा रुप योग नामका आत्माका गुण विकारी है उसको आप मिटा दिजीये ?

उत्तर—यह तो मिट शकता है क्योंकि अंगुली में आत्म प्रदेश है उसीको हिलाना या अडोल रखना यह वर्तमान मैरे बुद्धि पूर्वक पुरुषार्थ पर आधिन हैं

इससे सिद्ध हुआ कि उदयमे आत्माका पुरुषार्थ कार्य कर ही नही शकता है, क्योंकि, उदय एक ही समयकी अवस्था है जब उदीरणामें आत्माका पुरुषार्थ कार्य कर शकता है। उदीरणाको रोकना यहीं आत्माका यथार्थ में पुरुषार्थ हे।

प्रश्न—सम्यगदर्शन प्राप्त करनेमे किस जीवकी वाणी बाह्य निमित्त हो शकती है ?

उत्तर— जो जीव व्यवहारसे सम्यगद्रष्टि हैं अर्थात जीसको देवगुरु, शास्त्रकी श्रद्धा है और जिसको छोह द्रव्य, नौतत्व, पंचास्तिकाय आदि का जैसा स्वरुप हे—ऐसा जिसको ज्ञान है वह व्यवहारसे सम्यगद्रष्टि है। दर्शन पाहुडमें कहा भी है कि—

छह दव्य णव पयत्था पच-थी सत्ततत्व णिदिट्ठा।
सद्दहइ ताण रुवं सो स्वदिट्ठि मुणेयव्वो ॥ १९ ॥

अर्थ—छह द्रव्य—नव पदार्थ, पंच अस्तिकाय सप्त तत्व जिन वचनमे कहे हैं. उनके स्वरुपका जो श्रद्धान करता है. उसको सम्यगद्रष्टि जानना।

ऐसा व्यवहार सम्यगद्रष्टि अभवि जीव जिसको देशना लब्धि प्राप्त हो चुकी है. ऐसे जीवोके मुखसे वाणी सुनी जावे तो वही वाणी सम्यगदर्शन प्राप्त करनेमें बाह्य निमित पड शक्ती है। नियमसारमें कहा भी है कि—

सम्मतस्स णिमितं जिणसुत्तं तस्स जाणया पुरसा।
अतर हेऊ भणिदा दंसणमोहस्स ख्वय पहुडी ॥ ५३ ॥

अर्थ—सम्यगदर्शन होनेमें बाह्य निमित जिनवाणी तथा जिनवाणी जानने वाला पुरुष है, और अंतरंग निमित्त दर्शन मोहनीय नाम कर्म का क्षय उपशम और क्षयोपशम है।

इति '**भेदज्ञान**' शास्त्र मध्ये निमित अधिकार संपूर्ण हुआ।

गुरु भक्ति का स्वरुप

छठवा सातवा गुणस्थान वर्ती नग्न दिगम्बर मुनि जिसने सम्यगदर्शन सम्यगज्ञान की साथमें तीन कषायका अभाव रुप वीतराग दशा प्राप्त हुइ हे, अर्थात जिसने निश्चय आत्म भूतिकी साथ अनंन्तानुबंधी, अप्रत्याख्यान, तथा प्रत्याख्यान कषाय उपशम कीया है, वह तो निश्चयसे निग्रन्थ गुरु है। परन्तु व्यवहारसे जो जीव व्यवहार सम्यगद्रष्टि हैं। जिसकी नग्न दिगम्बर मुंद्रा है। जिसको आगम ज्ञान है, जो अठाइस मूल गुणोका यथार्थ पालन करता है। जो वाईस परिसहकों आगम अनुकूल सहन करते है। जो पंच समितिका आगम अनुकूल पालन करता है। जिसने पांच इन्द्रियोके विषयोको जित लीया है। देव मनुष्य और तिर्यंच कृत जो उपशर्ग आते है उसीको यथार्थ में जीतता है, वही व्यवहार निग्रन्थ मुनि हे इसकी ही नवधा भक्ति कि जाति है। क्योंकि अनादि कालसे यह जीव पाच इन्द्रियो और पांच इन्द्रियोके विषयसे जीता गया हे, परन्तु जो जीवने पाच इन्द्रियो और पांच इन्द्रियोके विषयको जित लिया है वही पुरुष धन्य है। **और ऐसा जितेन्द्रिय जीवोको ही मात्र अर्घ चडाना चाहिये अथवा नवधा भक्ति करनी चाहिये।**

पंचमगुणस्थानवर्ती एलक-क्षुलक अर्जिका आदि को अर्घ नही

चढाना चाहिये, **क्योंकि उसने यथार्थमे पांच इन्द्रियो, और पांच इन्द्रियोके विषयको जिता नही है, अर्थात अर्घ चढाने योग्य गुणो उसमे प्रगट हुवा नही है।** जिसको नमोस्तु कहनेका अधिकार नही है ऐसे जीवोको अर्घ कैसे चढाया जा शकता है? जिसकी पांसमे किंचित परिग्रह है, यद्यपि सम्यगदर्शन सम्यगज्ञान सहित है. ऐसे जीवोको मात्र इच्छाकार करनेका व्यवहार है। कहा भी है कि

अवसेसा जे लिंगी दसण णाण सम्म संजुता
चेलेणय परिगहिया ते भणिया इच्छणिज्जाय ॥

अर्थ—दिगम्बर मुंद्रा सिवाय अवशेष जे लिंगी हैं भेषकरी संयुक्त है, और सम्यगदर्शन ज्ञान करि संयुक्त हैं, और वस्त्र करि परिग्रहित हैं, वस्त्र राखे है ते इच्छाकार करने योग्य है।

शंका—स्त्रीको छठवा गुणस्थान होता है. ऐसा आचार्य भूतबली स्वामीने धवल ग्रन्थमे ९३ वा शूत्रमें कहा है, तो भी उसको अर्घ क्यो नही चढाना चाहियें? कहा भी है कि

'सम्मामिच्छाइटठि असंजसम्माइट्ठि संजदासंजद (संजद) ट्ठाणे णियमा पज्जतियाओ ॥ ९३ ॥

अर्थ—मनुष्य स्त्रीया सम्यगमिथ्याद्रष्टि, असंयत सम्यगद्रष्टि, संयता संयत, और "**सयत**" गुणस्थानमे नियमसे पर्याप्तक होती है।—

समाधान—यह करुणानुयोगकी अपेक्षासे अर्थात भावकी

अपेक्षा से कहा हैं जो सत्य है। परन्तु **करुणानुयोगमे भक्ति नही होती है।** कयोकि; जिस आत्माका ग्यारहवां गुणस्थान रुप परिणाम हे वही आत्मा अपने परिणामोसे च्युत होने पर, समय मात्रमे प्रथमादि गुणस्थान वर्ती हो जाता है। जहा परि-णामोकी अैसी स्थिति हैं, वहां छद्मस्थ जीव परिणाम देखकर भक्ति कर नही शकता, क्योंकि, छद्मस्थ जीवोका ज्ञानोपयोग असंख्यात समयमे ही होता है, इसलिये **भक्ति नियमसे चर-णानुयोग मे ही होती है।** चरणानुयोगकी अपेक्षासे जबतक वस्त्रादिकका त्याग नही किया जाता है. अर्थात द्रव्यसे भी निर्ग्रन्थ रुप अवस्था नही होती हे, तब तक छठवा गुणस्थान माना नही जाता हे, **इसी कारण स्त्रीका पंचम गुणस्थान माना जाता हे, और इसीकी पंचमगुणस्थानके अनुकूल भक्ति करनी चाहिये।** जैसे तीर्थंकर जब गृहस्थावस्थासे उदासीन होते हैं, तब उनके परिणाम सप्तम गुणस्थान रुप होते हें, तब ही, लौकान्तिक देव आते हैं, इसके पूर्व नही आता है। अैसे सप्तम गुणस्थान रुप भाव हुवा बाद ही वस्त्रादिकका त्याग किया जाता है। भाव पाहुडमे कहा भी है कि—

भावेण होइ णग्गो मिच्छताइ य दोस चइऊणं।
पच्छा दव्वेण मुणि पयडदि लिंग जिणाणाए॥ ७३॥

अर्थ—पहेले मिथ्यात्वादि दोषो को छोडकर भाव नग्न हो, एक रुप शुद्ध आत्माका ज्ञान श्रद्धान व आचरण कर तत्पश्चात

मुनि द्रव्य रुप वाह्य लिंग जिनाज्ञा पूर्वक प्रगट करे ऐसा जैन मुनिका मार्ग है।

प्रथम भाव होता है, बादमें ही क्रिया होती है तो भी जब तक तीर्थंकर नग्न अवस्था धारण नही करेगा, एवं केश लौच नही करेगा, तबतक चरणानयोग तीर्थंकरका छठवा गुणस्थान स्वीकार नही करता। चरणानुयोग मात्र वाह्य प्रवृति देखता है, कि जो प्रवृति छद्मस्थ जीवोके ज्ञान गोचर है **इसलिये चरणानु योगमे ही पदके अनुकूल भक्ति आदि क्रियाओ होती है।**

वर्तमान कालमे विशेष कर गृहस्थो अमर्यादित आहार लेते है। दिगम्बर जैन मुनियोको किस प्रकारसे और किस विधिसे आहार दान देना चाहिये इसका भी यथार्थ ज्ञान नही है। इस कारण से आहार दान देनेमे जो लाभ होना चाहिये इससे वह वंचित रह जाता है। मन. शुद्धि, वचन शुद्धि और काय शुद्धि कब और कौन अवस्थामे और **किसको बोलना चाहिये** इसका भी दातार को ज्ञान नही है। जिस दातारने मुनि महाराज के लिये ही चोंका लगाया है, उस दातार को यह शुद्धि बोलनेसे उद्गम आदि दोषो लगता हे। और मुनि महाराजो जानता ही है कि यह चोका सिर्फ मेरे लिये लगाया है, इस कारण से मुनि महाराज को भी उदि्ष्टादि दोषो लगता हे। परन्तु जो दातार नियमसे रोंजदा शुद्ध आहार ही लेते है, वही दातार यथार्थ मे मुनि महाराज को दान देनेके लिये

अधिकारी है । क्योंकि, उसने जो आहार बनाया है, वह मुनि महाराज के लिये नही बनाया है, किन्तु अपने निजके लिये बनाया है । जो आहार बनानेमे मनसे विकल्प नही किया है कि, मै मुनि महाराज के लिये आहार बना रहा हूं, वचनसे भी अैसा कथन न किया हो कि, मै मुनि महाराज के लिये आहार बना रहा हूं, और कायसे भी अैसी क्रीया न कि हो कि मै मुनि महाराज के लिये आहार बना रहा हूं. अैसा दातार को मनःशुद्धि, वचनशुद्धि, कायशुद्धि बोलनेका अधिकार है । मुनि महाराज जब अपने ग्राममें पधारे तब से अपनी शक्ति के अनुकुल अैसी प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि, मै अमुक दिन, एवं मास तक शुद्ध आहार लुंगा यही उत्तम रिति है, जिससे वही दातार मुनि महाराज को आहार दान देनेमे यथार्थ लाभ उठा शकता है, और उदगम आदि दोपोसे सहज बच जाता है, और मुनि महाराजो भी उदिष्टादि दोपोसे सहज मुक्त हो जावे ।

शंका—चार प्रकार के दानोमेसे कोनसा दान उत्तम है ।

समाधान—दान तो चारो ही प्रकार का उत्तम है. फिर भी विचारनेसे मालुम होता है कि, आहार दान देनेसे पात्र जीवो को मात्र एक दिनका रोगसे मुक्ति हो शकती है । औपध दान देनेसे पात्र जीवो अमुक दिवस एवं मास का रोग से मुक्त हो शकता है । अभय दान देनेसे पात्र जीव एक आयु पर्यंत मुक्त हो शकता है । परन्तु **ज्ञान दान**

देनेसे जीवो अनंत भवोका जनम मरणसे मुक्त होकर कल्याण के पथ पर आशकता है इस लिये उत्तममे उत्तम ज्ञान दान है।

शंका—पात्र जीवोको जो अन्तराय आती है वह किसका दोषसे आती है ?

समाधान—अन्तराय पात्र जीवोका पापका उदयसे आती है किन्तु दातार का दोषसे पात्र जीवोको अन्तराय नही आती है। दातार को तो उसी समयमे भी पुण्य का बन्ध पडता है, क्योकि, दातारका तो आहार दान देनेका ही भाव था। दातारका पुण्यका ही उदय है नहितर पात्र जीव उसके घर कैसे आते ?

प्रश्न—मध्यम पात्र अपना चोकेमें पधारे हुए है, उसीको तुरत आहार न देकर दुसरेके चोकेमें मुनि महाराज आहार लेते है उसीको पहेले अपनी चोकेकी सामग्रीं देनेसे विशेष पुण्य बन्ध होता है या नाही ?

उत्तर—इस प्रकारका व्यवहार उचित नही है। अपने चोकेमें पधारे हुए मध्यम पात्रका अनादर कर मुनि महाराजको प्रथम आहार दानमे मेरी सामग्री दउ तो मुजको विशेप पुण्य बन्ध होगा यही मान्यता मिथ्याव गर्भित है, क्योंकि, पुण्य बन्धका कारण आहार सामग्री नही है. परन्तु मंद कपायरूप भक्ति का भाव है। घरपर पधारे हुए पात्र जीवोको भक्तिसे आहार दान देना. परन्तु इसीका

अनादर नही करना यही उतम पुण्य बन्धका कारण है।

शंका—तत्वार्थ शुत्रमें लिखा है कि. ' **विधि द्रव्य दातृ पात्र विशेषात्तद्विशेषः** । ३९–७ । अर्थात उतम पात्रकु दान देनेसे उतकृष्ट पुण्य बन्ध पडेगा। मध्यम पात्र कु दान देनेसे मध्यम पुण्य बन्ध पडेगा तथा जघन्य पात्रको दान देनेसे जघन्य पुण्य बन्ध पडेगा। यह क्यो कहा।

समाधान—शूत्रका परमार्थ अर्थ आपके समजनेमें नही आया इदर उतकृष्ट मध्यम और जघन्य पात्र का भेद लेनेका नही परन्तु पात्र कुपात्रादिकका भेद से पुण्य बन्धमें भी भेद पडता है यह शूत्रका परमार्थ अर्थ है।

शंका—पात्र कुपात्रादिकमे कैसे पुण्य बन्धमें भेद पडता है, और पात्र कुपात्रका क्या स्वरुप है?

समाधान—जिसको देव गुरु और व्यवहार धर्म की श्रद्धा है वही पात्र जीव हे। जो क्षुधा तृषा रोगादि अठारह दोषो रहित वीतराग सर्वज्ञ है वही देव है। जो नग्न दिगम्बर मुंद्राधारी चौदाह अभ्यंन्तर त्था दश बाहय परिग्रह रहित है वही गुरु निर्ग्रंथ है। और दया मयी धर्म है असी जीस जीवोकी श्रद्धा है अैसा पात्र जीवोको दान देनेसे उनका फलमे भोग भूमि एवं उत्तम स्वर्गका सुखकी साथ परंम्परा मोक्ष मिलता है।

जिस जीवोको देवकी श्रद्धामे विपरितता हे अर्थात सर्वज्ञ वीतराग देव तो मानते हे परन्तु **इसीको १८ अठारह दोषो**

सहित मानते है वही तो देवमे विपरितता हुइ। गुरु निर्ग्रंथ मानते है परन्तु गुरु वस्त्र पातरादि रखता है अर्थात परिग्रहधारीको गुरु मानते हे यह गुरुके स्वरुपमे विपरितता हुइ। तथा धर्मका स्वरुप यथार्थ मानते हे अैसा जीवो कुपात्र है। अैसा कुपात्रोकु पात्र मानकर जो दान देते हे उसीको उसीका फलमें भोग भूमि, त्था सुदेव का पद मिल्ता है परन्तु परम्परा मोक्ष नही मिल्ती है यह फलमें विपरितता है।

जिस जीवोको देवकी श्रद्धामे विंपरितता हैं अर्थात देव शस्त्रादि एवं स्त्री आदि रखता है। यह देवके स्वरुपमे विपरितता। जिसको गुरुके स्वरुपमे विपरितता है, अर्थात गुरु मृगचर्म आदि रखता है, गुरु पंचधुनी तपता है, यह गुरु के स्वरुपमे विपरितता। जिसको धर्म के स्वरुमें विपरितता है, अर्थात देवोकु पशुका बलीदान देनेसे धर्म होता है, यज्ञमे पशु; नर, आदिका बली देना धर्म है., गगास्नान करनेमे धर्म है, पतिका वियोगमे सती होना धर्म है, पहाडसे कुद कर मरना धर्म हें, इत्यादि मान्यता वह धर्ममे विपरितता है। अैसी मान्यता वालेजीवोको अपात्र कहा जाता है। अैसा अपात्र जीवोमें पात्र बुद्धि मानकर दान देनेसे इसीका फलमे कुभोगभूमि तथा कुदेवादिक मिल्ता है परन्तु सुदेव और परम्परा मोक्ष मिल्ती नही है यह फलमे विपरितता है।

इसी प्रकार पात्र कुपात्र और अपात्रका स्वरुप है।—

कुपात्र और अपात्र जीवोकु पात्र मानकर दान देनेमे मिथ्या-

स्वका पोषण होजाता है। परन्तु कुपात्र और अपात्र जीवोकुं करुणा भावसे दान देना निषेध नही है। करुणा भावतो प्राणी मात्र पर करना चाहिये। यह बात खास लक्षमे रखनेकी है।

तीर्थयात्रा—

यात्रा प्रधानपने तीन उदेशसे की जाती है। १ गूरुदर्शन २ आकुलताका त्याग करना। ३ लोभ का त्याग करना।

गुरुदर्शन—दिगम्बर जैन मुनिओ जंगलमेही वसते है। ग्रामोंमे शहेरोमें, नगरीयोमे मुनि महाराजोका रहेना धर्म नही हैं, क्योंकि, शहेरोमें तो गृहस्थ परिग्रहधारी रहते है। जिसने परिग्रहका त्याग किया हैं असा जीवोको, परिग्रहधारीकी संगति भी उचित नही। दोनोकी दशा परस्पर विरोधी हैं। गृहस्थोका धर्म भक्ति करना है. भक्ति राग है जब मुनि महाराजो रागसे उदाशीन है वह रागमे कैसे फसे? **यह कारणसे मुनि महाराजो नियमसे जंगलोमेही रहते है।** दिगम्बर जैन मुनिओ पहाड जंगलोमेही रहते हे जिस कारणसे जैन लोगोका तीर्थ क्षेत्र विशेषकर पहाड त्था जंगलोमेही है। वेदान्त मान्यताके धर्मगुरु विशेषकर नदी के तट पर ही रहते थे जिस कारणसे नदी स्नानका महिमा दिखाया है। जगलोमें त्था पहाडपर जानेकी एव नदीमे स्नान करनेकी महिमा नही है परन्तु वहां यदी यथार्थ गुरुका दर्शन हो जावे तो कल्याणका मार्ग वही निग्रही गुरु दिखा शकता हे यही उदेससे यथार्थमे तीर्थक्षेत्र की उत्पति हुइ

है, परन्तु जीवोका इस तरफ लक्ष नही है और मात्र पहाडको पुज्य मानने लगे। पहाड पुज्य नही है वह तो एकेन्द्रिय जीव पृथ्वी कायिक है वह पुज्य कैसे बन शकता है। शिखरजी पुज्य नही है परन्तु शीखरजी उपरसे जो मुनि महाराजो सिद्ध दशाको प्राप्त हुआ उस मुनि महाराजके गुणोकी महिमा है। जिस पहाड पर मुनि महाराजो वसते वह आवासकी अर्थात पहाडकी महीमा नहि है परन्तु मुनि महाराजकी महिमा है। मुनि महाराजका गुणोकी महिमा है। मुनि महाराजके गुणोकी महिमा आती नही है, परन्तु पहाड शिखरजी की महिमा आती है ? शिखरजीका कंकर २ पूज्य है शिखरजीका कंकर पुज्य नही है। अमुक लोग शिखरजी आदि पहाडो को इतना पुज्य मानते है कि वहा लघु शंका आदि करनेमें पाप समजते है। परन्तु विचार नही करता है कि जिस पहाड पर हजारो मुनि महाराज वसता है वह मुनि महाराजो लघु शंका दिर्घ शंका आदिके लिये कहां जाते होगे ? यदि लघु शंकाके लिये मुनि महाराजो पहाडसे नीचे आते होगे तो सारा दिन मुनिका लघुशंकामे ही गया ? वह स्वाध्याय और ध्यान कब करते होगे ? वही पहाड पर हजारो जंगली जानवर भी रहते होंगे वह सब लघुशंका और दिर्घशंका कहा करते होगे ? यदि वहा ही लघुशंका करनेमे पाप लगता होगा तो पहाड के सभी जानवरो नियमसे मरकर नरकमे ही जाते होगे ? परन्तु ऐसी बात नही, लघुशंका या दीर्घशंका होना आत्मा का हाथकी

बात नही, यह तो कर्म जन्य अवस्था है । आप इच्छा करो तो भी लघुशंका या दीर्घशंका न होवे । और इच्छा न हो और प्रकृति विपरित हो तो एक घंटेमें ५० पचास टट्टी हो जावे । क्या यह सब क्रिया आत्मा के हाथकी है ? यह कर्म जन्य क्रियाको आत्माकी क्रिया मानना मिथ्यात्व है ? भाव सुधारना या बिगाडना यह आत्मा के हाथकी बात है । वही शिखरजी पर आप भाव बिगाडो तो नियमसे पापका ही बन्ध पडेगा । और भाव शुधारनेसे पुण्य का बंध पडेगा । शिखरजी क्या करे । सारा ठाठ भाव पर है । शिखरजी की यात्रा वहां के डोलीवाला रोजंदा करते हैं, तो क्या उसीको पुण्य बन्ध पडेगा ? यही मूर्खाही से तो हमने शिखरजीका पहाड गुमाया ? प्रीवी काउन्सील में शिखरजीका मामला चला था जिसके फेशलेमें जज साहेबने लिखा है, कि जो मनुष्य शिखरजी पहाड पर लघु शंका करनेमें पाप समजते है वही मनुष्य वही पहाडकी रक्षा कैसे कर शकता हे ? इसी न्यायसे तो वह पहाड श्वेताम्बर भाइयोको दिया गया । शिखरजी पहाड पर रहना, एवं पहाडपर लघुशंका, दीर्घशंका जाना पाप नही है, पाप तो खराब भाव करनेसे ही लगेगा । इस लिये जो मिथ्या मान्यता रखी है कि शिखरजी पहाड पुज्य है वही मान्यत्ता निकालदेनी चाहिये ।

आकूलता का त्याग करनां—गृहस्थाश्रम आकुलता नहि है । वेपार की आकुलता महादुःखदाय है । यही

आकुलता से वचने के लक्षसे यात्रा करनेका भाव होता है। घर छोडते है, ग्राम छोडते हैं, और जंगलोमे, पहाडोमें जातें हें, परन्तु आकुलता छोडने का लक्ष भूल जाता है। वडे धनी लोग तीर्थक्षेत्रमे जावेगा तो भी **मुनिम आदि को आदेश देकर जाता है कि रोजंदा वेपारका समाचार हमको पोस्ट, तार द्वारा मिलना चाहिये।** जिसको छोडना था वह तो छुटी नही मात्र क्षेत्र छुटा। इससे क्या लाभ? **एक दिन पत्र और तार न आया तो आकुलताका पार नही सारा दिन चिन्ता मे ही जावेगा कि क्यों तार, पत्र न आया।**

पहाड चढनेमे भी आकुलता। जबसे पहाड चढना शरु किया तबसे **आकुलता कि, जट चलो, जट चलो, देरी हो जावेगी। लघु शंकाकी बांधा हो जावेगी। यह सब क्या है। जो आकुलताको छोडना था वह तो साथोसाथ चल रही है। शान्तिकी गन्ध आवे कहासे?** लघु शकाकी बाधा न हो जावें, जिसकी इतनी चिन्ता है, कि पूरा श्लोक भी न वोले, शान्तिसे अर्घ भी न चढावे, और इसकी अवजीमे तुरन्त चलो देरी होती हे, यह सब क्या है। अपने लक्ष से भूला हुवा जीव तीर्थ यात्रामें भी शान्तिका अनुभव नही कर शकता है। लघुशंकाकी वाधा होनेवाली होगी तो नियमसे होगी इसकी इतनी चिन्ता करनेमे क्या

लाभ। शान्तिसे पाठ बोलो, अर्घ आदि चढावो, एकाद घन्टा देरी हो जावे तो क्या हानी हैं। कोनसा वेपार चला जाता है, परन्तु शान्ति रखनेका भाव नही होता हैं। अैसी जात्रामें शान्ति कहासे मिलेगी। शान्ति चाहते है तों आकुलता छोडनेकी चिन्ता रखो। मेरेमे आकुलता न हो जावे। एक पुजा करो, परन्तु शान्तिसे करो। पीछु देखो की शान्ति आती हैं या नही। शान्ति का मार्ग छोडकर आकुलताका मार्ग लेना शान्तीका बाधक ही हैं। पहाड पर रात रहने पडे तो रहो परन्तु आकरुता मति करो। यही आकुलता छोडनेका मार्ग है।

लोभका त्याग— दोसौ, पांचसौ रुपीआका लोभ छोडा विना यात्रा कैसे होगी ? जितना लोभ छुटा इतनाही शान्ति का मार्ग है। **लोभ छोडना वही धर्म है, वही शान्ति है।** लोभ छोडनेसे शान्ति मिलेगी इस तरफ लक्ष नही रहता, अरे वहुत खर्च हो जाता है, बहोत खर्च हो जाता है, इसकी चिन्ता करते है। यह कहाका न्याय हैं। यदी लोभ नही छुटा था तो यात्रा क्यों करनेको निकले ? जितना लोभ छुटा है इतनीही यात्रा शान्तिसे करो, परन्तु विशेष खर्च होता हैं, इसकी चिन्ता छोडना शान्तिका मार्ग है। शक्ति हुवे तो सभी तीर्थ क्षेत्रकी यात्रा करों, और शक्ति न होवे तो एक ही तीर्थक्षेत्र पर जाकर जितना लोभ छुटा हे इतना रह कर शान्तिका अनुभव करो। चिन्तामें सुख नही चिन्ता करनेमे धन मिल नही जावेंगा।

शुभ कार्यमे निकलते शते चिन्ता क्यों करते हो। जितनी शक्ति है इतना खर्च करो और जहांतक बने तहां तक शान्ति मिलनेकी चेष्टा करना चाहिये, यही तीर्थयात्राका फल है। तीर्थयात्रा की, और शान्ति न रही तो तीर्थयात्रा से क्या फल निकला। धनका खर्च करो और शान्ति न मिली तो धन खर्चनेसे क्या लाभ। जो काम करो परन्तु अपना लक्ष चुको नही, तो आपकी तीर्थयात्रा सुख रुप ही मालुम होगी, यदि लक्ष चुकजावोंगे तो वही तीर्थयात्रा दुखरुप मालुम होगी। इससे यह फलित हुवा कि जो कार्य करो उसमे अपना लक्ष नही चुकना यही उतम मार्ग है।—

निर्माल्य वस्तु

अरहन्त आदिकी भक्ति अष्ट द्रव्योसे जो की जाती है. इसमें प्रधान लोभ छोडनेका ही है। जितना द्रव्य आप पुजामें लगावोंगे इतनाही आपका लोभ छुटा। लोभ का त्याग विना द्रव्य कैसे लावोगे? लोभ छोडनेका हेतुसे ही खाली हाथ से मंदिरादि शुभ स्थानोमें नही जानेका रिवाज रखा गया है। जिस वस्तु परसे आपने लोभ छोड दिया, वह वस्तु आपके लिये निर्माल्य हो गयी। यदि उस वस्तु पर आपकी मालिकी रही अर्थात उस वस्तु अपना स्वार्थ के काममे ले तो उस वस्तु पर से आपका लोभ कहां छुटा? जिस पदार्थ पर से आपका लोभ

छुट गया वही पदार्थ तो आपका वमन है, अर्थात त्यागकी वस्तु है असा त्यागकी वस्तु अर्थात असा वमन मे से काम निकालनेका अथवा स्वार्थ साधनेका भाव तो वमन खाने बरोबर है अर्थात निर्माल्य खाना बरोबर है। वही सामग्री मे से माली-सेवक की पांससे काम लेना वह कहां का न्याय है? वही सामग्री परसे आपका लोभ हट जानेसे अब आप उसके मालीक नही हो। वह सामग्री यथार्थमे, बीना स्वार्थसे गरीब लोकोकु बाट देना चाहिये अथवा मच्छलियां आदिको खिला देना चाहिये। यह मार्ग ग्रहण न कर उस सामग्री माली-सेवक का तनखा-पगार मे देकर उसीकी पांससे मंदिरादिकका काम लेना वहां आपका लोभ कहां छुटा? माली-सेवक को चाकरिमे रखती वख्त आप शर्त करते हो कि तनखा पगार नही दिया जावेगा, परन्तु मात्र पुजामे चढी हुई सामग्री तुमारी महेनत की अवजीमे, बदलेमे दिया जायगा। यह तो आपकी चिज नही हैं, क्योंकि, उस परसे आपका लोभ छुट गया है। अपना वमन दुसरेको खिलाना वह कहां का न्याय है। मालीक- सेवक तो महेनत कर वह द्रव्य खाता है, तो भी आप उसको निर्माल्य वस्तु का खानार कह कर, उसीको हिनद्रष्टिसे देखते हो, उसीका अपमान करते हो, उसीका हाथका पानी छुनेमे पाप समजते हो, उसीको जैन शास्त्र छुनेका अधिकार नही. इतनातो नही परन्तु

शास्त्रकी गद्दीको छुनेका अधिकार नही आदि दोषो लगाना वह कहांका न्याय है ? यथार्थ मे माली–सेवक निर्माल्य वस्तु नही खाता है. वह तो अपना पशीना बहलाकर खाता है, अपनी महेनत कर खाता है। वह निर्माल्यका खानेवाला पापी है कि आप निर्माल्य वस्तु खिलानेवाले पापी हो ? जरा शान्त चित्तसे सोचिये ? जैसे एक सती स्त्री है उसीका उपर तद्दन मिथ्या आरोप डाल कर उसीका सतीत्वपर बट्टा लगानेकी चेष्टामे जितना दोष है, पाप है इतनाही दोष पाप माली–सेवक निर्माल्य वस्तु खाता है, उसीको छुनेमे पाप इत्यादि कहनेमे है. क्योंकि, माली–सेवक निर्माल्य वस्तु खाता नही है, वह तो हक की खाता है, वह पापी नही है परन्तु निर्माल्य जानकर खिलानेकी अनुमोदना करनार आप ही पापी हो। जिसको आप झेर समजते हो उसीको आप दुसरेको क्यो खिलाते हो ? माली–सेवक को पुरा तनखा पगार दो, और बाद मे माली वह वस्तु खावे तो माली नियमसे पापी है। तनखा–पगार देना नही और इसकी अवजीमे जो वस्तु आपके लिये निर्माल्य है, जिसका आपने लोभ छोड दिया है वही वस्तु माली सेवकको देकर काम लेना. और उपरसे कहना कि माली सेवक निर्माल्य खाने वाला है. यह तो बहोत ही अन्याय है, आपको पुजा करनेमे शान्ति कहांसे मिलेगी ? उत्तम [illegible] है कि माली सेवकको पुरा तनखा पगार देकर मंदिर मे

रखना चाहिये, और निर्माल्य वस्तु गरीब लोकोकु बिना स्वार्थ से बाट देना चाहिये ? इतनाही नही परन्तु माली सेवकको भी जैन बनाना चाहिये ? मालीयोकु जैन बनवाना ते दुर रहो परन्तु उसीको जिनशास्त्रको एवं जिन शास्त्रकी गद्दी को छुनेका अधिकार नही वह कहना ते नियमसे अन्याय एवं मिथ्यात्वका ही पोषण है ।

इति '**भेदज्ञान**' शास्त्र मध्ये गुरु भक्ति आदि अधिकार संपूर्ण हुआ ।

द्रव्यकर्म का स्वरुप

प्रश्न—पोद्गलिक द्रव्य कर्म कितने प्रकार का है. तथा उसीका उतर भेद क्या है ?

उत्तर—पोद्गलिक द्रव्यकर्म आठ प्रकारका हैं । १ ज्ञानावरण २ दर्शनावरण ३ वेदनीय ४ मोहनीय ५ आयु ६ नाम ७ गौत्र ८ अन्तराय ।

ज्ञानावरणकर्म—ज्ञानावरणकर्मका फल ज्ञानका विकासको रोकना है । ज्ञानावरण कर्मका उतर भेद ५ पांच है ? १ मतिज्ञानावरण २ श्रुतज्ञानावरण ३ अवधिज्ञानावरण ४ मनःपर्ययज्ञानावरण ५ केवलज्ञानावरण ।

दर्शनावरणकर्म—दर्शनज्ञानावरण कर्मका फल दर्शनचेतना का विकास नही होने देना वह है । उसकी पेटा प्रकृति नौ है ।

१ चक्षुदर्शन २ अचक्षुदर्शन ३ अवधिदर्शन ४ केवलदर्शन ५ निद्रा ६ निद्रानिद्रा ७ प्रचला ८ प्रचलाप्रचला ९ स्त्यान गृद्धि इसी प्रकार चार तो दर्शनचेतना के रोकनेवाली हैं और पाच प्रकार की निद्रा जो दर्शनचेतना प्रगट हुई है, उसिको रोकने वाली है ।

शंका—पाच निद्रा नामकी प्रकृतियो को प्रथमकर्म ज्ञानावरणमे नही गीनता दर्शनावरणकर्ममे क्यो गीनी जाती हैं ?

समाधान—ज्ञान दर्शन पूर्वक ही होता है, इसी कारण जो दर्शन चेतनामें बाधा डालेगी वही ज्ञानमे तो बाधा डालेगी ही इसी कारण उन प्रकृतियोको दर्शनावरण कर्ममे गीनी जाती है। यदि वह प्रकृतियोको ज्ञानावरण कर्ममे सामिल कि जाती तो वह निद्रा नाम की प्रकृति मात्र ज्ञानको ही रोकती परन्तु दर्शनचेतना को वह रोक नही शकती । निद्रामे न तो दर्शन-चेतना काम करती हें न तो ज्ञान चेतना काम करती है । दोनो चेतनाए लब्धि रुप रहती है । इसी कारण निद्रा नामकी प्रकृतियो दर्शनावरण कर्ममे ही गीनी जाती हे । वह सर्वघाती प्रकृति हैं ।

वेदनियकर्म—वेदनीय कर्मका फल बाह्य सामग्री का संयोग वियोग करना और यदि मोह हो तो उस सामग्रीमे सुख दुःखका वेदन कराना यही वेदनीय का कार्य हैं । वेदनीय की पेटा प्रकृति दो हे । १ साता वेदनीय, २ असाता वेदनीय ।

शंका—बाह्य सामग्री लाभान्तराय कर्म के क्षयेोपशमसे मिलती है अैसा कोई २ आचार्यका ।अभिप्राय है, तब मात्र वेदनीय कर्मसे बाह्य सामग्री मिलती है वह बातमें विरोध आता है ?

समाधान— अन्तराय कर्म धाती कर्म है उसके सद्-भावमें आत्माकी वीर्यशक्ति का नाश होता है, और अन्तराय कर्मके अभावमे वीर्यशक्ति प्राप्त होती है यह अन्तरायका फल है। अन्तरायकर्मके क्षयोपशमसे बाह्य सामग्री मिलती है वह मान्यता गलत है। अन्तरायकर्म पाप प्रकृति है, और पाप प्रकृति से बाह्य सामग्रीका मिलना मानना भी भूल है इसलिये यही श्रद्धा रखनीके, बाह्य सामग्रीका संयोग वियोग होना वेदनीय कर्मका फल है। बाह्य सामग्री कर्मके उदयमें ही मिलती हैं, परन्तु कर्म के क्षयोपशममें ही नही मीलती है।

मोहनीयकर्म— मोहनीयकर्मके दो भेद है। १ दर्शन मोहनीय २ चारित्र मोहनीय। दर्शनमोहनीयका कार्य तत्वार्थका सत्य-श्रद्धान होनेमे विघ्न डाले. २ चारित्रमोहनीय वीतराग भाव होनेमें विघ्न डाले।

दर्शनमोहनीयकी उत्तर प्रकृति ३ तीन है। १ मिथ्यात्व २ सम्यकमिथ्यात्व ३ सम्यकत्व प्रकृति।

चारित्र मोहनीयके दो भेद है। १ कषाय वेदनीय २ नोकषायवेदनीय।

कषाय वेदनीयकी १६ प्रकृति—अनंन्तानुबंधी ४

अप्रत्याख्यान ४ प्रत्याखान ४ संज्वलन ४ क्रोध, मान माया लोभ इसी तरह १६ कषायवेदनीयकी हैं। नोकषायवेदनीयकी नौ प्रकृति है। १ हास्य २ रति ३ अरति ४ शोक ५ भय ५ जुगुप्सा ७ पुरुषवेद ८ स्त्रीवेद ९ नपु सक वेद। इन्हे नोकषाय अर्थात ईषत्कषाय कहेते है।

तीव्र और मंद कषायकी अपेक्षासे अनंतानुबंधी आदि प्रकृतिका भेद नहि है परन्तु संयम भाव घातनेकी अपेक्षा भेद है। अनंतानुबंधीके उदयमें स्वरुपाचरण चारित्रकी प्राप्ति नहि होती हैं। अप्रत्याख्यान कषायके उदयमें देश संयम भी लेनेका भाव नहि होता है। प्रत्याख्यानकषायके उदयमे सकल संयम लेनेका भाव नहि होता। संज्वलन कषायके उदयमे संपूर्ण वीतराग भागकी प्राप्ति नहि होती हैं।

स्त्री पुरुष और दोनोकी साथ रमण करनेका भावका नाम भाव वेद हैं और मोहनीयकर्मकी पोद्‌गलीक कर्म प्रकृतिका नाम द्रव्य वेद है, परन्तु शरीर रुपी ढाचाको द्रव्य वेद मानना भूल है, क्योंकि वह तो अंगोपांगनामा नामकर्मका फल है।

आयुकर्म—आयुकर्मका फल चतुर्गतियोमे रोक रखना है। उसकी उतर प्रकृति चार हैं। १ देवायु २ मनुष्यायु ३ तिर्यंचायु ४ नरकायु.

नामकर्म—नामकर्मका फल नरकादि नाम करावे। नामकर्मका उतर भेद ४२ हैं।

१ गति ४ तिर्यंचगति, नरकगति, देवगति, मनुष्यगति ।

२ जाति ५ एकेन्द्रियजाति, दोइन्द्रियजाति, तेइन्द्रियजाति, चतुरइन्द्रियजाति, पंचेन्द्रियजाति ।

३ शरीर ५ औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तेजस, और कर्माण शरीर ।

४ अंगोपांग ३ औदारिक, वैक्रियक, और आहारक अंगोपांग ।

शंका— अंगोपांग किसको कहते है ?

समाधान— अंगोपांग निम्न प्रकार है । कहा है कि,

णलया बाहूअ तहा णियंब पुट्ठी उरो य सीसं च ।
अट्ठेव दु अंगाई देहण्णाइं उवंगाइं ॥ १० ॥

अर्थ—शरीरमें दो पेर, दो हाथ, नितम्ब (कमरके पीछे के भाग), पीठ, हृदय और मस्तक ये आठ अंग होते है । इनके सिवाय अन्य (नाक, कान—आंख) उपांग हैं ।
(ध. ६—५४)

५ निर्माण—२ नेत्रादि १ यथास्थान, २ यथा प्रमाण बनाने वाला कर्म ।

शंका—निर्माण नाम कर्म किसे कहते है ?

समाधान—नियत मानको निर्माण कहते है । वह दो प्रकारका है—

प्रमाण निर्माण—और संस्थान निर्माण ।

जिस कर्मके उदयसे जीवोंके दोनोंही प्रकारके निर्माण होते

है। उस कर्मकी निर्माण यह संज्ञा है। यदि प्रमाण निर्माण नामकर्म न हो, तो जंघा—बाहु शिर नासिका आदिका विस्तार और आयाम लोकके अन्ततक फलेनेवाला होजावेगा। किन्तु अैसा है नहि, क्योंकि उस प्रकारसे पाया नही जाता। इसलिये कालको और जातिको आश्रय करके जीवोके प्रमाणको निर्माण करनेवाला प्रमाणनिर्माण नाम कर्म है। यही संस्थान निर्माण नाम कर्म न हो, तो अंग, उपांग और प्रत्यंग शंकर और व्यतिकर स्वरुप होजावेंगा। किन्तु अैसा है नाहि। क्योंकि, अैसा पाया नहि जाता। इसलिये कान, आंख, नाक आदि अंगोका अपनी जातिके अनुरुप अपने अपने स्थानपर जो नियामक कर्म है वह संस्थान नाम कर्म कहलाता है। (ध. ६—६६)

६ बंधन—५ औदारिक, वैक्रियिक, आहार, तेजस, कार्माण बंधन।

७ संघात—५ औदारिक, वैक्रियिक, आहार, तेजस, और कार्माण संघात।

८ संस्थान—६ समचतुरस्र, न्यग्रोधपरिमंडल, स्वातिक, कुब्जक, वामन, हुंडक संस्थान।

संहनन-६ वज्रवृषभनाराच, वज्रनाराच, नाराच, अर्धनाराच, कीलक और असंप्राप्तासृपाटिका संहनन।

१० स्पर्श—८ कर्कस, मृदु, गुरु, लघु, स्निग्ध, रुक्ष, शीत उष्ण।

११ रस–५ तिक्त, कडुआ, खट्टा, मीठा, कषायला ।

१२ गंध–२ सुगंध, दुर्गंध ।

१३ वर्ण–५ काला, नीला, लाल, पीला, स्वेत ।

१४ आनुपूर्वी–४ नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यंच्चगत्यानुपूर्वी, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, देवगत्यानुपूर्वी ।

शंका— संस्थान नाम कर्मसे आकार विशेष उत्पन्न होता है, इसलिये आनुपूर्वीकी परिकल्पना निरर्थक है ।

समाधान— नही, क्योंकि, शरीर ग्रहण करनेसे प्रथम समयसे उपर उथयमें आने वाले उस संस्थान नाम कर्मका विग्रहगतिके कालमें उदयका अभाव पाया जाता है । (ध. ६. ५६)

शंका— पूर्व शरीरकोही छोडकर दुसरे शरीरको नही ग्रहण करके स्थित जीवका इच्छित गति मे गमन किस कर्मसे होत्ता हैं ?

समाधान— आनुपूर्वी नामकर्मसे इच्छित गतिमे गमन होता हे ।

शंका— विहायोगति नामकर्म से इच्छित गतिमे क्यो गमन नहि हाता ?

समाधान-- नही, क्योंकि, विहायोगति नामकर्मका औदारीकादि तीनो शरीरोंके उदयके विना उदय नही होता है ।

शंका— आकार विशेपको वनाये रखनेमे व्यापारकरनेवाली आनुपूर्वी इच्छित्न गतिमें गमनका कारण कैसे होती है ।

समाधान— नही, क्योंकि, आनुपूर्वीका दोनोभी कार्योके व्यापारमे विरोधका अभाव है। अर्थात विग्रहगतिमे आकार विशेषको बनाये रखना और इच्छित गतिमे गमन करना ये दोनो ही आनुपूर्वी नाम कर्मके कार्य है। (ध. ६. ५६)

१५ अगुरूलघु— जिसके उदयसे शरीर हल्का भारी न हो।

१६ उपघात— जिसका उदयसे स्वयंका घात हों।

१७ परघात— जिसके उदयसे जीवका घात दुसरोके द्वारा हो।

१८ आताप— उष्णता सहित प्रकासको आताप कहते है।

शंका— इसप्रकार आताप शब्दका अर्थ करनेसे तेजसकायिक जीवमेभी आताप कर्मका उदय प्राप्त होता है?

समाधान— नही, क्योंकि, तेजसकायिक नाम कर्मके उदयसे उत्पन्न हुई उस अग्निकी उष्ण प्रभामे सकल प्रभाओकी अविनाभावी उष्णताका अभाव होनेसे उसका आतापके साथ समानताका अभाव है। (ध. ६. ६०)

१८ उद्योतन— जिस कर्मके उदयसे जीवके शरीरमे उद्योत अर्थात चमकार उत्पन्न होता हैं वह उद्योत नामकर्म है। यदि उद्योत नामकर्म न हो तो चन्द्र, नक्षत, तारा, और जुगनु नामके कीडा आदिके शरीरोमे उद्योत (प्रकास) न होवेगा किन्तु अैसा है नहि, क्योंकि अैसा पाया नहि जाता हैं। (ध. ६. ६०)

२० उच्छवास— जिसके उदयसे उच्छ्वास आवे ।

२१ विहायोगति— जिसके उदयसे आकासमे उड शके।

२२ प्रत्येक— जिसके उदयसे एक जीवके भोगनेयोग्य शरीर हो।

२३ साधारण— जिसके उदयसे अनेक जीवोके भोगनेयोग्य शरीर हो।

२४ त्रस— जिसके उदयसे दोइन्द्रियादि शरीर प्राप्त हो।

२५ स्थावर— जिसके उदयसे एकेन्द्रिय शरीर मिले ।

२६ शुभग— स्त्री और पुरुषोके शोभाग्यके उत्पन्न करनेवाला शरीर मिले ।

२७ दुर्भग— स्त्री और पुरुषोके दुर्भाग्यको उत्पन्न करनेवाला शरीर मिले ।

शंका— अव्यक्त चेष्टा वाले एकेन्द्रिय जीवो आदिमे शुभग भाव और दुर्भग भाव कैसे जाने जाते है ?

समाधान—नही, क्योंकि, एकेन्द्रिय आदिमें अव्यक्त रूपसे विद्यमान उन भावोंका अस्तित्व आगमसे सिद्ध है। (ध. ६–६५)

२८–२९ सुस्वर, दुस्वर ३०–३१ शुभ, अशुभ जिस कर्मोके उदयसे अंगोपांग नाम कर्मोदय जनित अंगो और उपांगोके शुभपना (रमणीयत्व) होता है, वह शुभ नाम कर्म है। और अंग और उपांगके अशुभताका उत्पन्न करने वाला अशुभ नाम

कर्म है। (ध ६–६४)

३२ शूक्ष्म ३३ वादर ३४ पर्याप्त ३५ अर्याप्त ३६–३७ स्थिर, अस्थिर जिस कर्मके उदयसे रस रुधिर, मेदा, मज्जा अस्थि, मास, और शुक्र इन सात धातुओंकी स्थिरता अर्थात अविनाश व अगलन हो वह स्थिर नाम कर्म हे। यदि स्थिर नामकर्म न हो तो इन धातुओका स्थिरताके अभावसे गलनाही होगा किंतु अैसा है नाहि। क्योंकि, हानि और वृद्धि के विना इन धातुओंका अवस्थान देखा जाता है। जिस कर्मके उदयसे रस, रुधिर, मास, मेदा, मज्जा, और शुक्र इन धातुओंका परिणमन होता है, वह अस्थिर नाम कर्म है कहा भी है कि– (ध. ६–६३)

रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसांनमेदः प्रवर्तते
मेद सोऽस्थि ततो मज्जा यज्ज्ञ शुक्रं ततः प्रजा।

अर्थ—रससे रक्त बनता है, रक्तसे मास उत्पन्न होता है, माससे मेदा पेदा होता है, मेदासे हडी बनती है, हडीसे मज्जा पैदा होती है, मज्जासे शुक्र उत्पन्न होता है और शुक्रसे प्रजा (संतान) उत्पन्न होती है। (ध. ६–६३)

३८–३९ आदेय, अनादेय जिस कर्मके उदयसे जीवके बहुमान्यता उत्पन्न होती है वह आदेय नाम कर्म है, और उससे अर्थात बहुमान्यतासे विपरितता (अनादरणीयता) को उत्पन्न करनेवाला अनादेय नाम कर्म है। (ध. ६–६५)

४०-४१ यशकीर्ति, अयशकीर्ति ४२ तीर्थंकरत्व।

गोत्रकर्म—जिसकर्मका फलमे उच नीच संज्ञा दिलावे। गौत्रकर्मकी उतर प्रकृति दो है। १ उच्चगौत्र २ नीचगौत्र।

उच गौत्रमे नियमसे मनुष्य तथा देवगति मिलती है। और नीच गौत्र मे नियमसे तिर्यंच तथा नारक गति मिलती हे। मनुष्योमे नीचगौत्र व्यवहारसे कहा जाता है। वहतो कार्यकी अपेक्षासे भेद पडता है। कार्य छोड देनेसे नीचगौत्री उच गौत्री हो जाता है। एवं उचगौत्री नीचगौत्री हो जाता है। वह तो परिवर्तन शील गौत्र है।

अन्तराय कर्म—वीर्य शक्तिको रोके उसीका नाम अन्तराय कर्म है। अन्तरायकर्मकी उतर पांच प्रकृति है। १ दानात्यराय २ लाभान्तराय ३ भोगान्तराय ४ उपभोगान्तराय ५ वीयान्तराय।

दानान्तराय— दान देनेमे वीर्य शक्तिका अभाव।

लाभान्तराय— वेपार (व्यवसाय) करनेमे वीर्य शक्तिका अभाव।

भोगान्तराय— भोग करनेमे वीर्य शक्तिका अभाव।

उपभोगान्तराय— वडीआ कपडा—गहना (जवेरात) भोग करनेमे वीर्य शक्तिका अभाव।

वीयान्तराय— त्याग ग्रहण करनेमे वीर्य शक्तिका अभाव।

शंका—उदय और उदीरणामें क्या भेद है?

समाधान—जो कर्म स्कंध, अपकर्षण, उत्कर्षण आदि

प्रयोगोंके विना स्थिति क्षयको प्राप्त होकर अपना अपना फल देते है उन कर्म स्कंधोकी " उदय " यह संज्ञा है। जो महान स्थिति और अनुभागोंमें अवस्थित कर्म स्कंध अपकर्षण करके फल देनेवाले किये जाते हैं, उन कर्म स्कंधोको " उदीरणा " यह संज्ञा है, क्योंकि अपक्व कर्म स्कंधके पाचन करनेको उदीरणा कहा गया हैं।। (ध. ६-२१३)

शंका—उपशम, निघत, और निकाचितमे क्या अंतर हैं ?

समाधान—जो कर्म उदयमें न दिया जा शके वह उपशान्त, जो संक्रमण और उदयमें दोनोमेंही न दिया जा शके वह निधत्त, और जो उतकर्षण, सक्रमण, व उदय, अपकर्षण यह चारोंमें ही न दिया जा शके यह निकाचित करण है। कहा भी है कि-(ध. ६-२९५)

उदए संकम उदए चदुसु विदादु कमेण णो सक्क।
उवसतं च निधत्तं णिकाचिद चावि जं कम्म ॥१८॥

शंका—घाती और देशघाती किसे कहते हैं ?

समाधान—कर्म दो प्रकारके हैं, घातिया कर्म और अघातिया कर्म। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय यह चार घातिया कर्म है, तथा वेदनी, नाम, गौत्र, आयु ये चार अघातिया कर्म है।

शंका—ज्ञानावरण आदिको घातिया कर्म क्यों नाम दिया ?

समाधान—क्योंकि, केवल ज्ञान, केवल दर्शन, सम्य-

क्त्व, चारित्र और वीर्य अर्थात आत्माकी शक्ति रूप जो अनेक भेदोंमें भिन्न जीव गुण है उनके उक्त कर्म विरोधी अर्थात घातक होते है, और इसलिये वह घातिया कर्म कहलाता है। (ध. ७-६२)

शंका—जीवके सुखको नष्ट करके दुःख उत्पन्न करनेवाला असातावेदनीय कर्मको घातिया कर्म नाम क्यों नही दीया ?

समाधान—नही दिया, क्योंकि, वह घातिया कर्मका सहायक मात्र ही है, और घातिया कर्मोंके विना अपना कार्य करनेमें असमर्थ तथा उसमें प्रवृत्ति रहित हैं, इसी बातको बतलानेके लिये असातावेदनीयको घातिया कर्म नही कहा। (ध. ७-६३)

प्रश्न—पहेले किस कर्म प्रकृतियोंका उदय विच्छेद होता है बाद में बंध विच्छेद होता है ?

उत्तर—देवायु देवचतुष्क, अर्थात देवगति, वैक्रियक शरीर, वैक्रियक अंगोपांग, देवगत्यानुपूर्वी, आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग और अयशकीर्ती इन आठ प्रकृतियोंका विच्छेद होता है, पश्चात बंध का विच्छेद होता हैं। कहा भी है कि (ध. ८-११)

देवाउ देवचउक्काहारदुअं च अजसमटठण्हं।
पढम मुदओ विणस्सदि पच्छा बंधो मुणयेव्वो॥

प्रश्न—बंध उदय दोनोंकी साथ विच्छेद होनेवाली कर्म प्रकृति कौनसी है ?

उत्तर—मिथ्यात्व, चारअनन्तानुबंधी, चार अप्रत्याख्यानावरणीय चार प्रत्याख्यानावरणीय, तीन संज्वलन, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय जुगुप्सा. एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरन्द्रिय जाति, मनुष्यगति प्रायोग्यानुपूर्वी, आताप. स्थावर, शुक्ष्म, अपर्याप्ति, और साधारण इन ३१ एकतीस प्रकृतियोंका बन्ध व उदय दोनोंही साथ व्युच्छिन होता है। (ध. ८–१२)

प्रश्न—पहेले बंध बादमें उदय विच्छेद होनेवाली कर्म प्रकृति कोनसी है?

उत्तर—पाच ज्ञानावरणीय, नौदर्शनावरणीय, दो वेदनीय, संज्वलन लोभ, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरति, शोक, नारकायु, तिर्यगायु मनुष्यायु नर्कगति, तिर्यगगति, पंचेन्द्रिय जाति, औदारिक, तेजस कर्माण शरीर छहसंस्थान, औदारिक अंगोपांग, छहसंहनन, वर्णादिचार नारकगत्यानुपुर्वी, तिर्थगगत्यानुपूर्वी. अगुरुलघुकादिचार, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ शुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुस्वर. आदेय. अनादेय, यशकीर्ति. निर्माण तीर्थंकर, नीचगौत्र, उच्चगौत्र, और पाच अंतराय इन ८१ इकासी प्रकृतियोका पहेले बंध नष्ट होता है बादमें उदय नष्ट होता है (ध. ८-१२)

प्रश्न—परोदयमें बंधनेवाली प्रकृतियोका क्या नाम है।

उत्तर—तीर्थंकर, नारकायु. देवायु, नारकगति, देवगति, वैक्रियक शरीर, वैक्रियक अंगोपांग, नारकगत्यानुपूर्वी, देवगत्यानुपूर्वी, आहारक शरीर

हारकअंगोपांग इन ११ ग्यारह प्रकृतियोंका बंध परोदयसे
ता है। (ध. ८-१४)

प्रश्न—स्वोदयसे बंध होनेवाली कोनसी कर्म प्रकृतियां है।

उत्तर—पांचज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, मिथ्यात्व, तैंजस और कर्माणशरीर, वर्णादिकचार, अगुरुकलघुक, स्थिर अस्थिर, शुभा शुभ निर्माण, पांचअंतराय ये २७ सत्ताईस प्रकृतियां स्वोदयसे बंधती है। (ध. ८-१४)

प्रश्न—स्वोदय परोदयसे बंधनवाली कोनसी कर्म प्रकृतिया है?

उत्तर—पांच दर्शनावरणीय, दोवेदनीय, सोल्हकषाय, नौनोकषाय तिर्यगायु मनुष्यायु, तिर्यगगति मनुष्यगति, एकेन्द्रिय दोन्द्रिय, तीन्द्रिय चतुरन्द्रिय. पंचन्द्रियजाति औदारिक शरीर छोह संस्थान, औदारिक शरीर आंगोपांग छोह संहनन, तिर्यगगतिप्रायोग्यानुपूर्वी मनुष्यगति प्रायोग्यानुपूर्वी, उपघात परघात, उच्छास, आताप, उद्योत दोविहायोगति त्रस स्थावर, बादर, शूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक साधारण, शुभग दुर्भग, सुस्वर, दुस्वर, आदेय, अनादेय, यशकीर्ति, अयशकीति, नीचगौत्र उच्चगौत्र, ये बीयासी ८२ प्रकृतिया स्वोदय परोदय दोनो प्रकारसे बंधती है। [ध. ८ १५]

प्रश्न— ध्रुव स्या निरन्तर बंध कोनसी कर्म प्रकृतिया है?

उत्तर— पाचज्ञानावरण. नौदर्शनावरण, मिथ्यात्व, शोलाकषाय, भय, जुगुप्सा. तैजसकार्माण शरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्स, अगुरुकलघुक, उपघात, निर्माण पच अंतराय ये ४७ सेतालीस ध्रुव प्रकृतिया

हैं। ये ४७ सेतालीस ध्रुवप्र कृतिया त्था तीर्थंकर, आहरकशरीर, आहारकमांगोपांग, और चार आयु यह मिलकर, ५४ चौवन प्रकृतिया निरंतर बधती है।

शंका-- निरंतर बंध और ध्रुव बंध में क्या भेद है।

समाधान-- जिस प्रकृतिका प्रत्यय जिस कीसी भी जीवमे अनादि एवं ध्रुव भावसे पाया जाता हैं, वह ध्रुव बंध प्रकृति हैं। और जिस प्रकृतिका प्रत्यय नियमसे सादी एवं अध्रुव त्था अन्तर्मुहूर्त कालतक अवस्थित रहनेवाला हैं यह निरंतर बंध प्रकृति है। (ध ८. १६)

प्रश्न-- सांतर बंध प्रकृतिया कोनसी है?

उत्तर-- जिस जिस प्रकृतियोका काल क्षयमे बंध व्युछेद सभव है वह शातर बंध प्रकृति हैं। असाता वेदनीय--स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरति, शोक, नारकगति, चारजाति, अधस्तनपाच संस्थान, पाच संहनन, नारकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, आताप--उद्योत अप्रसस्तविहायोगति, स्थावर, शूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण अस्थिर, अशुभ-दर्भग दुस्वर, अनादेय, और अयशकीर्ति यह ३४ चौंतीस प्रकृतिया सान्तर है। (ध. ८, १७)

प्रश्न-- सान्तर निरंन्तर बंध प्रकृतिया कोनसी है?

उत्तर--सातावेदनीय, पुरुषवेद हास्य, रति, तिर्यगगति, मनुष्यगति देवगति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, वैकियकशरीर, समचतुरसंस्थान औदारिक शरीर अंगोपाग, वैक्रियकशरीर अंगोपाग वजर्षिमनाराचसंहनन,

तिर्यगगति प्रायोग्यानुपुर्वी, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, परघात, उच्छास, प्रसस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ—शुभग; सुस्वर, आदेय, यशकीर्ति, उच्चगौत्र, नीचगौत्र ये ३२ बतीस प्रकृतियां सान्तर निरन्तर रुपसे बन्धनेवाली हैं। (ध. ८. १८)

पश्न— मिथ्यात्वका उदयमें कोन कोन प्रकृतियोंका बन्ध होता है ?

उत्तर— मिथ्यात्वका उदयसे मिथ्यात्व, नपुशकवेद, नरकायु, नरकगति, एकेन्द्रिय, वीकलेन्द्रियजाति, हुंडकसंस्थान, असंप्राप्त,-सृपाटिकशरीरसंहनन, नरकगति प्रायोग्यांनुपूर्वी, आताप, स्थावर शूक्ष्म, अपर्याप्त, और साधारण यहे शोलाह प्रकृतियोंका बन्ध होता है, क्योकि मिथ्यात्व उदयके अन्वय और व्यतिरेकके साथ इन शोलाह प्रक्र तियोंका बन्धका अन्वय व्यतिरेक पाया जाता हैं। [ध. ७. १०]

प्रश्न— अनन्तानुबंधीकषायके उदयमें कोनसी प्रकृतियोंका बंध होता है ?

उत्तर— अनंन्तानुबंधी कषायके उदयमे निद्रानिद्रा, प्रचला प्रचला। स्त्यान गृद्धि, अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, स्त्रीवेद, तिर्यंचायु, तिर्यंचगति, तिर्यंचप्रायोग्यानुपूर्वी, न्यगोध—स्वाति, कुब्जक और वामन शरीर संस्थान, वज्रनारांच, नारांच अर्धनारांच, और कीलीक शरीर संहनन, उद्योत, अप्रसस्त विहायोगति, दुर्भग—दुस्वर, अनादेय और नीच गौत्र इन पचीश प्रकृतियोंके बन्धका

अनन्तानुबन्धी चतुष्का उदय कारण है, क्योंकि, उसकी साथ उसका अन्वय व्यतिरेक है। (ध. ७-११)

प्रश्न—अप्रत्याख्यानावरणीय कषायके उदयमें कोनसी प्रकृतियोका बन्ध होता है?

उत्तर—अप्रत्याख्यानावरणीय कषायके उदयमे, अप्रत्याख्याना वरणीय क्रोध, मान, माया, लोभ, मनुष्यायु, मनुष्यगति—औदारिक शरीर, औदारिकशरीर आगोपाग, वज्रऋषभसंहनन, और मनुष्य-गति प्रायोग्यानु पूर्वी इन दश प्रकृतियोंके वन्धका अप्रत्याख्याना-वरण चतुष्कका उदय कारण हे, क्योकि उसकी साथ उसका अन्वय व्यतिरेक है। (ध ७-११)

प्रश्न—प्रत्याख्यानवरणीय कषायके उदयमें कोनसी प्रकृतियो का बन्ध होता है?

उत्तर—प्रत्याख्यानवरणीय कषायके उदयमें, प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध—मान, माया लोभ—इन चार प्रकृतियोके वन्धका कारण इन्हीं का उदय है, क्योकि अपने उदयके विना इनका बन्ध नही पाया जाता। (ध. ७-११)

प्रश्न—प्रमादमे कोनसी प्रकृतियोका बन्ध पाया जाता है?

उत्तर—असाता वेदनीय अरति शोक, अस्थिर अशुभ, और अयश. कीर्ति इन छोह प्रकृतियोके वन्धका कारण प्रमाद है, क्योकि प्रमाद के विना इन प्रकृतियोका वन्ध नही पाया जाता है।

शंका—प्रमाद किसे कहते है?

समाधान—चार संज्वलन कषाय और नौ नोकषाय इन तेरहके तीव्र उदयका नाम प्रमाद हैं।

शंका—पूर्वोक्त चार बन्धके कारणोंमें प्रमाद का कहा अन्तर्भाव होता है?

समाधान—कषायेोंमें प्रमादका अन्तर्भाव होता है. कयोंकि कषायोंसे पृथक प्रमाद पाया नही जाता है। [ध. ७–११]

प्रश्न—संज्वलन कषायके उदयमें कोनसी प्रकृतियोंका बन्ध होता है?

समाधान देवायुके बन्धका भी कषाय कारण है. क्योंकि प्रमादके हेतुभूत कषायके उदयके अभावसे अप्रमत हो कर मन्द कषायके उदयरूपसे परणित हुए जीवके देवायुके बन्धका विनाश पाया जाता है। निद्रा और प्रचला इन दो प्रकृतियोके बन्धका कारण कषायोदय है. क्योंकि अपुर्वकरणके कालके प्रथम सप्तम भागमें संज्वलन कषायके उस काल के योग्य तीव्रोदय होनेपर इन प्रकृतियों का बन्ध पाया जाता है। देवगति पंचेन्द्रियजाति। वैक्रियिक, आहारक तैजस, और कार्माण शरीर, समचतुर सस्थान, वैक्रियक शरीरागोपांग, आहारक शरीर अंगोपाग, वर्ण गन्ध रस स्पर्श देवगतिप्रयोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघुक उपघात परघात. उच्छ्वास, प्रसस्तविहायोगगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर शुभ शुभग सुस्वर आदेय, निर्माण, और तीर्थंकर इन तीस प्रकृतियोके भी बन्धका कषायोदयही कारण हैं। क्योंकि अपूर्वकरण कालके

सात भागोमेंसे प्रथम छोह भागोके अन्तिम समयमे मन्दतर कषायोंदयके साथ इनका बन्ध पाया जाता है। हास्य, रति, भय, और जुगुप्सा इन चारके बन्धका अधःप्रवृत और अपूर्वकरण सम्बन्धी कषायोदय कारण है, क्योकि, उन्ही दोनो परिणामोके काल सम्बन्धी कषायोदयमें ही इन प्रकृतियोंका बन्ध पाया जाता है। चार संज्वलनकषाय और पुरुष वेद. इन पांच प्रकृतियोके बन्धका बादर कषाय कारण है, क्योकि, शूक्ष्मकषाय गुणस्थानमे इनका बन्ध नही पाया जाता है। पाच ज्ञानावरणीय, चार दर्शना वरणीय, यशःकीर्ति उच्चगौत्र, और पाच अन्तराय इन शोल्ह प्रकृतियोंका सामान्य कषायोदय कारण है. क्योकि, कषायोंके अभावमे इन प्रकृतियोंका बन्ध नही पाया जाता है। साता वेदनीय के बन्धका योग ही कारण है. क्योकि मिथ्यात्व असंयम और कषाय इनका अभाव होनेपर भी एक मात्र योगके साथ ही इस प्रकृतिका बन्ध पाया जाता है, और योगके अभावमे इस प्रकृतिका बन्ध नही पाया जाता है। [ध. ७–१२]

शंका— आत्मामे बन्ध समय समयमे पडता है। छद्मस्थ जीवका ज्ञानोपयोग असंख्यात समयमे होता है, तब हमने जो बुद्धि पूर्वक कषाय किया उसमे तो असंख्यात समय चलागया, तब उस बुद्धि पूर्वक किया हुआ कषायका बन्ध कोन समयमें पडेगा ?

समाधान—बुद्धिपूर्वक किया गया अपराधका बन्ध समयमे

नही पडता है. परन्तु समय समयमें जो अबुद्धिपूर्वक बन्ध पडता है, उस बन्धमे बुद्धिपूर्वक रागके कारणसे अपकर्षण, उत्कर्षण, और संक्रमण होता रहता है। और यही संसारकी जड है। जीसको साखी भाषामे उदीरणा कहते है। उदीरणासे बचनेमे ही पुरुषार्थ करना पडता है और इस पुरुषार्थके अभावमे अनंत काल निकाला। उदयकी साथ पुरुषार्थतो दो घडी मात्रका काल है। उदयको जीतना कठन नही है, परन्तु बुद्धिपूर्वक अपराधसे [उदीरणासे] बचना बडी कठीनता है।

शंका— चक्षुद्वारा जबमे प्रतिमाजीका दर्शन करता हूं इसी समयमे दर्शन करनेमे मुजको कोई बाधा नही है। उसी समयमे मतिज्ञानवरण कर्मका भी उदय है- तब वह उदयने मुजको क्या फल दिया? क्योंकि कर्मका फल तो नियमसे बाधा डालता है, और मुजको देखनेमे बाधा नही है? तो कर्मने काय फल दिया?

समाधान— जितना अंशमें कर्मोंका क्षयोपशम है इतना अंशमे संपूर्णआत्माने देखनेकी शक्ति प्राप्त हुई है। तो भी आत्मा संपूर्ण प्रदेशोंसे नही देख शकता है. इसका यह कारण है कि वर्तमान कर्मका उदयने सर्व प्रदेशोंसे देखनेको रोक दिया और मात्र चक्षु इन्द्रिय द्वारा देखने दिया यही कर्मका उदयका फल है। यदि कर्मका उदय नही होता तो आत्म संपूर्ण प्रदेशोंसे देखते-

शंका— निकाचित और निधत्त बन्ध किसको कहते [illegible] निकाचित और निधत्त बन्ध है।

समाधान— जीस समये आत्मामे आयुका बन्ध पडता है, उसी समयमे जो गति एवं गौत्रका बन्ध पडता हैं, उस गति और गौत्रका नाम निकाचित एवं निधत बन्ध है। जो गति और गौत्रका बन्ध पडता है उसी गतिमे और वही गौत्रमे आत्माको नियमसे जानाही पडेगा। इसको पल्टनेकी आत्माकी भी शक्ति नही है। इसीका नाम निकाचित है।

इति भेदज्ञान सास्त्रमध्ये द्रव्य कर्म अधिकार सपूर्ण हुआ।

पर्याप्ति-प्राण अधिकार

प्रश्न— पर्याप्ति किसको कहते हैं. और वह कितनी होती है ?

उत्तर— पर्याप्ति ६ छोह होती है। १ आहार पर्याप्ति. २ शरीरपर्याप्ति. ३ इन्द्रिय पर्याप्ति. ४ आनापान [उच्छ्वास] पर्याप्ति. ५ भाषापर्याप्ति. ६ मनःपर्याप्ति।

जीवमे आहार, शरीर, इन्द्रिया, आनापन, भापा, और मन. रुप शक्तियो कि पूर्णताके कारणको पर्याप्ति कहते है, और अपूर्णताको अपर्याप्ति कहते है।

एकेन्द्रियकी चार पर्याप्ति होती है। दोइन्द्रिय-तिन्द्रिय, चतुर-न्द्रिय तथा असंज्ञी पेचेन्द्रियके पाच पर्याप्ति होती है। और संज्ञी पेचेन्द्रियको छोह पर्याप्ति होती हैं।

प्राणका स्वरूप—

प्रश्न— प्राण कितना होता है ?

उत्तर— प्राण चार प्रकारका है। १ बलप्राण. २ इन्द्रियप्राण. ३ आयुप्राण. ४ स्वासोस्वासप्राण। बलप्राण तीन प्रकारका होता है। १ कायबल. २ वचनबल. ३ मनःबल। इन्द्रिया पांच प्रकारकी होती है। १ स्पर्सेन्द्रिय. २ रसन्द्रिय. ३ घ्राणन्द्रिय. ४ चक्षुन्द्रिय. ५ श्रौत्रन्द्रिय। इसप्रकार भेद अपेक्षाये प्राण १० दस होता है।

इन्द्रिय. बल, आयु, और स्वासोस्वास इन चारोही प्राणोमें जो चैतन्यरुप परिणति है वह तो जीवकी ही अवस्था है, जीसको भावप्राण कहते है, और इनकी ही जो पुद्गलस्वरुप परणति है वे पुद्गलकी ही अवस्था है उसे द्रव्य प्राण कहते है। समवाय सम्बन्धसे आत्मा चैतन्य प्राणसे ही जीता है, और संयोगसम्वन्धसे संसारी जीव यही दशादि प्राणोसे जीता है। ये दोनो जातिके प्राण संसारी जीवके सदा अखंडीत संतान कर नवर्तते हैं, इनही प्राणोकर संसारमे जीवता कहलाता है, और मोक्षावस्थामे केवल शुद्ध चैतन्यादि गुणरुप भावप्राणोसे जीता है।

संयोगसम्बन्धसे एकेन्द्रिय जीवको चार प्राण होता है। १ कायप्राण. २ स्पर्सेन्द्रियप्राण. ३ आयुप्राण. ४ स्वासोस्वासप्राण। द्वेन्द्रियजीवको छोह प्राण होता है। १ रसेन्द्रियप्राण तथा २ वचनप्राण ये दोनो प्राण विशेष है। तिन्द्रियजीवको सात प्राण

होता है। १ घ्राणेन्द्रियप्राण विशेष है। चतुरन्द्रिय जीवको आठ प्राण है। १ चक्षुन्द्रियप्राण विशेष है। असंज्ञो पंचेन्द्रिय जीवको नौ प्राण है। १ श्रौतेन्द्रियप्राण विशेष है। संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवको दश प्राण है। १ मनःप्राण विशेष है। कहा भी है कि—

पाणेहिंचदुहिं जीवदि जीवस्सदि जो हु जीविदो पुव्वे
सोजीवो पाणा पुण बलमिंदियमाउ उस्सासो ॥

प्रश्न— पर्याप्ति और प्राणमे क्या भेद है?

उत्तर— दोनोमे महान भेद है। आहार, शरीर, इन्द्रिय, आनापान, भाषा, और मनःरुप शक्तियेोकि पूर्णताके कारणको पर्याप्ति कहते है। ओर जिनको द्वारा आत्मा जीवन संज्ञाको प्राप्त होता है उन्हे प्राण कहते है। यही उन दोनोंमें भेद है। वे प्राण पाच इन्द्रिय, मनोबल, वचनबल, कायबल, आनापान और आयुके भेदसे दश प्रकारका है।

शंका—पर्याप्ति और प्राणके नाममे अर्थात कहनेमात्रमे विवाद है, वस्तुमें कोई विवाद नही है। इस लिये दोनोका तात्पर्य एक ही मानना चाहिये?

समाधान—नही, क्योकि, कार्य और कारणके भेदसे उन दोनोंमें भेद पाया जाता है, तथा पर्याप्तिमे आयुका अभाव नही होनेसे और मनोबल, वचनबल और, उच्छ्वास इन प्राणोके अपर्याप्त अवस्थामें नही पाया जानेसे पर्याप्त और प्राणमे भेद समजना चाहिये।

शंका—त्रेपर्याप्तिया भी अपर्याप्ति कालमें नही पाई जाती है, इसलिये अपर्याप्त कालमे उनका सद्भाव नही रहेगा ?

समाधान—नही, क्योकि अपर्याप्तकालमे अपर्याप्तरुपसे उनका सद्भाव पाया जाता है।

शंका—अपर्याप्तरुप इसका क्या अर्थ है ?

समाधान—पर्याप्तियोंकी अपूर्णताको अपर्याप्ति कहते है इसलिये पर्याप्ति अपर्याप्ति और प्राण इनमे भेद सिद्ध हो जाता है। अथवा इन्द्रियादिमें विद्यमान जीवनके कारण पनेकी अपेक्षा न करके इन्द्रियादिकरूप शक्ति की पुर्णता मात्रको पर्याप्ति कहते हैं, और जीवनके कारण है उन्हें प्राण कहते है। इस प्रकार दोनोमे भेद समजना चाहिये। (ध. १–२५६)

कोई मुर्ख अज्ञानी जीव अैसा प्रश्न करे कि जैन लोग अर्थात विवेकी लोग बहोत एकेन्द्रिय जीवोकी घात कर अपना पोषण करते है, जब हमने एक पचेन्द्रिय जीवको घात कर अपना पोषण किया इसमे हमने तो एक जीवकी घात की, जब कि आपने बहोत जीवोकी घात की ? इसका समाधान यह है कि संसारमे चार प्राणोसे कमती प्राण वाले जीव होते नही, वही चार प्राण एकेन्द्रिय जीवको ही होता है। एक प्राणसे एक प्राणकी वृद्धि होना महान पूर्णका फल है। हमने तो चार प्राणका धारी एकेन्द्रि जीवकी घात की, तब तुमने महान पूण्यशाली पचेन्द्रिय दश प्राणके धारी जीवकी घात की इससे तुम महापापी हो।

प्रश्न—पर्याप्ति पूर्ण होनेसे बाहय पदार्थका ज्ञान होता है। अर्थात पर्याप्ति पूर्ण होनेसे तुरत आत्मा अपना ज्ञानोपयोग कर सकता है ?

उत्तर—इन्द्रिय पर्याप्ति पूर्ण होजानेपर भी उसी समय बाहय पदार्थ सम्बन्धी ज्ञान उत्पन्न नही होता है, क्योंकि उस समय उसके उपकरण रूप पौद्‌गलिक द्रव्येइन्द्रिय नही पाई जाती है॥
(ध. १–२५५)

ईति भेदज्ञान शास्त्र मध्ये प्राण अधिकार संपूर्ण हुआ।

गुणस्थान अधिकार

प्रश्न—गुणस्थान किसकों कहते है ?

उत्तर—आत्माका गुणोकी अंश अंशमे विशुद्ध होना सो गुणस्थान हे। अथवा जिस कारणोसे आत्मा अनादिकालसे वन्धनमे रहा है वह कारणोको अथवा द्रव्य पुद्‌गलीक कर्मोका अभाव होना उसीका नाम गुणस्थान है। गुणस्थान चौदाह हैं। इसमे एकसे चार गुणस्थान आत्माकी श्रद्धा नामके गुणकी अवस्थासे होता हैं। पाच से दश गुणस्थान आत्माकी चारित्र नामका गुणकी विकारी अवस्थासे होता है। अगीयार–बारह और तेरहवां गुणस्थान आत्माके योग नामका गुणके विकारी अवस्थासे होता है।

चौदवा गुणस्थान क्रियावती शक्ति के विकारसे हैं। गुणस्थान के नाम इस प्रकार है। १ मिथ्यात्व गुणस्थान. २ सासादनगुण-स्थान. ३ मिश्रगुणस्थान. ४ अव्रत सम्यगद्रष्टि. ५ संयतासंयत. ६ प्रमत्तसंयत. ७ अप्रमतसंयत. ८ अपूर्वगुणस्थान. ९ अनिवृति-करणगुणस्थान. १० शुक्ष्मसांपराय गुणस्थान. ११ उपशान्तमोह गुणस्थान. १२ क्षिणमोह गुणस्थान. १३ सयोगीकेवली गुणस्थान. १४ अयोगीकेवली गुणस्थान।

मिथ्यात्व गुणस्थान—

मिथ्यात्वका सेवन यह जीव अनादिकालसे कर रहा है। मिथ्यात्वका सेवन करनेमे प्रधान निम्नलिखित कारण है।

एकान्तमिथ्यात्व, अज्ञान मिथ्यात्व, विपरीतमिथ्यात्व, वैनियिक मिथ्यात्व, और सांशयिक मिथ्यात्वके भेद्रसे मिथ्यात्व पांच प्रकारका है। (ध. ८–२०)

प्रश्न—एकान्त मिथ्यात्त्व किसको कहते है?

उत्तर—एकान्त मिथ्यात्वमे सतही है, असतही है. एक ही है, अनेकही है, सावयवही है, निरवयवही है, नित्य ही है, अनित्यही है. इत्यादिक एकान्त अभिनिवेशको एकान्त मिथ्यात्व कहते है।

प्रश्न—अज्ञान मिथ्यात्व किसको कहते है?

उत्तर—अज्ञान मिथ्यात्वमे नित्यानित्य विकल्पोसे विचार करने पर जीवाजीवादि पदार्थ नही है, अतएव सब अज्ञान ही है. ज्ञान

नही है, अैसा अभिनिवेशको अज्ञान मिथ्यात्व कहते हैं।

प्रश्न—विपरित मिथ्यात्व किसको कहते हैं?

उत्तर—विपरित मिथ्यात्वमे हिसा, अलीकवचन चौर्य, मैथुन, परिग्रह, राग, द्वेष, मोह, अज्ञान इनसे ही मुक्ति होती है अैसा अभिनिवेश विपरित मिथ्यात्व कहलाता है।

प्रश्न—वैनियिक मिथ्यात्व किसको कहते हैं?

उत्तर—वैनियिक मिथ्यात्वमे लौकिक एवं पारलौकिक सुख सभी विनयसे ही प्राप्त होते है, न कि ज्ञान, दर्शन, तप से ओर उपवासजनित क्लेसोसे अैसे अभिनिवेशका नाम वैनियिक मिथ्यात्व है।

प्रश्न—संशय मिथ्यात्व किसको कहते है?

उत्तर— संशय मिथ्यात्वमे सर्वत्र संदेह ही है, निश्चय नही है, अैसे अभिनिवेशको संशय मिथ्यात्व कहते है। इसप्रकार अनादि कालसे जीव मिथ्यात्वका सेवन करता है (ध. ८. २०)

एक्केक्कं तिण्णि जणा दोदो यण इच्छदे तिवग्गम्मि।
एक्को तिण्णि णइच्छइ सत्त वि पावेति मिच्छत्तं ॥

अर्थ— तीन जन त्रिवर्ग अर्थात पुण्य, अर्थ—और काममे एक एककी इच्छा करते है, अथवा कोई पुण्यको, कोई अर्थको, कोई कामको ही चाहता है। दुसरे तीन जन उनमें दो दोकी इच्छा करते है, अर्थात कोई पुण्य और अर्थ को, कोई पुण्य और कामको, तथा कोई अर्थ और कामको ही चाहता है। कोई

एक तीनोकी इच्छा नही करता अर्थात तीनोमेंसे एकको भी नही चाहता है। (ध. ९. २०८)

अनादिकालसे यह जीव पुण्य भावमे ही मोक्ष मान रहा है. पुण्य भाव जो बधनका ही कारण है, उस भावसे मोक्षकी प्राप्ति कैसे हो शकती है। जैसे कांदा (पीआज) खाता खाता अमृतका डकार चाहता है वह कैसे मिलशकता ह ? नही मिलशकता है। भक्ति भाव पुव्य भाव है; असा भक्ति भावसे मोक्षकी कल्पना करना मिथ्यात्वही है।

प्रश्न—पुण्य भावको परपरा मोक्षका कारण तो माना है ?

उत्तर—पुण्य भावको परपरा मोक्षका कारण माना हे, इसका आप परमार्थ अर्थ न समजे।

शंका - इसीका परमार्थ अर्थ क्या है ?

समाधान—जैसे पाप भाव छोडते छोडते पुण्य भाव होता है। परन्तु पाप भाव करते करते पुण्य भाव होता नही। **इसीप्रकार पुण्य भाव छोडते छोडते धर्म भाव होता है. परन्तु पुण्य भाव करते करते धर्म भाव होता नही. असा परंपराका अर्थ करनां चाहिये।** कारण दो प्रकारका होता हे। १ सदभाव कारण. २ अभाव कारण। जैसे ज्वरका सदभाव वह निरोगताका कारण नही है, परन्तु ज्वरका अभाव वही निरोगताका कारण है। **इसीप्रकार पुण्यभावरूप ज्वर निरोगतारूप मोक्षका कारण**

नही है, परन्तु पुण्य भाव रूप ज्वरका अभाव मोक्षका कारण है।

शंका—तब क्या पुण्य भाव करना छोडदे ?

समाधान—नही, जैसे पाप भावतो बुद्धिपूर्वक पुरुषार्थसे छोडा जाता है अैसा पुण्य भाव बुद्धिपूर्वक पुरुषार्थसे छोडा नही जाता। वहतो जैसे जैसे वीतराग भाव वढता है, अैसे अैसे आपसेही सहज छुट जाता है। अष्ट द्रव्य द्वारा देवकी पुजा-करना, पात्र जीवको आहार आदि दान देना, गरीबोको करुणादान देना, उपवासादि वाह्यतप करना इत्यादि पुण्य भाव हैं वह देखीये कैसे सहज छुट जाता हैं।

जीवका जब अष्टम प्रतिमारूप भाव होता है तब आरंभका भाव छुट जानेसे पात्रादि जीवोको दान देनेका भाव सहज होता ही नही है। जब नौमी परिग्रह त्याग प्रतिमा रूप भाव होता है तब दानादि एवं अष्ट द्रव्य द्वारा अरहंत भक्तिका भावका अभाव सहज हो जाता है। जब जीवका सातवा गुणस्थानरूप भाव होता है तब सहज वाह्य और अभ्यंतर तपका विकल्प का अभाव हो जाता है। इसी प्रकार पुण्य भावका अभाव होता जाता है। इससे सिद्ध हुआ कि पुण्य भावका अभाव मोक्षमार्गमे कारण हैं परन्तु पुण्य भावका सद्‌भाव तो नियमसे मोक्षमार्गकी घात करनेवाला है। इस लिये तो पुण्य भावकों आत्म शान्तिकी अपेक्षा व्यभि-चारि भाव कहा है। इससे सिद्ध हुआकि जो जीव पुण्य भावमें

धर्मबुद्धि करता है वह मिथ्याद्रष्टि है।

पुद्गलिक द्रव्य कर्मोका फलमे मिलि हुई वस्तु जैसे शरीर पुत्र, स्त्री, माता, पिता, लक्ष्मि आदि मैरी है वह मान्यता मिथ्यात्वकी है। क्योंकि, जिस शरीरको आप अपना मानते हो, जिसकी दिनरात वैयावृत्त करते हो वह आपकी एकभी बात मानता ही नही है। वह तो आपकी इच्छा हो या न हो नियमसे कालके अनुकूल अपनी अवस्था धारणा करता है। जैसे कालाबालोंमेसे सूफेद बाल होजाना। दांत तूट जाना, शरीरमे कुडचली होजाना, जराकी अवस्था आजाना, वह तो होताही रहता है, तो भी मूढ जीव समजताही नही है कि यह मैरे आधीन नही है। और इसकी अवस्थामे फेर फार देखकर दुःखी होजाता है। यह मिथ्यात्व ही भाव है।

संसारमे प्रधान पने तीन प्रकारका रोग है। १ शारीरिक रोग २ क्षुधा रोग ३ काम रोग।

शारीरिक रोगमे औषधि खाता है परन्तु वहा तो यह भावसे औषधि खाता है कि रोग कब मिट जावे। औषधि खानेको चाहता नही है। वहातो यह विचार भी नही करता है कि यह औषधि कटुक है परन्तु रोग नाशकी भावनाके कारक कटुक औषधि खानेमे ग्लानि नही करतां है। क्षुधारोगकी औषधि आहार लेना है, वहां तदन विपरित भाव। यह भोजन अच्छा नही है अैसा भोजेन मुजको बहुत पसंद है, अैसा भोजन रोजंदा मिलो यह भावनासे आहारादिकका सेवन करता है. परन्तु वहा क्षुधा रोग

मिटानेका यदि भाव होता तो जो सामग्री भोजनमे मिलती इससे संतोषकर क्षुधा रोग मिटानेकी चेष्टा करता ? परन्तु वडीया सामग्रीकी चाह करना इसका यह ही अर्थ हुवाकी मुजको क्षुधा रोग रोजंदि हो, और ऐसी उतम २ सामग्री रोजदा मिले, यही भावना मिथ्यात्वकी है। इसी प्रकार कामका भी रोग है। इसीका मिटनेके लिये स्त्री आदिका सेवन करना है परन्तु इसको औषधिकी रुपमे सेवन नही करता है परन्तु भोगमे वडाही आनद मानता है यह सब क्या है ? यही तो मिथ्यात्व है ? रोगमे आनंद मुर्ख वीना कोन मान शकता है। परन्तु ऐसा भाव नही है कि यह रोग कब मिटजावे ? और औषधिरुप स्त्रीका सेवन कब छुट जावे यह भावना न होनेका कारण मात्र मिथ्यात्व भाव ही है।

पौद्गलिक द्रव्य कर्मका फलमे मिल हुई देव, मनुष्य, तिर्यंच नारकी रुप संयोग जनित अवस्थाको, यह आत्मा अज्ञानके कारण अपनी अवस्था मान रहा है। यहीं मिथ्यात्व भाव है। मै बालक हु, मै स्त्रीहूं, मै पुरुष हूं, में मनुष्य हूं मै देव हूं, मै देवागना हूं मै हाथी घोडा, बेल, कुता, सिंग, कबुतर, मयुर, साप मगरमच्छ आदि जो जो पुद्गलीक संयोगी अवस्था मीली उसीको ही 'यह मै हुं' ऐसा मानकर दुःखी हो रहा है। अपना स्वरुपको अपनेको मान नहि है. इसी कारण शरावी पागल मनुष्यकी माफक बोलता है कि मै दुबला हुं मै मोटा हुं, मै गोरा हूं, मै काला हूं, मै रोगी हुं. मै तंदुरस्त हु, इत्यादि मानी दुःखी हो

रहा है, यही सब मिथ्यात्व भाव है। इसीकाही नाम पर्याय मूंढ जीव है। जो जो कर्म जनित अवस्था होती है, इसीकोही अपनी अवस्था मानता है। पुण्य के उदयसे जैन कुलमें उत्पन्न हुआ. सुगुरुओकी सेवा भक्ति करनेका अवकाश भी मिला। देव दर्शन करनेका भी सुअवसर प्राप्त हुआ परन्तु एक समय मात्र परमार्थ दर्शन किया नही। जैसे एक गुवालने जंगलमेसे एक सिंगका दो दिनकाही वच्चा मिल गया। गौवालने वह सिंगके बच्चाको अपनी बकरीयोके टोलेमें रख दिया। सिंगका वच्चा वकरीयोके टोलेमे रह कर अपनेको भी बकरी मान कर रहने लगा? उसको तो बकरीओका चहेरा दिखता हैं परन्तु अपना चहेरेका भान नहीं है। बकरीओकी साथ रह कर वह भी तो अपनेको बकरी मानने लगा। बकरीका दूध पीता है और आनंद मान रहा हैं। एक दिन वह सिगका वच्चा नदीमे जल पीनेको गया। नदीका जल शान्त वह रहा था। उसमे एक भी कल्लोले उठती नही थी। असा शान्त बहता पानीमें जल पीता पीता सिगका बच्चाने जलकी स्वच्छतामे अपना चहेरा देखा। तब वह सोचने लगाकी मै वकरी के जातके नहीं हूं। परन्तु मै किस जातका हूं वह उसीको ज्ञान नीह हैं। एक दीन जंगलका सिग शिकारके निमितसे वह बकरीयोंके टोळमे आगया। उसने जैसा सिंग नाद किया कि सब वकरीयो भागने लगी। इसीको देखकर सिगका बच्चा भी भागने लगा। भागते २ विचार करता है कि क्यो सब भागते

है ? तब उसने मुख मोडकर दिखा तो सामने एक सिंग को देखा। दिखतेही वह सोचने लगाकी यह तो मेरी जातिका है। मै क्यों भागु ? तब उसने भी सिंग नाद किया। यह नाद शुनकर जंगलका सिंग विचारने लगाकि, इसमे मैरी जातिका है, इसलिये मे अब शिकार कर नही शकता हुं, अैसा सोचकर वापीस लोट गया। सिंगका बच्चाको ज्ञान हो गया के मै कोन हुं। यह सोचकर बकरीयोका संग छोडकर एकाकी अपने भावमे रहने लगा। इसी प्रकार यह जीव अनादिसे पौद्गल शरीरकी साथ रहता है। परन्तु उसीको मालुम नहीं है कि मै कोन हु। वह तो शरीर कोही अपनेको मान रखा है। शरीरकी अवस्था बदलनेसे अपनी अवस्था बदली मानता है। शरीरके नाशसे अपना नाश मानता है, शरीरकी उत्पतिसे अपनी उत्पति मानता है। देव दर्शन करनेका फल यह था कि देवकी स्वच्छ मूर्तिमें जो अनंत चतुष्टय रूप गुणको जो आरोप कीया है उसीको देखकर विचार करे कि, मै मनुष्य नही हूं परंतु मै तो सिद्धकी जातिका हुं, अर्थात् में पुद्गलकी अवस्थाका नही हूं परंतु मै तो चैतन्य जातिका हूं। यदि एक ही दफे जीवको विश्वास हो जावे, प्रतिनी हो जावे, तो चार गतिरूप मरणमें से बचा कर अपना पदकी प्राप्ति कर शकता है। परतु इसी तरफ द्रष्टि नही है इसी कारण कर्म जनीत जो जो अवस्था मिलती है इसीको अपनी मानना है यह ही मिथ्यात्व है।

मै पर जीवको मार शकता हूं, मै पर जीवको बचा शकता हूं, मै पर जीवको सुखी दुःखी कर शकता हूं, एवं पर जीव मुजको मार शकता है. पर जीव मुजको बचा शकता है, और पर जीव मुजको सुखी दुःखी कर शकता है यह जो सब विकल्प होता है वह सब मिथ्यात्वभाव है। क्योंकि सब जीव अपने आयुकर्मका नाशसे ही मरता है. सब जीव अपने अपने आयुके उदयसे ही जीवीत रहता है। कोई जीव कोई जीवको आयु देशकता नही. एवं कोई जीव कोई जीवकी आयु लुट शकता नही. आयु पुरी हो जावे तो भगवंत तीर्थंकरमें भी ताकाद नही है कि बचा शके। यदि जीवोकी आयु बाकी है तो इन्द्रकी भी ताकाद नही कि वह कोई जीवको मार शके। इसी प्रकार सब जीवोंको सुख और दुःख का बाह्य संयोग अपने अपने साता असाता कर्म के उदयसे ही मिलता है। पापका उदय आनेसे चाहे इतनी संभाल रखे तो बाह्य सामग्री का नियमसे वियोग होगा, और पुण्यका उदय होगा तब ही बाह्य सामग्री मिल शकती है इसके विनां चाहे इतनी महेनत करे एक कोडी भी मिलेगी नहि।

शंका—गरीब भिक्षु जनोको आहार आदि देकर हम सुखी तो कर शकते है, आप निषेध कैसे कहते हो?

समाधान—आपकी पासमे तीन भिक्षुक आया. और कहाकि बाबुजी भुखा हूं कृपाकर कुछ दिजीये। तब आप यदी

आपमें करुणा बुद्धि न हुई तो जवाब तुरत दे देते हो कि माफ करो, माफ करो। बादमे एक भिक्षुक आया उसने भी कहा भी महाराज दुःखी हूं कृपा कर कुछ दिजिये ? उसीको देखकर आपके हृदयमे करुणा हुई के यह दुःखी है मे कुछ दउ। तब वही करुणाभाव जो आपने हुई है उसीसे आप दुःखी हो वह दुःखके निवारणके लिये आपकी इच्छा दो पैसा वह भिक्षुकको देनेकी हुई। जब जेबमे हाथ डाला तब दो पैसा नही है, परन्तु दो आना था। तब आपने दो आना उसीको दे दिया। अब सोचीयेके उस भिक्षुकको जो दो आना मिला वह आपने दिया कि उसके पूण्यके उदयसे ही मिला है ? यदि आपने उसीको दिया तो प्रथम तीन भिक्षुकको कयो नही दीया ?

शंका – हमको उसीको देनेकी इच्छा नही हुई ?

समाधान — आप अपनी इच्छाका करनेवाला जरुर हो परन्तु दुसरा जीवोने आप सामग्री नही देते हो। दुसरा जीवोने सामग्रीतो अपने अपने पुण्यके उदयसेही मिलती है।

जैसे शीताजीको उपसर्ग आया तब इन्द्रने सहायता कर अग्निका जल बना दिया, और गजकुमार मुनिके शिर पर अग्नि जलादि तो भी इन्द्र वहा क्यो नही आया ? शीताजी तो स्वर्ग जाने वाली थी और गजकुमार मुनि तो मोक्षपधार्या, वहा इन्द्र क्यो नही आया ? इसीका इतनाही जवाब है कि– शीताजका पुण्यका उदय था जिससे इन्द्रने आकार सहायंता किया। जब

गजकुमार मुनिका पुण्यका उदय नही था जिससे इन्द्रने सहायता न दी।

श्री आदिनाथ भगवान् तीर्थंकर जब माताके उदरमे आनेवाले थे इससे पहेले छोह महिनेसे सोनावृष्टि इन्द्रने की, और जब अदिनाथ भगवान मुनि होगये और छोह महीना तक आहार न मिला तब इन्द्रने मदद क्यों न दी ? विचार करनां चाहिये.? गर्भके आनेके पहेले आदिनाथ भगवानका पुण्यका उदयथा जिससे इन्द्रने सोना महीरोकी-वृष्टिकी, जब मुनि अवस्थामे आहारके लिये निकले फिर मी छोह २ मासतक आहार न मिला इससे-सिद्ध होता है कि बाह्य सामग्री पुण्यके उदयमे ही मिल्ती है। जीव असा अभीमान करता हैं कि हमने सहायताकि वह उसीका मिथ्यात्व भाव है। इसी कारण से जीव दुखी हो रहा हैं।

शंका—गोली आदिसे जीवको मरण देखा जाता है, फिर हम मार नही शकता यह कहना उचित नही है ?

समाधान— आपने मारनेकी इच्छा की और दुसरे मनुष्य पर गोली मी छोडदी, यदि उस जीवका आयु बाकी है तो नियमसे गोलीसे वह बच ही जायेगा। आप मार नही शकता। मरण तो तब ही होगा की जब उसका आयु पुरा होगा। आयु पुरा हुआ विना कभी मर ही नही शकता है।

शंका—डाकटर लोग औपरेशन आदि क्रिया कर जीवको बचाता है फिर आप कैसे कहते हो कि दुसरे जीव कोईको बचा

नही शकता ?

समाधान—डोकटरका अभिप्राय रक्षाका है, यह सोचकर वह ओपरेशन तो करते हैं, परन्तु यदी उस जीवका आयु पुर्ण होगया तो ओपरेशन करते करते ही मरण हो जावेगा। डोकटर क्या करे ? यदि डोकटरमें बचानेकी शक्ति है तो वह स्वयं क्यो मरते है ? इससे सिद्ध होता है कि सब जीवो अपनी अपनी आयुसे जीता है और अपनी अपनी आयु पुर्ण होनेसे ही मरणको प्राप्त होता है।

शंका—सास्रोमे तो अकाल मृत्यु होनेका विधान तो देखनेमे आता है वह कैसे होती होगी ?

समाधान—सास्रोमे अकाल मृत्यु होती है ऐसा जो लिखा है उसीका आपने परमार्थ अर्थ नही समजा।

शंका—उसीका परमार्थ क्या है ?

समाधान—मरण दो प्रकारसे होता है। १ उदयसे २ उदीरणासे। जैसे।

१ एक मनुष्य जा रहा है और अकस्मात मोटर से दब जानेसे उसीका मरण हो गया। इसमे तो उसीका उदय ही ऐसा था और इस निमितसे ही मरण होनेवाला था। ऐसा मरणका नाम अकाल मृत्यु नही है. वहतो आयु पुर्ण होनेसेही मरण हुवा है। जहा २ अपने जीवीत रहेनेकी इच्छा हो और मरण हो जावे वहा २ उदयसे ही मरण हुआ है। ऐसा जानना चाहीये।

२ एक मनुष्य स्वयं आपघात करे। स्वयं जहेर खा जावे।

गला फांसा खावे। स्वयं कुवामे कुद कर मरण करे, ट्रेइनकी पटडी पर, स्वयं सो कर मरण करे ऐसा मरणका नाम अकाल मृत्यु है। क्योंकि अपने तीव्र क्रोधादि कषाय रुप भावसेही आयुका निषेकोका नाश किया जाता है। दुसरा आदमी कषाय करे और दुसरे आदमीका आयुका निषेकोका नाश कभी हो नही शकता। जैसे एक जीवकी पासमें मोहनीय कर्म सत्तर कोडाकोडी स्थिती वाले हैं। वही जीव अपने परिणाम निर्मल्कर अन्तर्मुहूर्तमे वही कर्मकी स्थिती अंतः कोडाकोडीकी कर शकता है। परन्तु दुसरा जीव भाव करे और उसीकी कर्मकी स्थिती घट जावे ऐसा सम्बन्ध नही है। दरेक जीवोका अपने २ कर्मोकी साथ अपने २ भावका निमित नैमितिक सम्बन्ध है। जीस जीवोका ऐसा भाव रहता है कि में मरही जांऊ ऐसा परीणामो द्वारा आपघात, किया जाता है उसीका नाम अकाल मृत्यु है। और जिस जीवोको में बच जाउ, में बच जाउ, ऐसा भावकी साथ मरण होता है ऐसा मरणका नाम अकाल मृत्यु नही है।

अनादिकालसे यह जीव परपदार्थोमें इष्टानिष्ट बुद्धि करता है यही अनंत संसारका कारण मिथ्यात्व भाव है। संसारमें कोई पदार्थ अच्छा बुरा नही है, परन्तु मोहके वश हो कर जीव अच्छा बुराकी कल्पना करत्ता है। धुपके दिनमें जीस मलमलको अच्छे मानते हो वही मलमलको जाडेके दिनमें खराब मानते है। जीस विष्टाको आप खराब मानते हो वही विष्टाको शुकरादि

अच्छे मानते है। जिस गालीको आप खराब मानते हो वही गाली ससुरालके घरमें अच्छी मानते हो। जिस देवकी मुर्तीको आप अच्छे मानते हो वही देवकी मुर्तीका और जीव खंडन करते है। इससे सिद्ध हुआकि संसारमें कोई पदार्थ अच्छे बुरे नही है, परन्तु मात्र मोहकी कल्पनासे जीव अच्छा बुरा मानकर दुःखी होता है यही जीवका मिथ्यात्व भाव है।

देव, गुरु, शास्त्र कल्याण कर शकता है। अच्छे देव मिलजावे तो मैरा कल्याण होजावे। यही सभी मिथ्यात्व भाव हे। अच्छे गुरु मिलजावे तो कल्याण होजावे। यदी कोई गुरु धागा, दोरा, बना देवे तो कल्याण होजावे, इत्यादि सर्व विकल्पो मिथ्यात्वका ही है। महावीरजीका महावीर धन देता है, पुत्र देता है, मुकरदमा जिता देता है इस मान्यतासे महावीरजी जाना यह सब मिथ्यात्व भाव है। शिखरजी परसे अनंत जीवो मुक्तिमें पधारे है। इस कारण शिखरजीका कंकर कंकर पुज्य है ऐसी भावना मिथ्यात्वकी है। शिखरजी पुज्य नही है, वह तो पृथिवीकायिक एकेन्द्रिय - जीव है। वह अपनेसे पुज्य कैसे हो शकता है? परन्तु वहासे मुनि महाराजो जो मोक्षमे पधारे है, वह मुनि महाराजोका गुणोका पुजा कि जाती है, जीसका आरोप शिखरजीमे मात्र उपचारसे दिया जाता है। जैसे समवसरणमे श्री तिर्थंकर देव विराजमान हैं इसी कारण समवशरण कि महिमा है परन्तु वहा तीर्थंकरकी महिमा न जानकर मात्र समवसरण कि

महिमा मानना मिथ्यात्व भाव है। तीर्थंकरका गुणोकी जैय ध्यानमें न आवे और मात्र समवशरणकी जैय बोलना वह तो मिथ्यात्व भाव है। हलवेकी कडाईकी महिमा नही है महिमा तो कडाईमें जो हलवा है उसीकी है परन्तु कडाईकी महिमा आती है वही मिथ्यात्व हे। देव गुरु शास्त्र हमारा कल्याण कभी कर नही शकता है। देवका तो फरमान है कि मेरी सेवा करनां छोडकर जो मार्ग दिखाया है उस पर चल? परन्तु हम स्वयं वे मोक्ष मार्ग पर चले, नही तो देवमें भी शक्ति नही है, कि पर जीवोंका कल्याण कर शके, अैसी धारणा न होवे तब तक जीव मिथ्याद्रष्टि ही है।

प्रश्न—उपशम सम्यगद्रष्टि जीव कबसे कहा जाता हैं?

उत्तर—अन्तरकरण समाप्त होनेके समयसे लेकर वह जीव 'उपशामक' कहलाता है।

शंका—यदि अैसा है, अर्थात अन्तर करण समाप्त होने के प्रश्चात वह जीव उपशामक कहलाता है, तो इससे पूर्व अर्थात अधःकरणादि परिणामो के प्रारंभ होनेसे लेकर अन्तर करण होने तक उसी जीवके उपशामकपनाका अभाव प्राप्त होता है?

समाधान—अन्तर करण समाप्त होने के पूर्व भी वह जीव उपशामक ही था किन्तु मध्य दिपक करके शिष्योके प्रति बोधनार्थ "यह दर्शन मोहनीयका उपशामक है" इस प्रकार यति वृषभाचार्य ने (अपनी कपाय पाहुड) चुर्णीके उपशमका अधिकारमें

कहा है। इस लिये यह वचन अतीत भाग के उपशामकताका प्रतिषेध नही करता है।

प्रथम स्थितिसे और द्वितीय स्थितिसे तबतक आगाल और प्रत्यागाल होते रहते है, जबतककी आवलीं और प्रत्यावलीं मात्र काल शेष रहजाता है। इसके पश्चात अर्थात आवली प्रत्यावली मात्र काल शेष रहेनेके समयसे लेकर मिथ्यात्वकी गुणश्रेणी नही होती है, क्योकि उस समयमें उदयावली से बाहिर कर्म प्रदेसोका निक्षेप नही होता है। किंतु आयुकर्मको छोडकर शेप समस्त कर्मो की गुणश्रेणी होती रहती है, उस समय प्रत्यावलीसे ही मिथ्यात्व कर्मकी उदीरणा होती रहती है, किंतु प्रत्यावलीके शेप रह जानेपर मिथ्यात्व कर्मकी उदीरणा नही होती है, तब यह जीव चरम समयवर्ती मिथ्याद्रष्टि हुआ कहलाता है। (ध. ६ २३२)

प्रश्न—दर्शनमोहनीय कर्म अनिवृतिकरणके पहेले समयमें उपशान्त रहता है या नहि ?

उत्तर—अनिवृतिकरणमें प्रवेश करनेके प्रथम समयमें दर्शन मोहनीयका अपूर्व स्थिति कांडक होता है, अपूर्व अनुभाग कांडक होता है, और अपूर्व स्थिति बंध होता है, किन्तु गुणश्रेणी उसी प्रकारकी रहती है। अनिवृतिकरणके प्रथम समयमें दर्शन मोहनीय कर्म अप्रशस्तोपशामनाके अर्थात देशोपसामनाके द्वारा अनुपशान्त रहता है। शेप कर्म उपशान्त भी रहते है और अनुपशान्तभी रहते है। (ध. ६–२५४)

प्रश्न—प्रथमोपशम सम्यक्त्वके अभिमुख मिथ्याद्रष्टि के स्थिति वन्ध ओर स्थिति सत्व, चारित्रको प्राप्त मिथ्याद्रष्टिके कितना रहता है ?

उत्तर—प्रथमोपशम सम्यक्त्वके अभिमुख चरम समयवर्ती मिथ्याद्रष्टिके स्थिति बंध और स्थिति सत्व की अपेक्षा चारित्रको प्राप्त होनेवाला जीव ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, नाम : गौत्र और अन्तराय इन सात कर्मोकी अन्तः कोडाकोडी प्रमाण स्थितिको स्थापित करता है। (ध. ६-२६७)

प्रश्न—अपूर्वकरणके अन्तिम समयमे वर्तमान इस उपयुक्त मिथ्याद्रष्टि जीवका स्थिति सत्व, प्रथमोपशम सम्यक्त्वके अभिमुख अनिवृतिकरणके अन्तिम समयमे स्थित मिथ्याद्रष्टिके स्थितिसत्वसे संख्यातगुणित हीन कैसे है ?

उत्तर—नही, क्योंकि, स्थिति सत्व अपवर्तन करके संयमासंयमको प्राप्त होने वाला संयमासंयमके अभिमुख चरम समयवर्ती मिथ्याद्रष्टिके संख्यातगुणित हीन स्थिति सत्व के होनेमे कोइ बिरोध नही है। अथवा वहाके, अर्थात प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अभिमुख मिथ्याद्रष्टिके अनिवृतिकरणसे होनेवाले स्थिति घातकी अपेक्षा यहांके, अर्थात संयमासयमके अभिमुख मिथ्याद्रष्टिके, अपूर्वकरणसे होनेवाला स्थिति घात बहुत अधिक होता है। तथा, यह अपूर्वकरण, प्रथमोपशम सम्यक्त्वके अभिमुख मिथ्याद्रष्टि के अपूर्वकरणके साथ समान नही है,

क्योंकि, सम्यक्त्व, संयम और संयमासयम रूप फलवाले विभिन्न परिणामोके समानता होनेका विरोध है । तथा, सर्व अपूर्वकरण परिणाम सर्व अनिवृत्तिकरण परिणामोंसे अनंत गुणी हीन होते हैं, अैसा कहना भी युक्त नाही, क्योंकि, इस बातके प्रतिपादन करने वाले शूत्र का अभाव है ।

शंका—इस उपयुक्त पक्षकी सिद्धि कैसे होती हैं ?

समाधान—इस प्रथमोंपशम सम्यक्त्वके अभिमूख चरम समयवर्ती मिथ्याद्रष्टिके स्थिति बंध और स्थिति सत्वकी अपेक्षा चारित्रको प्राप्त होनेवाला जीव अन्तः कोडीकोडी प्रमाण स्थितिको स्थापित करता है इस शूत्रसे उपयुक्त संख्यात गुणित हीन स्थितिको स्थापित करता हे इस पक्षकी सिद्धि होती है । (ध. ६–२६९)

श्री समयसार आदि शास्रो पढकर बहोत जीव अपने को सिद्ध समान मानकर पुण्य रूप व्यवहारसे सर्वथा मुख मोडकर मात्र निर्गल प्रवृति करता है अैसे जीव कहते है कि "निश्चय नय से" मै त्रिकाल शुद्ध हूं । परन्तु त्रिकाल शुद्धका क्या अर्थ होता है, इसीका उसीको ज्ञान नही है। **त्रिकाल शुद्धका अर्थ वही अपनेको शिद्ध समान अर्थात केवल ज्ञान रूप; अनंत चतुष्टय मही जानता है. परन्तु इतना भी विवेक करता नही है कि, वर्तमानपे आप दुःखी तो हो तब अनंत सुख रूप कैसे हो ?**

शंका—निश्चय नयसे आत्मा त्रिकाल शुद्ध है ऐसा शास्त्रोमे तो लिखा है, तब वहां त्रिकाल शुद्धका क्या अर्थ करनां चाहिये ?

समाधान—त्रिकाल शुद्धका अर्थ मै तीनोकाळ ज्ञायक स्वभावी हूं कोई भी कालमे मै जड स्वभावी नही होता हूं यही अर्थ करनां चाहिये परन्तु त्रिकाल का अर्थ मै अनंत चतुष्टय मयी हूं. यह करनेसे महा विपरितता हो जावे ।

जितना २ अंग मे रागादिककी निवृती होगी इतना ही अंशमे शान्ति सुख मिलेगा इस पर द्रष्टि जाती ही नही है जिस कारण वही जीव शास्त्रकी ओथमें निर्गल प्रवृति कर रहा है। रागद्वेष की निवृति पर लक्ष है नही और **मिथ्या बकवाद करते है कि चारित्रकी प्राप्ति द्रष्टिका जोरसे होती है। परन्तु द्रष्टि मे जोर दिया जाता ही नही हे, इतना भी उसको ज्ञान नही है।** द्रष्टि कहो, प्रतित कहो, विश्वास कहो, ध्येय कहो, लक्षबिंदु कहो यही सब एक अर्थवाची है। **जैसि द्रष्टि चतुर्थ गुणस्थानमे होती है, ऐसी ही द्रष्टि केवली परमात्मा, एवं सिद्ध परमात्माको भी होती है। द्रष्टिमे कबी फर्क होता ही नही, क्योंकि, लक्ष बिंदु तो एक ही होता है।** द्रष्टि श्रद्धा गुणकी पर्याय है, जब चारित्र, चारित्र गुणकी पर्याय है। यथार्थमे तो एक गुणदुसरा गुणका कार्य कर ही

नही शकता है। एक गुणमे दुसरा गुणकी नास्ति है। चारित्र गुणकी वृद्धि नियमसे रागद्वेषकी निवृत्तिसे ही होती है और यही श्रध्धा कार्यकारी है। श्रध्धाका जोरसे चारित्रकी प्राप्ति होती है यह कहना मिथ्या है. क्योंकि, श्रध्धाका जोरसे चारित्र गुणकी निर्मल पर्याय प्रगट हो जावे तो, सर्वार्थ सिध्धि के देव तो श्रध्धा वाले है, वहां चारित्र. कयों प्रगट नही होता है। इससे सिध्ध होता है कि चारित्रकी प्राप्ति रागद्वषकी निवृत्ति से ही होती है।

प्रश्न— मिथ्यात्व अनंतानु बंधी आदि सात प्रकृतियोंका क्या युगपत नाश करता है या क्रमसे?

समाधान— नही, क्योकि तीन करण करके अनिवृति करणके चरम समयमें पहले अनंतानुबंधी चारका एकसाथ क्षय करता है। तत्पश्चात फिरसे तीन करण करके, उनमेसे अधःकरण और अपूर्वकरण इन दोनोको उलंघन करके अनिवृतिकरणके सख्यात भाग व्यतीत होजानेपर मिथ्यात्वका क्षय करता है। इसके अनंतर अन्तर्मुहूर्त व्यतीत कर सम्यग मिथ्यात्वका क्षय करता है। तत्पश्चात अन्तर्मुहूर्त व्यतीतकर सम्यगप्रकृतिका क्षय करता है। (ध. १-२१६)

प्रश्न— मिथ्यात्वकर्म का तीन भाग कब होता है?

उत्तर— "अन्तरकरणकरके" ऐसा कहेने पर काडकघातके

विना मिथ्यातत्व कर्मके अनुभागको धात कर. और उसे शम्पकत्व प्रकृति और सम्यगमिथ्यात्व प्रकृतिके अनुभाग रुप आकारसे परिणमाकर प्रथम उपशम सम्पकत्वको प्राप्त होनेके प्रथम समयमेही मिथ्यात्वरुप एक कर्मके तीन कर्मांस अर्थात भेद या खन्ड उत्पन्न करता है। (ध. ६-२३४)

प्रश्न— मिथ्याद्रष्टि जीव क्षेत्रसे अनंत हैं वह बुद्धिसे कैसे मापा जाता है?

उत्तर— लोकाकासके एक एक प्रदेशपर एक मिथ्याद्रष्टि जीवको निक्षिप्तकरके एक लोक हो गया, इसी प्रकार मनसे संकल्प करना चाहिये। इस प्रकार पुनः पुनः माप करनेपर मिथ्याद्रष्टि जीव राशि अनंत लोक प्रमाण होती है। इस प्रकार बुद्धिसे मिथ्याद्रष्टि जीव राशि मापी जाती है। इस विषयको यहापर उपसंहार रुप गाथा कहेते है कि,

लोगागास पदेसे एक्केक्के णिक्खिवेवि तह दिट्ठं।
एवं गणिज्जमाणे हवंति लोगा अणंता दु ॥ २३ ॥

अर्थ— लोकाकाससे एक एक प्रदेशपर एक एक मिथ्याद्रष्टि जीवको निक्षेप करनेपर जैसा जिनेंद्रदेवने देखा है उसी प्रकार पूर्वोक्त लोकप्रमाण के क्रमसे गणना करते जानेपर अनंत लोक होता है? [ध. ३. ३३]

शंका— लोक किसे कहते है?

समाधान— जगछ्रेणीके घनको लोक कहेते है।

शंका— जगच्छूणी किसे कहेते हैं ?

समाधान— सात रज्जु प्रमाण आकास प्रदेशोकी लंबाइको जगछूणी कहते हैं।

शंका— रज्जु किसे कहते हैं ?

समाधान— तिर्यगलोकके मध्यम विस्तारको रज्जु कहते है। (ध. ३-३३)

प्रश्न— नौग्रेवेक विमानवासी देवोंमें सम्यकत्व उत्पन्न होनेमें क्या कारण पडता हैं ?

उत्तर— नौग्रेवेक विमानवासी मिथ्यादृष्टि देव दो कारणोंसे प्रथम सम्यकत्व उत्पन्न करते है। कितनेही जातिस्मरणसे और कितनेही धर्मोपदेश शुनकर.

. नौग्रेयवेकोमे महद्धिदर्शन नही है. क्योकि, यहां उपरके देवोके आगमनका अभाव हैं। यहा जिनमहिमा दर्शन भी नही है, कयोकि, ग्रैवेयक विमानवासी देव नदीश्वरादिके महोत्सव देखने नही आते।

शंका—ग्रैवेयक देव अपने विमानोमें रहते हुए ही अवधिज्ञानसे जिन महिमाओंको देखते तो हैं, अतअेव जीन-महीमाका दर्शन भी उनके सम्यक्त्वकी उत्पतिमें निमित होता हैं, अैसा क्यो नही कहा ?

समाधान—नही, कयोकि. ग्रैवेयक विमानवासी देव वीतराग होते है, (अर्थात बुद्धिपूर्वक रागादिक वहोत ही कम है)

अतअेव जिन महिमाके दर्शनसे उन्हे विस्मय उत्पन्न नही होता।

शंका – ग्रैवेयक विमानवासी देवोके धर्म श्रवण किस प्रकार शंभव होता है ?

समाधान—नही, कयोकि, उनमें परस्पर संलाप होनेसे अहमिंद्रतासे विरोध नही आता। अतअेव वह संलाप ही धर्मोपदेश रुपसे सम्यक्त्वोत्पतिका कारण हो जाता हैं (ध. ६–४३६)

प्रश्न—मिथ्याद्रष्टिको जघन्य व उतकृष्ट बंधका कितना प्रत्यय है ?

उत्तर—पाच मिथ्यात्वमेंसे अेक प्रत्यय, मिथ्याद्रष्टि एक इन्द्रियसे एककायकी जघन्यसे विराधना करता है इस प्रकार दोअसंयम प्रत्यय, अनंतानुबंधी चतुष्टयका विसंयोजन करके मिथ्यात्वको प्राप्त हुअे जीवके आवली मात्र काल्तक अनंतानुबंधी चतुष्टय का उदय नही रहनेसे बारह कषायोमें तीन कषाय प्रत्यय, तीन वेदोंमे एक हास्य रति, अरति शोक, यह दो युगलोमेंसे एक युगल, तथा दश योगोमेंसे एक योग, इस प्रकार जघन्य १० दश प्रकार प्रत्यय होते हैं। पांच मिथ्यात्वमेंसे १ एक, एक इन्द्रियसे छ कायोंकी विराधना करता है, अतः सात असयम प्रत्यय, शोल्ह कषायमेंसे चार कषाय प्रत्यय. तीन वेदोंमेसे एक वेद, हास्य रति, अरति शोक यहे दो युगलोमेंसे एक युगल, भय व जुगप्सा और तेरह योग प्रत्ययोमेंसे एक योग इस पकार ये समी १८ अठारह उत्कृष्ट प्रत्यय होता है। (ध. ८ - २५)

सासादन गुणस्थान

जो जीव सम्यकत्व से गिरकर मिथ्यात्वमें जाता है उसकी बीचका अन्तर कालका नाम सासादन गुणस्थान है। सासादन सम्यगद्रष्टि का जघन्यकाल एक समय हैं और उत्कृष्टकाल छह आवली काल है। यह काल इतना सूक्ष्म है कि छद्मस्थ जीवोके ज्ञानगोचर नाही है।

प्रश्न—संख्यात वर्षायुपवाले मनुष्य सम्यकत्व व सासादनमें मरकर सासादन गुणस्थानमे आसकता है या नही?

उत्तर—इसके विषयमे दो मत है। अन्तर प्ररुपणा के शूत्र ७ मे बताया है कि सासादन सम्यगद्रष्टिका जघन्य अंतर काल पल्योपमके असंख्यातवे भाग प्रमाण होता है। इसका कारण **धवलाकारने** यह बतलाया है कि सासादनसे मिथ्यात्वमै आये हुए जीवके जब तक सम्यकत्व और सम्यकत्व मिथ्यात्व प्रकृतियोकी उद्वेलन घात द्वारा सागरोपम या सागरोपम पृथकत्व मात्र स्थिति नही रही जाती है, तबतक वह जीव पुन उपशम सम्यक्त्व प्राप्त नही कर शकता, जहांसे कि सासादन भावकी पुनः उत्पति हो शके। और उद्वलन घात द्वारा उक्त कियाके होनेमे कमसे कम पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण काल लगता ही है। प्रस्तुत प्रकरणमें शूत्रनां ७२ गतियागति चुलिकामें प्रश्न यह है कि

जो ज़ीव देव या नरक गतिसे मनुष्यभवमें सासादन गुणस्थान सहित आया है वह सासादन गुणस्थान सहित मनुष्यगतिसे केस प्रकार निर्गमन कर शकता है? **धवलाकरने** वह इस प्रकार तलाया हैं अि देवगतिसे सासादन गुणस्थानसहित मनुष्यगतिमें आकर व पल्योपमके असंख्यातवें भागका अन्तरकाल समाप्तकर उपशम सम्यकत्वी हो सासादन गुणस्थानमें आकर मरण करनेवाले जीवके उक्त बात घटीत हो जाती है। पर वह बनेगा केवल असंख्यात वर्षकी आयु वाले मनुष्योंमें. क्योंकि संख्यात वर्षकी आयुवाले मनुष्योमें उक्त उदवेलन घात के लिये आवश्यक पल्योपमका असंख्यात वा भागकाल प्राप्त ही नही हो शकेगा। यह व्यवस्था **भूतबली आचार्य** के मत अनुसार है। किंतु कषाय प्राभृत के चूर्णी शूत्रोके कर्ता **यतिवृषभाचार्यके** मतानुसार, सासादन सम्यकत्व सहित मनुष्यगतिमें आया हूआ जीव मिथ्याद्रष्टि हो कर पुनः द्वीतीयोपसम सम्यकत्वी हो उपशमश्रेणी चढ पुनः सासादन हो कर मर शकता है, और इसलिये यह बात संख्यात वर्षकी आयुवाले मनुष्योमें भी घटित हो शकती है, किंतु उपशम श्रेणीसे उतरकर सासादन गुणस्थानमें जाना "**भूतबली आचार्य**" नही मानते और इसलिये उनके मतसे सम्यकत्व सहित आकर सासादन सहित व सासादन सहित आकर सासादन सहित मनुष्यगतिसे निर्गमन करनां संख्यात वर्षायूष्कोमें संभव नही है (ध. ६–४४४)

प्रश्न—सासादन सम्यकद्रष्टि संख्यात वर्षायुष्क मनुष्य मरणकर कितनी गतिमे जाता है।

उत्तर—सासादन सम्यगद्रष्टि संख्यातवर्षायुष्क मनुष्य मरण करके तिर्यंच, मनुष्य और देवगतिमे जाता है। तिर्यंचोमे जानेवाला मनुष्य एकेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवोमे जाते है. परन्तु विकलेन्द्रिय जीवोमे नही जाता है। एकेन्द्रियोमे जानेवाला मनुष्य बादर पृथिवी कायिक, बादर जल कायिक, और बादर वनस्पति कायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्तकोंमे जाते है, अपर्याप्तकोंमे नही जाता है।

शंका—यदि एकेन्द्रियोमें सासादम सम्यगद्रष्टि जीव उत्पन्न होता है तो एकेन्द्रियोमें दो गुणस्थान होना चाहिये ? यदि कहाजाय कि एकेन्द्रियोंमे दो ही गुणस्थान होने दो सो भी नही वनता क्योंकि, द्रव्यानुयोगद्वारमे एकेन्द्रिय सासादन गुणस्थानवर्ती जीवोके द्रव्यका प्रमाण नहि बतलाया गया है ?

समाधान—एकेन्द्रियोमे उत्पन्न होनेवाले सासादन सम्यग द्रष्टि जीव अपनी आयुके अंतिम समयमें सासादन परिणाम सहित होकर उससे उपरके समयमे मिथ्यात्वको प्राप्त हो जाता है इस लिये एकेन्द्रियोमे दो गुणस्थान नही होते, केवल एक मिथ्या द्रष्टि गुणस्थान ही होता है। पंचेन्द्रिय तिर्यंचोमे जानेवाले सासादन सम्यगद्रष्टि जीव संज्ञी एवं गर्भोपक्रान्तिकोमे ही जाता है असज्ञी और सम्मूर्च्छिमोंमे नही जाता है। (ध. ६–४७०)

शंका—जिन जीवोने पहेले नरकायुका बंध किया है, और जिन्होंने पीछेसे सम्यगदर्शन उत्पन्न हुआ अैसे वद्धआपुष्क सम्यगद्रष्टियोंकी नरकमें उत्पति होती है, इसलिये नरकमें असंयत सम्यगद्रष्टि भले ही पाये जावें, परंतु सासादन गुणस्थान वालोंकी [मरकर] नरकमें उत्पति नही हो शकती है, कयोंकि सासादन गुणस्थानका नरकमें उत्पति की साथ विरोध है। इसलिये सासादन गुणस्थान वालेका नरकमे सदभाव कैसे पाया जाता है?

समाधान—नही, कयोकि, जिस प्रकार नरक गतिमें अपर्याप्त अवस्था के साथ सासादन गुणस्थानका विरोध है, उस प्रकार पर्याप्त अवस्था सहित नरक गति के साथ सासादन गुणस्थानका विरोध नहीं है। यदि कहोंकी नरकगतिमें अपर्याप्त अवस्था के साथ दूसरे गुणस्थानका विरोध क्यों है? तो उसका यह उतर है कि, यह नारकीयोंका स्वभाव है जौर स्वभाव दूसरे के प्रश्न के योग्य नही होता।

शंका—यदि अैसा है तो अन्य गतियोके अपर्याप्तकालमें भी सासादन गुणस्थानका सद्भाव मत हो, कयोंकि, अपर्याप्त कालके साथ सासादन गुणस्थानका विरोध है?

समाधान—यह कहना ठीक नही हे, कयोंकि, जिस तरह नारकीयोके अपर्याप्त कालके साथ सासादन गुणस्थानका विरोध है, उस तरह शेप गतियोंके अपर्याप्त कालके साथ सासादन गुणस्थानका विरोध नही है। (ध. १-२०५)

प्रश्न—सासादन गुणस्थान वर्ती सप्तम पृथ्वीका नारकी पंचेन्द्रिय तिर्यंचमे देवोके समान मारणान्तिक समुद्घात करता नही है।

शंका— जहांपर सासादन सम्यगद्रष्टियोका उत्पाद नही है, वहांपर भी यदि सासादन सम्यगद्रष्टि देव मारणांन्तिक समुद्घातको करते है, तो सातमी पृथिवी के नारकीयोंको सासादन गुणस्थान के साथ पंचन्द्रिय तिर्यंचोमें मारणान्तिक समुद्घात करना चाहिये, क्योंकि, सासादन गुणस्थानकी अपेक्षा दोनोमें कोइ विशेपता नही है अर्थात समान है ?

समाधान— यह कोइ दोप नही है, क्योंकि, देव और नारकी इन दोनोंकी भिन्न जाति हैं। सातमी पृथवीके नारकी गर्भजन्म वाले पंचेन्द्रियोंमे ही, उपजनेके स्वभाव वाले है, और देव पचेन्द्रियोमे ओर एकेन्द्रियोमे उत्पन्न होनेरुप स्वभाव वाले हैं, इस लिए दोनों समान जातिवाला नही है। जो जीस जातिमें प्रतिपन्न है, अर्थात् स्वीकृत है, यह उसीही जातिका माना जाता है, अैसा स्वीकार करना चाहीये, अन्यथा अनवस्था दोषका प्रसंग आ जायगा, इसलिये सातवी पृथवीके नारकी सासादन गुणस्थान के साथ देवोके समान मारणान्तिक समुद्घात नही करते, यह बात सिद्ध हुई। (ध. ४ - १६३)

सुमेरुपर्वतके मूल भागसे नीचे तीर्यंच सासादन सम्यगद्रष्टि जीव मारणान्तिक समुद्घात नही करते है।

शंका— यदि सासादन सम्यगद्रष्टि जीव मेरु तलसे नीचे मारणान्तिक समुद्घात नही करते है, तो मेरु तलसे स्थित भवनवासी देवोंमें उनकी उत्पति भी नही होनी चाहिये ?

समाधान— यह कोई दोष नही है, क्योंकि, मेरु तलसे नीचे सासादन सम्यगद्रष्टि जीवोंका मारणान्तिक समुद्घात नही होता है, यह सामान्यअर्थात द्रव्यार्थिक नयका वचन है। किन्तु पर्यायार्थिक नयकी विवक्षासे कथन करने पर तो वे नारकीयोंमें अथवा मेरुतलमे अधोभाग वर्ती एकेन्द्रिय जीवोंमे मारणान्तिक समुद्घात नही करते है यह परमार्थ है। (ध. ४ - २०४)

एकेन्द्रिय जीवोंको मात्र मिथ्यात्व गुणस्थान होता है।

शंका— एकेन्द्रिय जीवोंमें सासादन गुणस्थान भी सुननेमें आता है. इस लिये उनके केवल एक मिथ्यात्व गुणस्थान होता है यह कैसे बन शकेगा ? शूत्र ना. ३६ - १.

समाधान— नही; क्योंकि, षट खंडागम शूत्रमें अकेन्द्रियादिकों के सासादन गुणस्थान का निषेध किया है।

शंका— दोनो वचनो में यह वचन शूत्र रूप है, और यह शूत्र रूप नही है कैसे जाना जायगा ?

समाधान— उपदेशके वीना दोनोंमेंसे कौन वचन शूत्र रुप है यह नहीं जाना जा शकता है, इसलिये दोनो वचनोंका संग्रह करनां चाहिये।

शंका— दोनों वचनोको संग्रह करनेवाला संशय मिथ्याद्रष्टि हो जावेगा ?

समाधान— नही, क्योंकि; संग्रह करनेवाले के 'यह शूत्र कथीत ही है'' इस प्रकारका श्रद्धान पाया जाता है, अतएव उसके संदेह नही हो शकता हे। कहा भी हें कि

सुतादो तं सम्मं दरिसिज्जंत जदा ण सद्दहदि।
सोचेय हवदि मिच्छाइट्ठी हू तदो पहुडि जीवो॥ १४२॥

अर्थ— शूत्रसे आचार्यादिके द्वारा भले प्रकार समजाये जाने पर भी यदि वह जीव विपरीत अर्थको छोडकर समीचीन अर्थका श्रद्धान नही करता है, तो उसी समयमें वह सम्यगद्रष्टि जीव मिथ्याद्रष्टि हो जाता है। (ध. १–२६१)

प्रश्न—एकेन्द्रियमें जाने वाला सासादन सम्यगद्रष्टि कौन कौन कायमें जाता है?

उत्तर—एकेन्द्रियमें जानेवाला संख्यात वर्ष आयुष्क सासादन सम्यगद्रष्टि तिर्यंच बादर पृथवीकायिक, बादर जल कायिक, बादर वनस्पति कायिक, प्रत्येक शरीर पर्याप्तकोमें ही जाता हैं, अपर्याप्तको में नही जाता। सूत्रना १२१–६

इसके विषयमे अनेक मत है। (ध. ६–४६०)

'पूज्यपाद स्वामी' ने सर्वार्थ सिद्धिमें लिखा है कि कृष्ण, नील, और कापोत लश्यावाले सासादन सम्यगद्रष्टि जीवो का स्पर्शन प्रमाण बताते हुअे लिखाहै कि सासादन सम्यगद्रष्टि जीव अेकेन्द्रियोमें उत्पन्न नही होते हैं। देखो स. सि. १–८ स्पर्शन प्ररूपणा।

किंतु उन्होंने तिर्यंच, मनुष्य, व देवगति वाले सासादन सम्यगद्रष्टियेोके स्पर्शनका जो प्रमाण बताया हैं उससे स्पष्ट होता है कि, उन्हे सासादन सम्यगद्रष्टियेोंका एकेन्द्रिमें उत्पन्न होना स्वीकार था। (देखो श्रुतसागर टीकासे लिये गये टीप्पण) **तत्वार्थ राजवार्तीक और गोमट्टसार जीवकान्डमे** लिखा है कि, पंचन्द्रियेों को छोंडकर शेष समस्त एकेन्द्रियेों और विकलेन्द्रियेोमें केवल एक मिथ्याद्रष्टि गुणस्थानकाही विधान पाया जाता हे (त. रा. ९–७ गो. जी. ६७७) किंतु कर्मकान्डमें एकेन्द्रिय व विकलेन्द्रिय जीवोंकी अपर्याप्त अवस्थामें सासादन सम्यकत्वका विधान किया गया है। परंतु लब्ध अपर्याप्तक, साधारण, सूक्ष्म तथा तेज और वायुकायिक जीवोमें उषका निषेध हैं [गा. ११३–११५]

'**अमितगतिआचार्यने** पंचसंग्रहमे पृष्ट ७५ मे सातों अपर्याप्त और संज्ञी पर्याप्त इन आठ जीव समासोंमें सासादन सम्यकत्वका विधान किया हे, जिसके अनुसार विकलेन्द्रिय तथा शूक्ष्म जीवोमें भी सासादन सम्यकत्वका उत्पन्न होना संभव है।

भगवती पन्नापना व जीवाभिगम आदि श्वेताम्बर आगम ग्रन्थोके मतानुसार

एकेन्द्रिय जीवोमें सासादन गुणस्थान नही होता हैं, परंतु द्वीन्द्रियादि विकलेन्द्रियेोमें होता है। इसके विपरीत श्वेताम्बर कर्म ग्रन्थोमें एकेन्द्रिय व द्वीन्द्रिय आदि बादर अपर्याप्तकोमें

सासादन गुणस्थानका विधान पाया जाता है। परंतु तेन वायुकायिक जीवोमें सासादन गुणस्थानका यहां भी निषेध है (देखो कर्मग्रन्थ ४ गाथा ३–४५–४९ व पंचसंग्रहद्वार १. गा. २८–२९) (ध. ६–४६०)

प्रश्न—सासादन गुणस्थानमे जघन्य व उतकृष्ट बंधका कितना प्रत्यय हे।

उत्तर—एकइन्द्रियसे एक कायकी विराधना ऐसे दो असंयम प्रत्यय, शोल्ह कषायोमेसे चार कषाय, तीनो वेदोमेसे एक वेद, हास्य रति, और अरति, शोक यह दो यूगलोमेसे १ एकयूगल, १३ तेरह योगोंमेसे एक योग, इस प्रकार जघन्यसे १० प्रत्यय और उतकृष्टसे १७ सतराह प्रत्यय होता है क्योंकि, उसके मिथ्यात्वका उदय नही है। [ध. ८–२५]

मिश्र गुणस्थान

मिश्र गुणस्थानमे आत्मामे न मिथ्यात्व रूप भाव होता है न सम्यकत्व रुप भाव होता है परंतु मिश्र रुप भाव होता है। दही और शक्कर मिलाहुवा शीखन्डकी माफक मिश्र स्वाद आता है। मिश्र गुणस्थानका काल सासादन गुणस्थानके कालसे विशेष काल है तो भी वह इतनां शुक्ष्म काल हें कि वह छद्मस्थके ज्ञान गौचर नही है। मिश्र गुणस्थानमे मरण नही होता है।

प्रश्न— सम्यगमिथ्याद्रष्टि जीव अपने गुणस्थानसे पीछे संयमको अथवा संयमासंयमको क्यों प्राप्त नही होता ?

उत्तर— नही, क्योंकि, उस सम्यगमिथ्याद्रष्टि जीवका मिथ्यात्व सहित मिथ्याद्रष्टि गुणस्थानको अथवा सम्यकत्व सहित असंयत गुणस्थानको छोडकर दुसरे गुणस्थानमें गमनका अभाव है।

शंका— अन्य गुणस्थानमें नही जानेका क्या कारण है ?

समाधान— ऐसा स्वभाव ही है। और स्वभाव दूसरेके प्रश्न के योग्य नही, क्योंकि, उसमे विरोध आता है। (ध.४-३४३) कहाभी हैं कि,

ण य मरइ णेव संजममुवेइ तह देशसंजम वावि।
सम्मामिच्छादिदिट्ठी ण उ मरणंतं समुग्घाओ॥

अर्थ— सम्यगमिथ्याद्रष्टि जीव न तो मरता है, न संयमको प्राप्त होता हैं, न देशसंयमको भी प्राप्त होता है, तथा उसके मारणान्तिक समुद्घात भी नही होता है। (ध.४-३४९)

प्रश्न मिश्रगुणस्थानमें बंधका जघन्य, उतकृष्ट कितना प्रत्यय हैं ?

उत्तर— एक इन्द्रियसे एक कायकी विराधना ऐसे दो असंयम प्रत्यय, १२ बाराह कषायमें तीन कषाय, तीन वेदोमें एक वेद, हास्य, रति, और अरति, शोक, यह दो युगलोमें एक युगल, और दश योगोमें १ योग ऐसे जघन्य नौ प्रत्यय होता है। उतकृष्टसे अनंतानुबंधीकषायका प्रत्यय छोडकर शेष १६ सोलाह प्रत्यय हैं। (ध. ८—२६)

अव्रत सम्यगद्रष्टि

इस गुणस्थानमे सम्यगदर्शनकी प्राप्ति हो जाती है। इस गुण स्थानमे उपशम सम्यगदर्शन, क्षयोंपशम सम्यगदर्शन, और क्षायक सम्यगदर्शन होता है। अव्रत सम्यगद्रष्टि बुद्धि पूर्वक त्रस तथा स्थावर जीवोको मारनेका भावका त्याग नही कर शकता है। अव्रत सम्यगद्रष्टिसे संकल्पी हिंसा हो जाती है। जसे विभीषणने निरपराधी दशरथ राजा तथा जनक राजा पर अपना बधु रावणके प्रति रागके कारण शस्त्र चलाकर घात किया, यह घात संकल्पी हिंसा है। जैसे भरत महाराजा तीन लडाइमे हार गया, तब कषायके आवेशमे आकर अपना भाइ बाहुबलीजी, जो, निरपराधी है उसपर चक्र चलादिया, यह सकल्पी हिंसा है। सम्यगद्रष्टि जीवोको श्रद्धाकी अपेक्षा सात भय नही है, परन्तु चारित्रकी अपेक्षा उसीको भय है। अव्रत सम्यगद्रष्टि जीव सपूर्ण रितीसे सप्त व्यसनका त्याग कर नही शकता है। संपूर्ण त्याग तो पंचम गुण स्थानमे हो होता है। जैसे युधिष्ठिरने जुवा खेला। इस प्रकारका रागका सपूर्ण रितीसे त्याग नही होता है। यह आत्मा का पुरुषार्थकी कमजोरी है। अव्रत सम्यगद्रष्टि [illegible] मद्य, मांस, मदिरा और पंच उम्बर फलका संपूर्ण रितिसे

त्याग हो जाता है, परन्तु विलायती दवा, बजारकी मिठाइ, और अमर्यादित खादय पदार्थका संपूर्ण रितीसे त्याग कर नही शकता है। अष्टमूल गुणोका अतिचार सहित पालन करता है। और अष्ट मूल गुणोका अतिचार रहित पालन पंचमगुणस्थानमेही होता है। नारकी अव्रती सम्यगद्रष्टिमे विशेषकर संकल्पी हिंसा ही होती हैं। अप्रत्याख्यानकषायमे भी असंख्यात लोक प्रमाण भेद है। अव्रत सम्यगद्रष्टिमे तीव्र कृष्ण लेश्या भी रह शकती हैं एवं परम शुक्ल लेश्या भी रह शकती है। मध्यम भेद असंख्यात लोक प्रमाण है। **अव्रत सम्यगद्रष्टिसे मायाचारिका सेवन भी हो जाता है, जैसे रामचन्द्रजीने सीताजीको कहा की ,आप तीर्थ क्षेत्रका दर्शनके लिये पधारो और इस आडमे शीताजीको एकाकी जंगलमे छोड देनेका आदेश अपना सेनापतिको दिया यह भी तो मायाचारी है।**

जिस मनुष्योने सम्यगदर्शन होनेके पहेले मिथ्यात्व अवस्थामे मनुष्य, तिर्यंच, और नरकायुको बाध लिया है, वह जीव पीछे सम्यकत्वको ग्रहणकर यदि मनुष्य और तिर्यंचायुका बंध किया है तो नियमसे भोगभूमिमें ही जावेगा, परन्तु विदेह क्षेत्रमे नही जाता है। मनुष्य मिथ्यात्व अवस्थामेही मरणकर विदेह क्षेत्रमे मनुष्य पने उत्पन्न हो शकता हैं, सम्यगद्रस्टि मनुष्य मरणकर सिद्धा विदेहमे मनुष्य रुपमे उत्पन्न नही होता है। और जीस जीवने नरकायुका बंध किया है बाद मे सम्यकत्वकी प्राप्ति की है वह

पहेली नरकमेही जावेगा इससे आगे नही जाता है।

सम्यगद्रष्टिकोही धर्मध्यान होता है मिथ्याद्रष्टिको कभी भी धर्मध्यान नही होता है। **धर्म ध्यानका चार पाया दिखाया है। १ आज्ञाविचय, १ अपायविचय ३ विपाक विचय ४ संस्थान विचय। यह धर्म ध्यान नही है, यह तो व्यवहार र्म ध्यान अर्थात पुण्य भाव है, वह तो अभवी मिथ्याद्रष्टि को भी होता है। यथार्थमे धर्म ध्यान तो वीतराग भाव का नाम है।** चोथे गुण स्थानमे पहेलापाया, पंचमगुणस्थानमें दुसरा पाया, छट्ठेगुणस्थानमें तीसरा पाया, और सातवे गुणस्थानमे चोथा पाया आगम ग्रन्थोमें लिखा है, इसीका परमार्थ अर्थ यह है कि अनंतानुबंधी कषायका अभाव, होना पहेला पाया. अप्रत्याख्यान कषायका अभाव होना दुसरा पाया, प्रत्याख्यान कषायका अभाव होना त्रीजा पाया, त्था प्रमाद का अभाव होना, चोथा पाया हैं। इसी प्रकार परमार्थ अर्थ समजना चाहिये।

चतुर्थगुणस्थानवाला सवार्थ सिद्धिका देव आत्म चिंतवनादि कार्य करे तहा भी निर्जरा नांही बंध घना होय, और पंचमगुण-स्थान वाला विषय सेवनादि कार्य करे तहा भी उसके निर्जरा घनी और बंध भी थोडा होय। तथा छट्ठा गुणस्थानवाला आहार विहारादि क्रिया करे तिसकाल विषे भी उसको निर्जरा पंचमगुण-स्थान वालेसे विशेष कही है यह कथन उदयकी अपेक्षासे कहा

है, अर्थात चोथा गुणस्थान वालाको तीन कषायका बंध पडता है; पंचम गुणस्थान वालाको दो कषायका बंध पडता है, छट्ठा गुणस्थान वालाको मात्र एक संज्वलन कषायका बंध पडता है, यह तो उदयकी अपेक्षासे कथन हे, परन्तु उदीरणाकी अर्थात वर्तमान बुद्धि पूर्वक अपराधकी अपेक्षासे कथन किया जावे तो सर्वार्थ सिद्धि देवको परम शुक्ल लेस्या है और पंचम तथा छट्ठा गुणस्थानवर्ती जीवोके उतकृष्ट पीत लेस्या है। अर्थात चोथा गुणस्थानवालाको अप्रत्याख्यान का मंदतर कषायका उदय है और पंचम तथा छठा गुणस्थानवर्तीको प्रत्याख्यान तथा संज्वलन कषायका तीव्र उदय है।

प्रश्न— मनुष्य प्रथमोपशम सम्यक्त्वकी प्राप्ति कबकर शकता है?

उत्तर— मिथ्याद्रष्टि मनुष्य पर्याप्तक प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाले गर्भोपकान्तिक मिथ्याद्रष्टि मनुष्य आठ वर्षके लेकर उपर किसी समयभी उत्पन्न करते है इससे नीचेके कालमे नही कर शकता हैं। (ध. ६–४२९)

प्रश्न— देवोमें प्रथमोपशम सम्यकत्वकी प्राप्ति कब होती है?

उत्तर— पर्याप्तकोमे प्रथम सम्यकत्व उत्पन्न करनेवाले देव अन्तमुहूर्त कालसे लेकर उपर उत्पन्न करते है, उससे नीचेके कालमें नही कर शकता है, क्योकि, पर्याप्तकालके प्रथम समयसे लेकर अन्तमुहूर्त काल तक तीन प्रकारका करणपरिणामोका अभाव

पाया जाता है। (ध. ६–४३१)

प्रश्न— संज्ञी तिर्यंचोमें प्रथम सम्यक्त्व कोन प्राप्त कर सकता है?

उत्तर—संज्ञी तिर्यंचोमें भी प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करनेवाले जीव गर्भोपक्रान्तिक जीवोमेंही उत्पन्न करते है, सम्मूर्च्छिमयोमें उत्पन्न नही होता है।

सब द्विप समुद्रमें तिर्यंच प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करते है।

शंका— भोगभूमिके प्रतिभागी समुद्रोमें मत्स या मगर नही है ऐसा वहा त्रस जीवोंका प्रतिषेध किया गया है. इसलिये उन समुद्रोंमें प्रथमसम्यक्त्वकी प्राप्ति मानना उपयुक्त नही है?

समाधान— यह कोइ दोष नही है. क्योकि, पूर्वभवके वैरी देवोंके द्वारा उन समुद्रोमें डालेगये पंचेन्द्रिय तिर्यंचोकी संभावना हो सकती है। (ध. ६–४२५)

प्रश्न— नारकगतिमें सम्यक्त्वकी प्राप्ति कब होती है?

उत्तर— पर्याप्त होनेके प्रथम समयसे लगाकर तत्पायोग्य अन्तर्मुहूर्त तक नियमसे जीव प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न नही करते, क्योंकि, अन्तर्मुहूर्त कालके विना प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करनेयोग्य विशुद्धिकी उत्पत्ति असंभव है।

समाधान— नही, पर्यायार्थिक नयके अवलंबनसे प्रत्येक समय प्रथक प्रथक सम्यकत्वकी उत्पति होनेपर जीवनके द्वीचरम समय तकभी सम्यकत्वकी उत्पतिका प्रतिषेध नही कहा जा शकता, क्योंकि, दर्शन मोहनीय कर्मके उदयके विना उत्पन्न होनेवाले चरम समयवर्ती सासादन भावकी भी उपचारसे प्रथम सम्यकत्व संज्ञा मानी जाती है। अथवा ऐसा शूत्र दशामर्षक 'हें' जिससे जीवनके अवसान कालमें भी प्रथम सम्यकत्वके ग्रहणका प्रतिषेध सिद्ध हो जाता हैं (ध. ६–४२०)

प्रश्न— प्रथमोपशम सम्यकत्व कब और कोन प्राप्त कर शकता है?

उत्तर—दर्शन मोहनीय कर्मको उपशमाता हुआ, यह जीव उपशमाता हैं। चारोंही गतियोमें उपशमाता है। पंचेन्द्रियोमें उपशमाता हुआ संज्ञीयोमेंही उपशमाता है, असंज्ञीओमें नही उपशमाता हैं। संज्ञीओमें उपशमाता हूआ गर्भोपक्रान्तिकोमे, अर्थात गर्भज जीवोमै उपशमाता है सम्मूर्च्छियोमे नही उपशमाता। गर्भोपक्रान्तिकोमे उपशमाता पर्याप्तकोमे उपशमाता हैं, अपर्याप्तकोमे नही, पर्याप्तकोमे उपशमाता हुआ संख्यात वर्षकी आयु वाले जीवोमे भी उपशमाता है, और असंख्यातवर्षकी आयु वालेमें भी उपशमाता है। कहा भी है कि,

सायारे पट्ठवओ णिट्ठवओ मज्झिमो य भयणिज्जो।
जोगे अण्णदरम्मि दु जहण्णए तेउलेस्साए ॥

अर्थ—साकार अर्थात ज्ञानोपयोगकी अवस्थामे जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्वका प्रस्थापक, अर्थात प्रारंभ करनेवाला होता है। किन्तु निष्टापक, अर्थात उसे संपन्न करनेवाला, मध्य अवस्थावर्ती जीव भजनीय है। अर्थात वह साकार उपयोगी भी हो शकता है, और अनाकार उपयोगी भी हो शकता है। मनोयोग आदि तीनों योगोंमेंसे किसी भी एक योगमें वर्तमान जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त कर शकता है। तथा तेजो लेश्या के जघन्य अंशमें वर्तमान जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करता है। (ध. ६-२३९)

प्रश्न—कोनसी लेश्यामे प्रथमोपसम सम्यक्त्वकी प्राप्ति होती है ?

उत्तर—कृष्णादि छहो लेश्याओंमेंसे किसी एक लेश्या वाला हो, किन्तु यदि अशुभ लेश्या हो तो हीयमान होना चाहिये, और यदि शुभ लेश्या हो तो वर्धमान होना चाहिये ? (ध. ६-२०७)

प्रश्न—औदारिक मिश्र काय योगी जीवोमे उपशम भाव क्यों नही होता है ?

उत्तर—नही, क्योंकि, चारो गतियोके उपशम सम्यगदृष्टि जीवोंका मरण नही होनेसे औदारिक मिश्र काययोगमें उपशम सम्यक्त्वका सद्भाव नही पाया जाता है।

शंका—उपशम श्रेणी पर चढते और उतरते हुए संयत

जीवोंका उपशम सम्यक्त्वके साथ तो मरण पाया जाता है ?

समाधान—यह कथन सत्य है, किन्तु उपशम श्रेणीमें मरनेवाले वह जीव उपशम सम्यकत्वके साथ औदारिक मिश्र काय योगी नही होता हैं, क्योंकि, देवगतिको छोडकर उनकी अन्यत्र उत्पतिका अभाव है। (ध. ५–२१९).

प्रश्न—उपशम सम्यक्त्वके साथ मनःपर्यय ज्ञान कैसे रहते है ?

उत्तर—उपशम सम्यगद्रष्टिके मनः पर्यय ज्ञान होता है इसका कारण यह है कि मनःपर्यय ज्ञानकी साथ उपशम श्रेणी से उत्तरकर प्रमत गुणस्थानको प्राप्त हुए जीवके उपशम सम्यकत्वके साथ मनःपर्यय ज्ञान पाया जाता हे। कितु मिथ्यात्वसे पीछे आये हुए उपशम सम्यगद्रष्टि प्रमत संयतके मनःपर्यय ज्ञान नही पाया जाता है, क्योंकि, प्रथमोपसम सम्यगद्रष्टि प्रमत संयतके मनःपर्यय ज्ञानकी उत्पति संभव नही है। (ध. २–८२२)

प्रश्न—दर्शन मोहका क्षपण करनेका आरंभ कहां होता है ?

उत्तर—अढाई द्वीप समुद्रोमें स्थित पन्द्रह कर्म भूमियोमें जहा जिस कालमें जिन केवली और तीर्थंकर होते है वहां उस कालमें आरम्भ करता है।

शंका—पन्द्रह कर्म भूमियोमें ऐसा सामान्यपद कहनेपर कर्म भूमियोंमें स्थित देव, मनुष्य, और तिर्यंच इन सभीका ग्रहण

क्यो नही प्राप्त होता है ?

समाधान—नहीं प्राप्त होता है, क्योंकि, कर्म भूमियोमे उत्पन्न हुए मनुष्यकी उपचारसे कर्मभूमि यह संज्ञा की गयी है।

शंका—यदि कर्म भूमियोमे उत्पन्न हुए जीवोकी 'कर्म भूमि' यह संज्ञा हो तो भी तिर्यंचोका ग्रहण प्राप्त होता है, क्योंकि उनकी भी कर्म भूमियोमे उत्पति सभव है ?

समाधान—नही, क्योंकि, जिनकी वहापर ही उत्पति होती है और अन्यत्र उत्पति संभव नही हे उनही मनुष्योंके पन्द्रह कर्म भूमियोका व्यपदेश किया गया हैं. न कि स्वयंप्रभ पर्वतके पर भागमें उत्पन्न होनेसे व्यभिचार को प्राप्त तिर्यंचोके।—

कहा भि है कि—

दसण मोहक्खवणापट्ठवओ कम्मभूमिजादो दु।
णियमा मणुसगदीए णिट्ठवओ चावि सव्वत्थ ॥१७॥

अर्थ—कर्म भूमिमें उत्पन्न हुआ, और मनुष्यगतिमें वर्तमान जीव ही नियमसे दर्शन मोहकी क्षपणाका प्रस्थापक, अर्थात प्रारम्भ करनेवाला होता है। किन्तु उसका निष्टापक, अर्थात पूर्ण करनेवाला सर्वत्र अर्थात चारोगतिमें होता है।

शंका—मनुष्योमे उत्पन्न हुअे जीव समुद्रोमें दर्शन मोहनीयकी क्षपणा का कैसे प्रस्थापन करते है ?

समाधान— नही, क्योंकि विद्या आदिकके वशसे समुद्रोमें आये हुए जीवोके दर्शन मोहका क्षपणा होना संभव है।

(ध. ६. २४५)

प्रश्न— किस कालमें दर्शन मोहकी क्षपणा हो शकती है ?

उत्तर— दुषमा, दुषमादुषमा, सुपमासुषमा, और सुपमा कालमें उत्पन हुए जीवोंके ही दर्शन मोहनीयकी क्षपणा नही होती है, अविशिष्ट दोनों कालोंमें उत्पन्न हुए जीवोके दर्शन मोहनीय कर्मकी ,क्षपणा होती है। इसका कारण यह है कि, एकेन्द्रिय पर्यायसे आकर (इस अवसर्पिणीके) तीसरे कालमे उत्पन्न हुए वर्द्धनकुमार आदिकोके दर्शन मोहकी क्षपणा देखी जाती है।

जो इसी भवमे तीर्थंकर या जिन होनेवाले है वे तीर्थंकरादिककी अनुपस्थितिमे तथा सुषम दुपम कालमे भी दर्शन मोहका क्षनण करते हे। उदाहरणार्थ कृष्णादि। (ध ६-२४७)

प्रश्न— सम्यगद्रष्टि जीवोंकी उत्पति कहा नही होती और दर्शन मोहकी क्षपणा कहा होती है ?

उत्तर— भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिष्क देव द्वितीयादि छोह पृथिवीके नारकी, सर्व विकलेन्द्रिय, सर्वलब्धपर्याप्तक, और स्त्री वेदियोमें समगद्रष्टि जीवोकी उत्पत्ति नही होतीं है, तथा मनुष्यगतिके अतिरिक्त अन्य गतियोमे दर्शन मोहनीय कर्मकी क्षपणाका अभाव है (ध.५-२१५)

प्रश्न—असंयत सम्यगद्रष्टि देवोके अपर्याप्तकालमें औपशमिक सम्यक्त्व कैसे पाया जाता है ?

समाधान—वेदक सम्यकत्वको उपशमाकरके और उपशम श्रेणी पर चढकर फिर वहांसे उतरकर प्रमत संयत, अप्रमतसंयत, असंयत और संयतासंयत उपशम सम्यगद्रष्टि गुणस्थानोंसे मध्यम तेजो लेश्याको परिणत होकर और मरण करके सौधर्म इसान कल्पवासी देवोमें उत्पन्न होनेवाले जीवोके अपर्याप्त कालमें औपशमिक सम्यक्त्व पाया जाता है। तथा उपर्युक्त गुणस्थानवर्ती जीव उतकृष्ट तेजोलेश्याको अथवा जघन्य पद्मलेश्याको परिणत होकर यदि मरण करते है, तो औपशमिक सम्यकत्वके साथ शनतकुमार और महेन्द्र कल्पमे उत्पन्न होते है। तथा, वही उपशम सम्यगद्रष्टि जीव मध्यम पद्मलेश्याको परिणत होकर यदि मरण करे, तो ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर लान्तव, कापिष्ट शुक्र और महाशुक्र कल्पोमे उत्पन्न होते है। तथा वही उपशम सम्यग्द्रष्टि जीव उत्कृष्ट पद्मलेश्याको अथवा जघन्य शुक्ल लेश्याको परिणत होकर मरण करे, तो औपशमिक सम्यकत्वके साथ सतार, सहस्त्रार, कल्पवासी देवोमे उत्पन्न होते है। तथा वही सम्यगद्रष्टि जीव मध्यम शुक्ल लेश्यासे परिणत होते हुए यदि मरण करे तो उपशम सम्यकत्वके साथ आनत प्राणत, आरण, अच्युत नौग्रेवेयक विमानवासी देवोमे उत्पन्न होते है। तथा पूर्वोक्त उपशम सम्यगद्रष्टि जीव उतकृष्ट शुक्ललेश्याको परिणत होकर यदि मरण करे, तो उपशम सम्यक्त्व के साथ नौअनुदिश और पाच अनुत्तर विमानवासी देवोमे उत्पन्न होते है। इस कारण सौधर्म स्वर्गसे लेकर उपरके सभी असयत

सम्यगद्रष्टि देवोके अपर्याप्तकालमे औपशमिक सम्यक्त्व पाया जाता है। (ध. २–५५९)

प्रश्न—नौ अनुदिश और पांच अनुतर विमानोके पर्याप्त कालमे औपशमिक सम्यकत्व किस कारणसे नही होता हैं?

समाधान—नौअनुदिस और पाच अनुतर विमानोमे विद्यमान देन तो औपशमिक सम्यकत्वको प्राप्त होते नही हे, क्योंकि, वहांपर, मिथ्याद्रष्टि जीवोंका अभाव है।

शंका—भलेही वहां मिथ्याद्रष्टि जीवोंका अभाव रहा आवे, किन्तु यदि वहां रहनेवाले देव औपशमिक सम्यकत्वको प्राप्त करे, तो इसमे क्या विरोध आता है?

समाधान—ऐसा कहना भी युक्ति–युक्त नही है, क्योकि औपशमिक सम्यकत्वके अनंतर ही औपशमिक सम्यकत्वका पुनः ग्रहण करना स्वीकार करने पर अनादि मिथ्याद्रष्टि जीवके प्रथमोपशम सम्यक्त्वकी प्राप्तिके अनंतर–पश्चात अवस्थामेही मिथ्यात्वका उदय नियमसे होता है। किन्तु जिसके द्वितीय–तृतियादि वार उपशम सम्यकत्वकी प्राप्ति हुई हैं, उसके औपशमिक सम्यकत्व के पश्चात अवस्थामें मिथ्यात्वका उदय भाज्य है, अर्थात कदाचित मिथ्याद्रष्टि होकरके वेदक सम्यकत्व, या उपशम सम्यकत्वको प्राप्त होते है, कदाचित सम्यगमिथ्याद्रष्टि होकरके वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त होता है इत्यादि, इस कषाय प्राभृत के गाथासूत्रके साथ पूर्वोक्त कथनका विरोध आता हे। यदि कहा

जाय कि, अनुदिश और अनुतर विमानोमे रहनेवाला वेदक सम्यग-द्रष्टि देव औपशमिक शम्यक्त्वको प्राप्त होता है, सो भी वात नही है, क्योंकि, मनुष्यागतिके सिवाय अन्या तीन गतियोंमे रहनेवाला वेदक सम्यगद्रटि जीवोंके दर्शन मोहनीय के उपशमन करनेके कारणभूत परिणामोका अभाव ही हैं। यदि कहा जावे कि, वेदक सम्यगद्रष्टिके प्रति मनुष्योसे अनुदिशादि निमानवासी देवोंके कोइ विशेषता नही है, अतएव जो दर्शन मोहनीयके उपशमन योग्य परिणाम मनुष्योके पाये जाते है वे अनुदिश ओर अनुतर विमानवासी देवोमे नियमसे होना चाहिये, शो भी कहना युक्ति संगत नाही है, क्योकि, संयमको धारण करनेकी तथा उपशम श्रेणीके समारोहण आदिकी योग्यता मनुष्योके ही होने के कारण अनुदिश और अनुतर विमानवासी देवोंमें और मनुष्योंमे भेद देखा जाता हैं। तथा उपशम श्रेणीमे मरण करके औपशमिक सम्यकत्वके साथ देवोंमे उत्पन्न होनेवाले जीव औपशमिक सम्यकत्वके साथ छोह पर्याप्तिको नही समाप्त कर पाता है, क्योकि अपर्याप्त अवस्थामे होनेवाले उपशम सम्यकत्वके कालसे छोह पर्याप्तियोके समाप्त होनेका काल अधिक पाया जाता हैं. इसलिये यह वात सिद्ध हुई कि, अनुदिश और अनुतर विमानवासी देवोंके पर्याप्त कालमे औपशमिक सम्यकत्व नहीं होता है। (ध. २-५६६)

प्रश्न— जैसे ज्ञान चेतना और दर्शन चेतना लब्धि और उपयोग रूप रहती है तैंसे श्रद्धागुण लब्धि और उपयोग रूप रहता

है या नही ?

उत्तर— ज्ञानचेतना और दर्शन चेतनाको जाननेके लिये पांच इन्द्रिया और मन निमित्त है इसलिये जिस इन्द्रियमे वह कार्य करता हैं उसी इन्द्रियमे तो ज्ञानचेतना उपयोगरुप है और बाकीकी इन्द्रियोंमें उसी वख्त ज्ञानचेतना लब्धि रुप है. परन्तु श्रद्धादि अनत गुणोंमे अैसी बात नही है कारणके उसका कार्य देखना जानना नही. इस लिये और गुणोंमे लब्धि और उपयोगका भेद पडता नही है। अतः प्रत्येक गुण परिणमन शील हैं। ज्ञान उपयोगरुप हो या नही परन्तु उसी समयमें सब गुण अपना अपना कार्य करते है।

शंका— चतुर्थ गुणस्थानमें क्षायक सम्यगदर्शन हुवा बाद जैसे २ गुणस्थान बढता है उसी प्रकार सम्यकदर्शनमें शुद्धता बढती है या नही ?

समाधान—क्षायक सम्यगदर्शन हुवा वाद उसमें शुद्धता बढती नही हैं। शुद्धता कब बढे कि जब प्रतिपक्षी कर्मोका सदभाव हो ? परन्तु क्षायक सम्यगदर्शनमें तो प्रतिपक्षी मिथ्यात्वादि प्रकृतियोका सर्वथा नाश हुवा बाद ही क्षायक सम्यगदर्शनकी प्राप्ति होती है इसलिये उसमे शुद्धताका अंश भी बढता नही है। चतुर्थ गुणस्थानमें जैसा क्षायक सम्यग्दर्शन है अैसाही क्षायक सम्यगदर्शन तीर्थंकरादिकोके एवं सिद्ध परमात्मामें समान है। क्षायक सम्यगद [illegible]में किंचित अंतर नही है।

प्रश्न—पचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिमतिमे क्षायक सम्यगद्रष्टि जीव कयो नही होता है ?

उत्तर—कयोंकि वद्धायुष्क क्षायक सम्यगद्रष्टि जीवोको स्त्रीवेदीयो में उत्पति नही होती हैं, तथा मनुष्यगतिके अतिरिक्त शेष गतियोमें दर्शन मोहनीय कर्मकी क्षपणाका अभाव हैं, इसलिये पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियोमें क्षायक सम्यगद्रष्टि जीव नही होता है। (ध ५—२१३)

प्रश्न—नपुशक वेदमे असंयत सम्यगद्रष्टि जीवका अल्पवहुत्व किस प्रकार है ?

उत्तर—नपुंशक वेदी उपशम सम्यगद्रष्टि जीव सबसे कम है, उनसे नपुशक वेदी क्षायक सम्यगद्रष्टि जीव असंख्यात गुणा है। गुणाकार क्या है ? आवलीके असंख्यातवां भाग गुणाकार है। कयोंकि, यहां पर प्रथम पृथिवी के क्षायक सम्यगद्रष्टि नारकी जीवोकी प्रधानता है। नपुंशक वेदी क्षायक सम्यगद्रष्टिसे वेदक सम्यगद्रष्टि असख्यात गुणा है। सयतासयत नपुशक वेदी क्षायक सम्यगद्रष्टि जीव सबसे कम है, कयोकि, मनुष्य पर्याप्तक नपुशक वेदी जीवोको छोडकर उनका अन्यत्र अभाव है।

प्रश्न—क्षायक सम्यगद्रष्टि जीव जघन्य व उतकृष्ट कितने काल तक ससारमे रहते हैं।

उत्तर—क्षायक सम्यगद्रष्टि जीव कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक और अधिकसे अधिक सातिरेक तेतीस सागरोपम प्रमाण

काल तक जीव क्षायक सम्यगद्रष्टि रहते हैं। कयोंकि, वेदक सम्यगद्रष्टि जीवके दर्शन मोहनीयका क्षपण करके क्षायक सम्यक्त्व को उत्पन्न कर जघन्य कालसे अबन्धक भावको प्राप्त होनेपर अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता हैं। (ध. ७-१७९)

प्रश्न—असंयत सम्यगद्रष्टि के अपर्याप्त कालमे कोनसा वेद और सम्यक्त्व रहता है।

उत्तर—असंयत सम्यगद्रष्टिके अपर्याप्त कालमे स्त्रीवेदके विना दों वेद और तीनो सम्यक्त्व होते है. कयोंकि अनादि मिथ्या-द्रष्टि जींवों और सादी मिथ्याद्रष्टि जीवों चारोही गतियोमें उपशम सम्यक्त्वको ग्रहण करते पाये जाते है कितु मरणको प्रा त नही होते है।

शंका—यह कैसा जाना जाता है कि उपशम सम्यगद्रष्टि जीव मरण नही करते ?

समाधान—आचार्यो के वचनसे, और सूत्र व्याख्यानसे जाना जाता है कि उपशम सम्यगद्रष्टि जीव मरते नही है। किन्तु चारित्र मोहके उपशम करनेवाले जीव मरते हैं, और देवोमे उत्पन्न होते है। अतः उनकी अपेक्षा अपर्याप्त कालमे उपसम सम्यकत्व पाया जाता हैं।

प्रश्न—असंयत सम्यगद्रष्टि मनुष्योंके अपर्याप्त कालमें कोनसा वेद रहता हैं ?

उत्तर—ए पुरुप वेद होता है। केवल एक पुरुन वेद

होनेका यह कारण है कि, देव नारकी और मनुष्य असंयत सम्यगद्रष्टि जीव मर कर यदि मनुष्योमें उत्पन्न होते है **तो नियमसे पुरुष वेदी मनुष्योमे ही उत्पन्न होते है, अन्य वेद वाले मनुष्योमें नही होते है।**

(ध. २–५१०)

प्रश्न––असंयत सम्यगद्रष्टि जीवोके औदारिक मिश्र काय-योगमे भावसे छहो लेश्या कैसे होती है।

उत्तर––भावसे छहो लेश्या होनेका यह कारण है कि जिस प्रकार तेज, पद्म, और शुक्ल लेश्यामें वर्तमान मिथ्याद्रष्टि और सासादन सम्यगद्रष्टि देव, तिर्यंच और मनुष्येमें उत्पन्न होते समय नष्ट लेश्या होकरके, अर्थात अपनी अपनी पूर्व शुभ लेश्याको छोडकर तिर्यंच और मनुष्योमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें ही कृष्ण, नील, और कापोत लेश्या रूपसे परिणत हो जाते है, उसी प्रकार सम्यगद्रष्टि देव अशुभ लेस्या रूपसे नही परिणत होते है. किन्तु तिर्यंच और मनुष्योमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयसे लगा-कर अन्तर्मुहूर्त तक पूर्व भवकी लेश्याओके साथ रहकर पीछे अन्य लेश्याओको प्राप्त होते है, अतएव यहांपर छहो लेश्याये बन जाती है। (ध. २–६५७)

'धवलाकारने सम्यकत्व मार्गणाके अपर्याप्त कालमें छहो लेश्या मानी है, जब गौमट्टसार जीव कान्डमें आलापाधिकारमें सम्यकत्व मार्गणाके अपर्याप्त आलाप बतलाते हुए एक कापोत और तीन

शुभ लेश्या इस प्रकार चार लेश्याये ही बतलाइ है, परन्तु गौमट्टसारमे वेदक सम्यकत्व मार्गणाके अपर्याप्त आलापमें छहो लेश्या कही है।'

प्रश्न—तिर्यंच और मनुष्योमे उत्पन्न होनेवाले सम्यगद्रष्टि देव अन्तर्मुहूर्त तक अपनी पहेली लेश्याओ क्यों नही छोडते हैं इसका क्या कारण है?

उत्तर—इसका कारण यह हैं कि, बुद्धिमें स्थित है परमेष्टी जिनके अैसे सम्यगद्रष्टि देवोके मरणकालमें मिथ्याद्रष्टि देवोंके समान संक्लेस नही पाया जाता हैं, इसलिये अपर्याप्त कालमें उनकी पहेलीकी शुभ लेश्याए ज्योंकी त्यो बनी रहती हैं। (ध. २–६५७)

प्रश्न—सम्यगद्रष्टि नारकी जीव मरते समय अपनी पुरानी कृष्णादि अशुभ लेश्याओको क्यो नही छोडते हे।

उत्तर—इसका कारण यह है कि नारकी जीवोके जाति विशेषसेही स्वभावत संक्लेसकी अधिकता होती हे इस कारण मरण कालमें भी उन्हे नही छोडते हे। (ध. २–६५८)

प्रश्न—असंयत सम्यगद्रष्टि तिर्यंचके अपर्याप्त अवस्थामे क्षायक सम्यगदर्शन कैसे होता है?

इस कारण भोगभूमि के तिर्यंचोमें उत्पन्न होने वाले जीवोकी अपेक्षासे असंयत तिर्यंच सम्यगद्रष्टिके अपर्याप्त कालमे क्षायक सम्यकत्व पाया जाता है। (ध. २-४८०)

प्रश्न—सम्यकत्व सहित नरकमे जानेवाले जीव सम्यकत्व सहित ही वापिस आते है या कैसे आते है ?

उत्तर— सम्यकत्व सहित नरकमें जानेवाला जीव सम्यकत्व सहित ही वहासे निकलते है। क्योकि, नरकमें उत्पन्न हुए क्षायक सम्यगद्रष्टियोके अथवा कृतकृत वेदक सम्यगद्रष्टियोंके अन्य गुणस्थानमें संक्रमण नही होता है। और सासादन सम्यगद्रष्टियोका नरक गतिमें प्रवेश नही है।

प्रश्न— सातो नारकमें सम्यगद्रष्टि जीव सर्वकाल रहेता है ?

उत्तर— सातो पृथवीमें असंयत सम्यगद्रष्टि जीव नाना जीवोकी अपेक्षा सर्वकाल होते हैं। वहकाल इस प्रकार संभव है कि-सातो पृथ्वीया किसीभी कालमें असंयत सम्यगद्रष्टि जीवोंसे रहित नही पायी जाती। कहाभी है कि– **असंजद सम्मादिट्ठी केवचिरं कालादो होंति, णाणा जीव पडुच्च सव्वद्धा ॥४४॥** (ध. ४-३६१)

उसी प्रकार सम्यकत्व सहित तिर्यंचगतिमें जानेवाला जीव सम्यकत्वके साथ ही वहासे निकलते है। क्योकि, क्षायक सम्यगद्रष्टियोंका, व वेदक सम्यगद्रष्टियोका तिर्यंच गतिमें जाने पर अन्य गुणस्थानमें संक्रमण नहि होता है। (ध. ६-४४१)

प्रश्न— असंयत सम्यग द्रष्टि तिर्यंच मरण कर देवोंमे कहां तक जा शकता है।

उत्तर— देवोंमें जानेवाले असंयत सम्यगद्रष्टि सरव्यातवर्षायुष्क तिर्यंच सौधर्मइसान स्वर्गसे लगाकर आरण—अच्युत तकके कल्पवासी देवोंमे जाते है। (ध. ६—४६५)

प्रश्न— असंयत सम्यगद्रष्टिको बंधका जघन्य उतकृष्ट प्रत्यय कितना है?

उत्तर—एकेन्द्रियसे एक कायकी विराधना अैसे दो असंयम भाव। १२ बाराह कषायमेंसे एक कषाय, तीनो वेदोमें एक वेद, हास्य, रति और अरति शोक यह दो युगलोमें एक युगल और दश योगोमेंसे १ योग अैसे नौ जघन्य प्रत्यय हे। और उतकृष्ट एक अनंतानुबंधी कषाय छोडकर शेष १६ सोलह प्रत्यय है। (ध. ८—२६)

प्रश्न—सम्यगद्रष्टि आत्माको नरक जाना पडता है तो आत्माका उसी समयमें किस गुणका दोषसे नरकमे जाना पडता है? क्या दर्शनगुणका दोषसे, ज्ञान गुणका दोषसे, या चारित्र गुणका दोषसे नरकमें जाना पडता है?

उत्तर—दर्शन गुणका दोषसे या ज्ञानगुणका दोषसे एवं चारित्र गुणका दोषसे नरकमें नहि जाना पडता है, कयोंकि यह गुणोंका दोष तो स्वर्गमे भी मिथ्याद्रष्टि जीवोको इससे विशेष है। [illegible] सम्यगद्रष्टिको नरकमे जानेमे प्रधान दोष वीर्यावर्ती शक्ति

का है जिसने स्वर्गकी और गमन न कर नरक गतिकी और गमन किया।

शंका—आत्माने क्रियावती शक्ति को सुधार क्यो न ली?

समाधान—यह आत्माका हांथकी बात नही है, कयोकि सब शक्तियो अर्थात, सर्वगुण स्वतंत्र है, कोई गुण कोई गुणके आधीन नही हैं।

संयतासंयत गुणस्थान

संयतासयत गुणस्थानमे अष्ट मूल गुणोका अतिचार रहित पालन होता हे। सप्त व्यसनका संपूर्ण रितीसे त्याग हो जाता है। इस गुणस्थानमे त्रस जीवोकी सकल्पी हिंसाका त्याग हो जाता है, परंतु स्थावर जीवोकी विवेक पूर्वक हिसा हो जाती है। इस गुणस्थानका ग्यारह भेद है जिसको प्रतिमा कही जाती है। १ दर्शन प्रतिमा २ व्रत प्रतिमा ३ सामायिक प्रतिमा ४ पोषध प्रतिमा ५ सचित त्याग प्रतिमा ६ पुरुषोके लिये रात्रि भुक्ती अनुमोदना त्याग प्रतिमा और स्त्रीके लिये दिवस मैथुन सेवन त्याग प्रतिमा।

शंका—यह छठवी प्रतिमामे दो भेद कैसे है?

समाधान—यह प्रतिमामे अब्रह्मका त्याग नही हुआहे। स्त्री रात्रिमे भोजनका अनुमोदनाका त्याग नही कर शकती हे,

कयोकि, अपना बच्चाको रात्रिमे दुध, जल पिलावेगी इस सबबसे स्त्री रात्रि भोजन अनुमोदनाका संपूर्ण रितीसे त्याग नही कर शकती हे इस कारण दो भेद है।

७ ब्रह्मचर्य प्रतिमा ८ आरंभ त्याग प्रतिमा ९ परिग्रह त्याग प्रतिमा १० अनुमति त्याग प्रतिमा ११ उदिष्ट आहार त्याग प्रतिमा। पहेलीं प्रतिमासे छठवी प्रतिमा तक जघन्य श्रावक पद है। सप्तमी प्रतिमासे नौवमीं प्रतिमा तक मध्यम श्रावक पद हे और दशमी अग्यारवी प्रतिमावाले उतकृष्ट श्रावक पद कहा जाता है।

प्रश्न— क्षायक सम्यगद्रष्टि जीव संयता संयत भावको प्राप्त होता है या नही ?

उत्तर—संयता संयत गुणस्थानमें क्षायक सम्यकत्वी जीव सबसे कम हैं। क्योकि, अणुव्रत सहित क्षायिक सम्यगद्रष्टियोंका होना अत्यन्त दुर्लभ है. तथा तिर्यंचोमें क्षायक सम्यकत्व के साथ संयमासंयम भाव पाया नही जातां हे. क्योंकि, तिर्यंचोमें दर्शन मोहनीय कर्मकी क्षपणाका अभाव है ? (ध. ५—२५६)

प्रश्न—संज्ञी संमूर्च्छेम पर्याप्तकोमें संयमासंयमके समान अवधि ज्ञान और उपशम सम्यकत्व होता है या नही ?

उत्तर—संज्ञी समूर्च्छेम पर्याप्तकोमें संयमासंयमके समान अवधिज्ञान और उपशम सम्यकत्वकी संभवनाका अभाव है।

शंका—यह कैसा जाना जाता है कि संज्ञी समूर्च्छेम

पर्याप्तक जीवोमे अवधिज्ञान और उपगम सम्यकत्व का अभाव है।

समाधान—पंचेन्द्रियोमे दर्शन मोहका उपशमन करता हुआ गर्भोप्तन जीवोमें ही उपशमन करता है. समूर्च्छमोमें नही इस प्रकारके चुलिका शूत्रसे जाना जाता हैं।

शंका—संज्ञी समूर्च्छम जीवोमे अवधि ज्ञानका अभाव कसे जाना जाता है।

समाधान—किसी भी आचार्योने संज्ञी समूर्च्छम जीवोमे अवधिज्ञान होता हैं अैसी प्ररुपणा नही की। (ध ५–११८)

प्रश्न—संज्ञी संमूर्च्छन तिर्यंच संयता सयत भावकों प्राप्त हो शकता है या नहीं?

उत्तर—मोंह कर्मकी २८ उटठाइस प्रकृतियोकी सता रखने वाला एक तिर्यंच अथवा मनुष्य मिथ्याद्रष्टि जीव सज्ञी पंचेन्द्रिय संमूर्च्छन तिर्यंच पर्याप्त मच्छ, कच्छप, मेडकादिकोमें उत्पन्न हुआ सर्व लघु काल द्वारा सर्व पर्याप्तियोसे पर्याप्त पनेको प्राप्त हुआ (१) पुनः विश्राम लेता हुआ (२) विशुद्ध होकरके (३) संयमा संयमकों प्राप्त हुआ वहापर पूर्व कोटी काल तक सयमासयमको पालन करके मरा और देवोमे उत्पन्न हो शकता है। (ध. ४ ३६६)

शंका— जीन जीवोने पहेला तिर्यंचायुका बंध कर लीया हैं, अैसे जीव सम्यकत्वको ग्रहण करके और दर्शन मोहनीयका क्षय करके तिर्यंचोमें उत्पन्न होते हुए पाये जाते है एसलिये संयतासयत क्षायक सम्यगद्रष्टि जीवो तिर्यंचमेभी होना संभव है।

समाधान— नही, क्योंकी जिन्होने पहेले तिर्यचायुका वंध कर लीया है अैसे तिर्यचोमें उत्पन्न हुए क्षायक सम्यग-द्रष्टियोंके संयतासंयत गुण नही पाया जाता हे, क्योंकी भोगभूमि के वीना अन्यत्र उनकी उत्पति संभव नही हे। दर्शन मोहनीय कर्मकी क्षपणा नियमसे मनुष्यगतिमे ही होती हे अैसा आगम वचन हे। (ध. ३–४७५)

प्रश्न— संयता सयतोके वैक्रियीक समुद्घात होता हे?

उत्तर— संयता सयतोमें य वैक्रियीक समुद्घात होता हे क्योंकि विष्णुकुमार आदिमे विक्रियात्मक औदारिक शरीर देखा जाता हे। (ध. ४–४४)

प्रश्न—मानुषोतर पर्वतसे पर भागवर्ती और स्वयंभाचलसे पूर्व भागवर्ती शेप द्विप समुद्रोमें सयतासंयत जीवो हो शकता हैं या नही?

उत्तर—हो शकता है क्योंकि, पूर्व भवके वैरी देवोके द्वारा वहा लेजाये गये तिर्यच संयतासंयतकी शंभावना हो शकती है. इसमे कोई विरोध नही है. (ध. ४–१६९)

प्रश्न—संयतासंयत सम्यगद्रष्टिको बन्धका कितना प्रत्यय जघन्य व उतकृष्ट है?

उत्तर—एकेन्द्रियसे एक कायकी विराधना करता हैं अैसे दो असंयम भाव–आठ कपायोमें दो कपाय, तीन वेदोमे एक वेद हास्य रति, और अरति शोक, यह दो युगलोमेंसे अेक युगल,

नौयोगोमेंसे एक योग इस प्रकार ८ आठ जघन्य प्रत्यय हैं।
और उतकृष्ट एकेन्द्रिय से पाच स्थावरकायोकी विराधना करता
हैं, इस प्रकार छोह असंयम, दो कपाय प्रत्यय, एक वेद, हास्य
रति—और अरति शोक ये दो युगलोमेंसे एक युगल भय—और
जुगुप्सा तथा नौयोगोमेसे एक योग, अैसे मिल्कर १४ चौदाह
प्रत्यय होता है। (ध. ८–२६)

प्रमत तथा अप्रमत गुणस्थान

छठ्ठा गुणस्थान तक बुद्धि पूर्वक उदीरणा होती है और
सातवे गुणस्थानमें ध्यान अवस्था हें. वह गुणस्थानमे अनतानुंबंध
अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान कषायका अभाव रुपतो सामायिक
सयम है और जीतना अंसमे रागादिक परणति हे वह छेदोपस्थापना
सयम है। जब मुनि ध्यानमे स्थिर नही रहता तब २८ अठा-
इस मूलगुणोका विकल्पमे स्थिर रहता है। अठाईस मूलगुणका
पालन करनेका भाव है वह छेदोपस्थापना संयम है। संज्वलनका
तिव्र कषायमे ही आहारादिकी क्रिया होती है। छठ्ठा गुणस्थान-
वाले मुनि महाराज जितेन्द्रिय होता है। वह पाचइन्द्रिय और
पाच इन्द्रियके विपयके आधीन नही है परतु इसको मुनिमहाराजने
जित लिया है। जीस मुनिका संसारिक वातोमे दिल लगता है
वह मुनिने कर्ण इन्द्रियको जिति नही है। जिस मुनिको भौतिक

वस्तु देखनेका भाव हैं उस मुनिने चक्षु इन्द्रियको जिति नही हे। जिस वस्तीकामे मुनि ठहरे हे और धुपके दिनमे इसमे हवा नही आती हे, अैसी हालतमें मुनि महाराज मुखसे बोले कि वस्तिकामे हवा नही आती तो समजना चाहिये कि मुनिने स्पर्शइन्द्रियोंको जिति नही। छोह आवश्यक कर्म मुनि महाराजको नियमित दिनमे दोदफे करना ही चाहिये उसमे प्रमादका सेवन करे तो यह मुनि नही हे। विहारमे वातो करते करते चले और भूमि पर द्रष्टि नही हे तो मुनिने इर्या समितीका यथार्थ पालन नही किया। मैरे द्वारा जीवोकी घात न हो जावे अैसा भाव सहित चार हाथ दुर जमीन शोध कर चलना वही इर्या समिती है वह पुण्यभाव हैं। वर्षारुतुमें सब जगह पर हरित-कायिक हो गये है वहा दीर्घशंकाके लिये जाउंगा तो हरीत कायिक जीवोंका नाश हो जावेगा यह शोचकर मुनि अपने डेरेमें शौचादि क्रिया करे तो वह मुनि नही है। शुद्रका हाथका जल पिनेवालाके हाथसे मै आहार नही लउंगा **अैसा कहेनेवाले मुनिकों अव्रत अवस्थाका ज्ञान नही है। जहां अव्रत अवस्थाका ज्ञान नही है वहां मुनि अवस्थाका ज्ञान कैसे हो शकता है?** मुनि पदमें जतर, मंतर, दोरा धागा आदि बनानेका भाव होता ही नही। यदि अैसा भाव मुनि महाराजमें हो जावे तो वह मुनि नही है। **जैसे श्रावक अष्ट मूल गुणोमेसे एक मूलगुणको न पालन**

करनेसे श्रावक नही कहा जाता, अैसे मुनि महाराजभी २८ अठाइस मूल गुणोमेसे एक मूल गुणको नहीं पालन करनेसे मुनि नही कहा जाता। संयमका लक्षण निम्नप्रकार है।

व्रतरक्षण, समितिपालन, कषायनिग्रह, दंडत्याग और इन्द्रियसंजमका नाम संयम है। अथवा सम्यक प्रकारसे आत्म नियत्रणको संयम कहा है।

मुनि महाराजका प्रधान कार्य ध्यान और अध्यन हैं। **यदि मुनि महाराजका अध्यनमे दिल नही लगता और ध्यानकी गंध भी नही है वहां मुनिपणा नही है।** मुनि महाराज जितना शास्त्रो आप स्वयं उठाशके इतनाही ज्ञानका उपकरणके लीय रख शकता है विशेष रुप शास्त्रो रखे तो मुनि परिग्रह धारी है। एक श्रुत मात्र पांसमें परिग्रह रखनेसे चरणानु योगकी अपेक्षा वह मुनि नही है, मुनी तो नग्न दिगम्बर सर्वथा निग्रन्थही होना चाहीये। स्त्रीयोंका भावसे सप्तम गुणस्थान रुप परिणाम हों शकता है, परन्तु वस्त्रका त्याग नही कर शकनेसे चरणानु योगकी विधिसे स्त्रीका पंचम ही गुणस्थान माना जाता है। छठवा नहि माना जाता।

मुनि महाराज आदि संयम धारी जीवोको अषाढ शुक्ला चौदससे कार्तिक शुक्ला १४ तक अेक स्थानमे चातुरमास रहना चाहिये, कयोकि, इन दिनोमे अेकेन्द्रिय तथा त्रस जीवोकी विशेष

रूपमे उत्पति होती है ऐसा जीवोकी रक्षाके निमितसे चातुरमास जंगलमेंही ठहरनां चाहिये।

दुःखकी वात है कि वर्तमानमें मुनि महाराजो ग्रामके बिचमें चातुरमास करने लग गये। यह आगमसे विपरित मार्ग है। ऐसा मुनि महाराजो पानी गिरनेके पश्चात सब जगहपर वनस्पतिकायिक जीवोकी उत्पति हो जाति है यह देखकर ऐसा कहे या दुसराके द्वारा कहलावे कि अब जंगलमें शौच जानेसे एकेन्द्रिय बनस्पति आदि जीवोकी बहोत घात होजावेगा इसलिये हमारा डेराकी पांसमेंही टट्टी घरका प्रबन्ध करदेना चाहिये।

श्रावक––महाराजका कहना ठीक है अब मुनि महाराज आदि जंगलमें शौच कैसे जा शकता है, कयोंकि, सब जगहपर वनस्पतिकायिक जीवोकी उत्पति हो गय हैं, इसलिये टट्टी घरका प्रबंध कर देना चाहिये।

ऐसा कहनेवाला मुनि तथा श्रावक दोनो मिथ्या-द्रष्टि है, कयोंकि, उनका अभिप्रायमे यह बात है मुनि महाराज जंगलमे शौच न जानेसे वनस्पतिकायिक जीव बच जायगा। यह कहनेवाला मिथ्याद्रष्टि है कयोंकि, वनस्पतिकायिक जीवोको वचना उसका आयुकर्मके आधीन हैं, मुनिका गमन अथवा न गमन के आधीन नही है।

शंका––तब मुनि महाराज जंगलमे जानेसे वनस्पतिकायिक जीवोकी घातसे मुनि महाराको पापका वन्ध पडेगा या नही?

समाधान—मुनि महाराजका अभिप्राय त्रस जीवोंकी रक्षाका है परन्तु ऐकेन्द्रिय वनस्पतिकायिक जीवों मारनेका नही है। इस लिये ऐकेन्द्रिय आदि जीवोंकी घात होते संते मुनिको पापका बंन्ध नही है। जैसे एक श्रावककी गायके गलेमें घा हो जानेसे उसमें कीडा पड गया है। श्रावक जानता है कि गायके गलेमें दवा डालनेसे कीडा मर जायगा परन्तु श्रावकका भाव कीडा मारनेका नही है परन्तु गायकी रक्षाका भाव हैं, इस लिये गायके गलेम दवा डालनेसे कीडा मरते संते श्रावकको पुण्यका ही आश्रव होता है। इसी प्रकार मुनि महाराजका अभिप्राय त्रस जीवोंकी रक्षाका है कि जगलमे शौच जानेसे टट्टीमें त्रस जीव उत्पन्न होनेका कारण नही होता क्योंकि, जंगलमें शौच जानेसे टट्टी शुक जावेगी अथवा कोई र्तिर्यंच जीव इसको खा जावेगा जिससे उसमें त्रस जीवोंकी उत्पतिका कारण नही हैं इस अभिप्रायसे जानेसे वनस्पतिकायिक जीवोंकी घात होते संत मुनिको पापका बन्ध नही है। मुनि जो जगलमे जाता है वह भी ईर्या समितिसे ही गमन करता है। **इसलिये टट्टीघरमें जानेवाला मुनि तथा मुनि पर्यायका जिसको ज्ञान नही है ऐसा टट्टीघर बनादेनेवाला श्रावक दोनोही मिथ्यादृष्टि ही है,** क्योकि जीव मरो या मति मरो बंधका कारण मात्र अभिप्राय ही है इसीका ज्ञान नही है, कहा भी है कि—

अज्झवसिदेण बंधो सत्ते मारेउ मा व मारेउ।
अेसो बंधसमासो जीवाणं णिच्छयणयस्स ॥२६२॥

—समयसार

अर्थ—निश्चनयका यह पक्ष है कि जीवोको मारो अथवा मत मारो यह जीवोके कर्म बंध अध्यवसायकर ही होता है यह वंधका संक्षेप है।

यदि वनस्पतिकायिक जीवोकी रक्षाके लिये टट्टी घर वनवा दिया जावे तो भी वनस्पतिकायिक जीवोका आयुष बढ नही जावेगा। वरशाद (पानी) गीरनेसे जमीनमे दो घडी मे त्रस जीवोकी उत्पति हो जाती है तब भोजनके लिये भी अैसा पानी कीचड, उपरसे मुनिका जानेसे वहांतो त्रस जीवोकि हिंसा हो रही है, अैसी अवस्थामें मुनिके डेरेमें ही भोजन पहोचाना चाहिये परन्तु यह मार्ग नही है। कादवमें त्रस जीवोकी उत्पति होजाती है यह मुनि आगमद्वारा जानता है तो भी मूनिका अभिप्राय त्रस जीव मारनेका नही है, परन्तु उदिष्ट आहार नही लेनेका अभिप्राय है इसलिये मुनिको पापका वध नही है। क्रियासे कर्म वन्ध नही होता है कर्म वन्धका कारण अभिप्राय ही है जैसे—

एक मुनि महाराज ध्यान अवस्थामे जंगलमे वेठा है उसी कालमे एक जंगलका सिंग (सिह) मुनि महाराजकी शान्त मुद्रा देखकर मुनिके नजदीकमें वेठ गया। इसी कालमे एक वाघ आया उसने मुनिको देखकर मुन्किो खा जानेका भाव कर

मुनिके उपर छलांग मारी के तुरतज वही शिग वाघके सामने हो गया और कहा कि हे दुष्ट ? मैरेमें जान है तब तक तु मुनिको नही खा शकता है ? दोनो आपसमे लडने लगे। लडते लडते मर गये। शिग मरके स्वर्गको गया, क्योंकि, उसका अभिप्राय मुनिका रक्षाका था, जब वाघ मरके नरकमें गया, क्योंकि उसका अभिप्राय मुनिकी हिंसा करनेका था, यद्यपि क्रिया दोनोमें समान हुई तो भी, अलग अलग भावोंसे दोनो अलग २ गतिमे गये। इसलिये मुनि महाराज टट्टीघरमे शौच जावे तो वह मुनि नहीं है एवं मुनिको टट्टीघर बनादेनेवाला भी मिथ्याद्रष्टि है।

जो श्रावक ऐसा अभिप्राय करे कि शीत बहोत पड रही हे मुनि भी मनुष्य है? अपनेको शीत लगती है इसि प्रकार मुंनीको भी शीतसे दुःख होवे यह शोचकर मुनिको ओढनेके लिये घास, पराल आदि दे वही श्रावक और शीतसे बचनेका अभिप्रायसे मुनि इसीको स्वीकार करे तो वह दोनो जीव मिथ्या-द्रष्टि है, क्योंकि श्रावक को मुनि पर्यायका यथार्थ ज्ञान नही है। यदि शीतका परिसह सहन करनेकी शक्ति न होवे तो क्यो मुनि हुवा? ग्रहस्थ अवस्थामें ही रहकर धर्मकी साधना करना था परन्तु, उच्च पदका नाम धारी निची क्रिया करे वह तो मिथ्याद्रष्टि जीव ही है। **ऐसा मुनिको द्रव्यलिंगी मुनि भी नहीं कहा जाता है, वह तो मात्र वेषधारी है।** द्रव्य-लिंगी मुनिका जो शास्त्रोंमें वर्णन है वह भी यथार्थ २८ अठाईस

मुलगुणोका पालन करता है। बावीस परिसहका यथार्थ पालन करता है। देव मनुष्य तिर्यंच द्वारा आया उपसर्गको समता भावसे सहन करता है परन्तु अभ्यंतर शुक्ष्म मिथ्यात्वका भाव रह जानेसे उसीको द्रव्यलिंगी कहा है। **जो दट्ट घरमे शौच जावें और शीतकालमें एक बेलगाडी जितना घास ओढे वह तो मात्र दिगम्बर अवस्थामे वेंषधारी है** अैसा मुनिका तो यहां वर्णन भी नही है। यहां तो भावलिंगी मुनिकी बात है वही मुनिका प्रमत और अप्रमत गुणस्थान होता है।

जिस दातारने मुनि महाराजको ठहरनेके लिये वस्तिका अर्थात घर—मकान वगिचा आदिका दान दिया है अर्थात अैसा स्थानमे ठहरनेकी आज्ञा दि है, **अैसा दातारके घर मुनिको आहार लेनेका आगममे निषेध किया हुआ है**, कयोंकि, असा दातार के घर आहार लेनेसे मुनि महाराजका स्वभावीक वह दातार प्रत्ये राग बढ जाता है, और राग बढनेसे मुनि महाराज स्वभावीक अपने पद से गिर जाता हें इस कारण आगममे निषेध किया है। परन्तु **वर्तमानमे यह बात विशेष रुप मे मुनि महाराजोमे देखनेमे नही आती, कयोंकि, मुनि महाराजोको आगम ज्ञान नही हें। जहां आगम ज्ञान नही हें वहां आत्म ज्ञान कैसे हो शकता है। और जहां आत्म ज्ञान नही है वहां** मुनिपना अर्थात संयम

पना कैसे हो शकता है। जिस जीवोको आगम पूर्वक द्रष्टि नही हैं, वहा संयम नही है अैसा आगम भी कहता है।

जो मुनि महाराजो बाइस परिसहका पालन उतकृष्ट रितिसे कर नही शकता है, जो देव मनुष्य एवं तिर्यंच द्वारा आया हुवा उपशर्गको उतकृष्ट पने सहन करनेके शक्तिवंत नही है अैसा मुनि महाराजोको अपने पदसे उतम पदधारी अैसा आचार्योके संघमे ही रहना चाहिये परन्तु एकलविहारी रहनेकी आज्ञा नही है। एकलविहारी रहनेसे नियमसे वह अपने पदसे गिर जायगा। स्वेच्छाचारी संयमका पालन नही कर शकता हैं। जहां स्वेच्छाचार हैं वहा मुनीपना भी नही है। अपना पदकी रक्षाके लिये अपने पदसे उतम पदके धारी अथवा अपने पदके धारी संयतो की साथ मुनी महाराजको रहना चाहिये किन्तु अपने पदसे हीन पद के धारी का संग करनेसे मुनी अपने पदसे नियमसे भ्रष्ट हाें जाता है। इसी कारण मोक्षमार्गी जीवोए उतम संग तथा आचरण रखना चाहिये।

जिस मुनि महाराजोको गणधर देव, पंच परमेष्टि की भक्ति मे नमस्कार करते होगे वह मुनि पद कैसा होगा, सो विचारना चाहिये। क्या वह वेप धारी मुनिओको वंदन करना होगा। गणधर देव महान रिद्धियोका धारी एव च्यार ज्ञानके धारी होते भंते मुनि पर्यायमे कोनसी शक्तिया हैं

वह अच्छी तरहसे जानता है। वही जानता है कि साधारन ज्ञानके धारी यदि दो घडी ध्यानावस्थामे स्थिर रह जावे तो वह केवलज्ञानकी प्राप्ति कर शकता है। गणधर देवके आगे उसका आजकाही बना हुवा शीष्य प्रथम केवलज्ञान एव मोक्षपदकी प्राप्ति कर शकता है। **यही शक्ति देखकर गणधर देवभी मुनि महाराजोको नमस्कार करते है**। गणधर देवको निम्न प्रकारकी रिद्धिया प्राप्त होती है।

रिद्धियां सात प्रकारकी कही गय है। बुद्धि, तप, वैक्रिया, औषधि, रस, बल और अक्षीण। इसमेसे गणधर देवोंके चार निर्मल बुद्धियां देखी जाती है। गणधर देवोके चार बुद्धिया होती है, कयोंकि उनके विना बारह अंगोकी उत्पति न हो शकनेका प्रसंग आता है।

शंका—बारह अंगोकी उत्पति न हो शकनेका प्रसंग कैसे होगा ?

समाधान—गणधर देवमे कोष्टी बुद्धिका अभाव नही हो शकता है, क्योंकि, असा होनेपर अवस्थानके विना उत्पन हुए श्रुतज्ञान का विनाशका प्रसंग आवेगा। बीज बुद्धिका अभाव नही हो शकता, कयोकि, उसके विना गणधर देवोको तीर्थकरसे मुखसे निकले हुए अक्षर और अन अक्षर स्वरुप बहुत लिंगालिंगका बीज पदोंका ज्ञान न होनेसे द्वादसांगके अभावका प्रसंग आवेगा। बीज पदोंके स्वरुपको जानना बीज बुद्धि है, इससे द्वादसांगकी उत्पति

होती है। उस बीज बुद्धिके विना द्वादसांगकी उत्पति नही हो शकती है, क्योंकि अैसा होनेमे अति प्रसग आता है। उनमें पदानुसारी ज्ञानका अभाव नही है। क्योकि, बीज बुद्धिसे जाना गया है स्वरूप जिसका तथा कोष्ट बुद्धिसे प्राप्त हुआ है अवस्थान जिसने अैसा बीज पदोसे ईहा और अवायके विना बीज पदकी उभय दिशा विषयक श्रुत ज्ञान तथा अक्षर, पद, वाक्य और उनके अर्थ विषयक श्रुतज्ञानकी उत्पति बन नही शकती। उनमें संभिन्न श्रोतृत्वका अभाव नही है, क्योकि. उसके विना अक्षर अनक्षरात्मक सातसो कुभाषा और अठारह भाषा स्वरुप नाना भेदोसे भिन्न बीज पद रुप व प्रत्येक क्षणमे भिन्न २ स्वरुपको प्राप्त होनेवालीं अैसी दिव्यध्वनिका ग्रहण न होनेसे द्वादसागके उत्पतिके अभावका प्रसंग आवेगा। भले प्रकार श्रोत्रेन्द्रियवरण के क्षयोपशमसे जो भिन्न अनुविद्ध अर्थात सम्बन्ध है, वे संभिन्न है संभिन्न अैसे जो श्रोता वे संभिन्न श्रोता है। कथंचित युगपत प्रवृत हुए अक्षर अनक्षर स्वरुप अनेक शव्दोके श्रोता सभिन्न श्रोता है अैसा निर्देश किया गया है। (ध. ९–५८)

नवनागसहस्त्राणि नागे नागे शतं रथा।
रथे रथे शतं तुर्गाः तुर्गे तुर्गे शतं नराः॥ १९॥

अर्थ— एक अक्षौहिणिमें नौ हजार हाथी, एक हाथीके आश्रित सौ रथ, एक एक रथके आश्रित सौ घोडे और एक एक घोडेके आश्रित सौ मनुष्य होते है। (ध. ९–६१)

यह एक अक्षौहिणिका प्रभाव है। अैसी चार अक्षौहिणी अक्षर अनक्षर स्वरुप अपनी अपनी भाषाओसे युगपत बोले तो भी सभिन्न श्रोता युगपत सब भाषाओंका ग्रहण करके उत्तर देता है। इनसे संख्यातगुणी भाषाओंसे भरी हुई तीर्थंकरके मुखसे नीकली ध्वनिके सहमुको युगपत ग्रहण करनेमें समर्थ अैसें सभिन्नश्रोताके विषयमें यह कोई आश्चर्यजनक बात नही है)

शंका— यह सभिन्न बुद्धि कहांसे होती है।

समाधान— बहु, बहुविध, और क्षिप्र ज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमसे होती है।

शंका— बीज बुद्धि कहासे होतीं है?

समाधान— वह विशिष्ट अवग्रहावरणीयके क्षयोपशमसे होती है।

प्रश्न— विक्रिया रिद्धि कितना प्रकारकी हैं और इसका क्या स्वरुप है?

उत्तर— विक्रिया रिद्धि आठ प्रकारकी है। १ अणिमा, २ महिमा, ३ लघिमा, ४ प्राप्ति, ५ प्राकाम्य, ६ ईशित्व, ७ वशित्व ८ कामरुपित्व।

अणिमा— महा परिमाण युक्त शरीरको संकुचित करके परमाणु प्रमाण शरीरसे स्थित होना अणिमा नामक विक्रिया रिद्धि है।

महिमा— परमाणु प्रमाण शरीरको मेरुपर्वत शदस करनेको

महिमा विक्रिय रिद्धि कहते है।

लघिमा— मेरु प्रमाण शरीरसे मकडीके तंतुओपरसे चालनेमें निमितभूत शक्तिका नाम लधिमा विक्रिय रिद्धि कहते है।

प्राप्ति— भूमिमें स्थित रहकर हाथसे चन्द्र व सूर्यके बिम्बको छुनेकि शक्तिका नाम प्राप्ति विक्रिय रिद्धि कहते है।

प्राकाम्य— कुलाचल और मेरु पर्वतके पृथवी कायिक जीवोको बाधा न पुचाकर उनमे तपश्चरणके बलसे उत्पन्न हुई गमन शक्तिको प्राकाभ्य विक्रिय रिद्धि कहते है।

ईशित्व—सब जीवो, तथा ग्राम, नगर, एवं खेडे आदि कोके भोगनेकी जो शक्ति उत्पन्न होती है वह ईशित्व विक्रिय रिद्धि कही जाती है।

वशित्व— मनुष्य, हाथी सिह एव घोडे आदि रुप अपनी इच्छासे विक्रिय करनेकी शक्तिका नाम विशित्व विक्रिय रिद्धि है।

कामरुपित्व— इच्छित रुपके ग्रहण करनेका नाम काम रुपित्व शक्ति है। (ध. ९–७५)

जीव पीडाके विना पैर उठाकर आकासमे गमन करनेवाले आकाश चारण मुनि कहा जाता है। पल्यंकाशन–कायोंत्सर्गासन सयनासन, और पेर उठाकर इत्यादि सब प्रकारोसे आकासमें गमन करनेमें समर्थ ऋषि आकाशगामी कहे जाते हैं। (ध. ९–८०)

शंका— आकास चारण रिद्धि और आकासगामी रिद्धिमें

क्या भेद है ?

समाधान—चरण-चारित्र-संयम व पापक्रिया निरोध इनका एक ही अर्थ है इसमे जो कुशल अर्थात निपूण है वह चारण कहलाता है। तप विशेषसे उत्पन्न हुई आकाश स्थित जीवोके (वधके) परिहारकी कुशलतासे जो सहित है वह आकास चारण है। आकासमें गमन करने मात्र से संयुक्त आकास गामी कहलाता है। सामान्य आकासगामिकी अपेक्षा जीवोके वधपरिहारकी कुशलतासे विशेषित आकास गामित्व के विशेषता पायी जानेसे दोनोंमें भेद है। (ध. ९-८४)

प्रश्न—खेलौषधि रिद्धिका क्या स्वरुप हैं ?

उत्तर—श्लेष्म, लार, सिंहाण, अर्थात नासीकामल और विप्रुप आदिकी खेल संज्ञा है. जिनका यह खेल औषधिको प्राप्त हो गया है वह खेलौषद्धि रिद्धि प्राप्त ऋषि कह जाता है। (ध. ९-९६)

प्रश्न—विष्टौषधि रिध्धि किसको कहते है ?

उत्तर—विष्टा, शब्द, चुंकि देशामर्शक है। अतएव उससे मूत्र-मल जिनके औषधिको प्राप्त हो गया है विष्टौषधि प्राप्त रिद्धि काधारक है। (ध. ९-९७)

प्रश्न— संयतो की उतकृष्ट संख्या एकी साथमें कितनी होती हैं ?

उत्तर— संयतो की सख्याकी दो मान्यता वह निम्न प्रकार है।

सत्तादी अट्ठता छण्णवमज्झा य संजदा सव्वें ।
तिगभजिदा विगगुणिदा पमतरासी पमता दु ॥५१

अर्थ— जिस संख्याकी आदिमें सात है, अन्तमे आठ है, और मध्यमे छोहवार नौ हैं, उतने अर्थात—आठ करोड नन्या नवे लाख, नन्यानवे हजार नवसो सतानवे सर्व संयत हैं। तीनका भाग देनेपर २९९९९१०३ अप्रमत संयत हैं। और अप्रमत सयतो के प्रमाणको दोसे गुणा करनेपर ५९३९८२०६ प्रमत संयत होते हैं। यह दक्षिण मान्यता हैं।

छक्कादी छक्कतां छण्णवमण्झा य संजदा सवे ।
तिगभजिदा विगगुणीदा पमतरासी पमता दु ॥ ५६

अर्थ— जिस सख्याकी आदिमे छोह—अन्तमे छोह, और मध्यमे छोहवार नौ हैं उतने अर्थात छ करोड निन्या नवे लाख, निन्या नवे हजार नौसो छ्यानवे ६९९९९९९६ जीव संपूर्ण सयत हैं। इसमें तीन भाग देनेपर लब्ध आवे उतने अर्थात २३३३३३३२ जीव अप्रमादि सपूर्ण संयत है और इसे दोसे गुणा करनेपर जितनी रासी उत्पन्न हो उतने अर्थात ४६६६६६६४ जीव प्रमत संयत है। (ध. ३—१०२)

प्रश्न— प्रमत अप्रमत और अपूर्वकरणमे कितना जघन्य व उतकृष्ट बंधका प्रत्यय हैं ?

उत्तर— चार संज्वलन कपायमेंसे १ एक कपाय, तीन वेदो मे से एक वेद, हास्य, रति, और शोक, अरति, ये दो

युगलोमे से, एक युगल, नौ योगोमेसे एक योग, इस प्रकार जघन्य ५ पांच प्रत्यय हैं, और उतकृष्ट १ कषाय, १ वेद, हास्य, रति, तथा शोक, अरति, ये दो युगलोमे मेसे एक युगल, भय, जुगप्सा तथा नौ योगोमेसे १ एक योग, इस प्रकार सात उतकृष्ट प्रत्यय है। (ध. ८–२७)

अपूर्वकरण गुणस्थान

पूर्वमे कभी असा निर्मल भावा हुआ नही हैं इसी कारण इस गुणस्थानका नाम अपूर्वकरण गुणस्थान है। इस गुणस्थानसे आत्मा क्षपक और उपशमक श्रेणी मांडता है।

शंका—इस गुणस्थानमें न तो कर्मका क्षय होता है, और न कर्मका उपशम, फिर इस गुणस्थानवर्ती जीवोको क्षपक और उपशमक कैसे कहा जाता है?

समाधान—नही, क्योकि, भावी अर्थमे भूतकालीन अर्थ के समान उपचार कर लेनेसे आठवे, गुणस्थानमे क्षपक और उपशमक व्यवहारकी सिद्धि हो जाती है। (ध. १–१८१)

शंका—पांच प्रकोरके भावोमेसे इस गुणस्थानमें कोनसा भाव पाया जाता है?

समाधान—क्षपकके क्षायिक, और उपशमके उपशमक भाव पाया जाता है।

शंका—इस गुणस्थानमे न तो कर्मका क्षय होता है, और न उपशम ही होता है, ऐसी अवस्थामें यहां पर क्षायिक और औपशमिक भावका सद्भाव कैसे हो शकता है ?

समाधान—यह कोई दोष नही है, क्योंकि, इस गुणस्थानमे क्षायिक और औपशमिक भावका सद्भाव उपचारसे माना है। [ध. १–१८२]

प्रश्न—अपूर्वकरण गुणस्थानमे जीवका मरण कब होता है ?

उत्तर—अपूर्वकरणके प्रथम समयसे लेकर जबतक निद्रा और प्रचला इन प्रकृतियोका बंध व्युच्छिन्न नही होता है, तबतक अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती संयतोका मरण नही होता है [ध. ४–३५२]

अनिवृत्तिकरण गुणस्थान

जिस गुणस्थानमे अन्तर्मुहूर्त मात्र अनिवृत्तिकरणके कालमेसे किसि एक समयमें रहेनेवाले अनेक जीव जीस प्रकार शरीरके आकार वर्णादि बाह्य रुपसे, और ज्ञानोपयोग आदि अंतरंग रुपसे परस्पर भेदको प्राप्त होता हैं उस प्रकार जिन परिणामोके द्वारा उनमे भेद नही पाया जाता है उनको अनिवृत्तिकरण परिणामवाले कहते है। और उनके प्रत्येक समयमें उत्तरोत्तर अनंत गुणी विशुद्धिमें बढते हुए एकमेही परिणाम पाये जाते है। तथा ये

अत्यन्त निर्मल ध्यानरूप अग्निकी शिखाओंसे कर्म वनको भस्म करने वाले होते है। (ध. १-१८७)

अनिवृति करणके कालमें संख्यात भाग शेष रहनेपर स्त्यान-गृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, नरकगति तिर्यंचगति, एकेन्द्रिय जाति, विकलेन्द्रियजाति, नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, तिर्यंचगति प्रायोग्यानुपूर्वी, आताप, उद्योत, स्थावर, सुक्ष्म, और साधारण इन शोलाह प्रकृतियोंका क्षय करता है। फिर अन्तर्मूहूर्त व्यतीतकर प्रत्याख्यानावरण और अप्रत्याख्याना वरण सम्बन्धी कोध, मान, माया, लोभ इन आठ प्रकृतियोका एक साथ क्षय करता है। **यह सतकर्म प्राभृतका उपदेश हैं। किन्तु कषाय प्राभृतका उपदेश तो इस प्रकार है कि,** पहेले आठ कषायोंका क्षय होजानेपर पींछेसे एक अन्तर्मूहूर्त में शोलाह कर्म प्रकृतियोंका क्षय होता है। ये दोनो ही उपदेश सत्य है. अैसा कितनेही आचार्योका कहना है। किंतु उनका अैसा कहना घटीत नहीं होता है। क्योंकि उनका अैसा कहना शुत्रोंसे विरुद्ध पडता है। तथा दोनों वचन प्रमाण है, यह वचन भी घटीत नही होता है. क्योंकि, एक प्रमाणको दुसरे प्रमाणका विरोधी नही होना चाहिये यंह न्यायहै। (ध. १-२१७)

प्रश्न—क्षपक श्रेणीमे बंध द्रव्यसे उदय और संक्रमण द्रव्यकी संख्या कितनी है ?

उत्तर—बंधसे उदय अधिक है. और उदयसे संक्रमण

अधिक होता है। इनकी अधिकता प्रदेशाग्रसे असंख्यातगुणित श्रेणी रूप जानना चाहिये। अर्थात द्रव्य बंधसे उदय द्रव्य असंख्यात गुणा है, और उदय द्रव्यसे संक्रमण द्रव्य असंख्यात गुणा है' (ध. ६-३५९)

प्रश्न—क्षपक श्रेणीमे संक्रमण किस प्रकार होता है?

उत्तर—स्त्रीवेद और नपुंशक वेदको पुरुषवेदमें, तथा पुरुषवेद और हास्यादि छोह नोकषाय, इन सात नोकषायको संज्वलन क्रोधमें नियमसे स्थापित करता है। (ध. ६-३५९)

उपशम श्रेणी वाला ३६ छतीस प्रकृतिको उपशम करता है और क्षपक श्रेणी वाला ३६ प्रकृतियोको क्षयकर दशमें गुणस्थानमें जाता है।

प्रश्न—अनिवृतिकरणगुणस्थानमें बन्धका जघन्य व उतकृष्ट प्रत्यय कितना है?

उत्तर—अनिवृतिकरणगुणस्थानमें एक संज्वलन कषाय, एक योग अैसे जघन्य दो प्रत्यय है और उतकृष्ट वेदके साथ ३ तीन प्रत्यय है। (ध, ८-२७)

शूक्ष्म सांपराय गुणस्थान

इस गुणस्थानमे मात्र शूक्ष्म लोभ हैं जिसमे मोहनीयका बंध पाडनेकी शक्ति नही है परंतु तीन घातीया कर्मका बंध

गडता है। उपशम श्रेणी वाला शुक्ष्म लोभ को उपशमकर ग्यारमे गुणस्थानमे जाता है, और क्षपक श्रेणी वाला शूक्ष्म लोभका नाश कर सिद्धा बारहवा गुणस्थानमे जाता है। शूक्ष्म सांपराय गुणस्थानमे लोभ कषाय एक तथा योग एक इसी प्रकार जघन्य व उतकृष्ट बन्धका प्रत्यय है। (ध. ८–२७)

उपशममोह गुणस्थान

इस गुणस्थानमें वीतराग दशाको प्राप्त होता है परन्तु वहांसे नियमसे गीरजाता है।

शंका— अवस्थित परिणामवाला उपशान्त कषाय वीतराग मोहमें कैसे गीरता है?

समाधान— स्वभावसे गीरता है।

उपशान्त कषायका प्रतिपात दो प्रकारका है। १ भवक्षय-निबन्धन और २ उपशमन काल क्षय निबन्धन। इनमें भवक्षयसे प्रतिपातको प्राप्त हुए जीवके देवोंमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें ही बंध उदीरणा संक्रमणादिरूप सब करण निज स्वरूपसे प्रवृत्त हो जाता है। जो कर्म उदीरणाको प्राप्त है वे उदीयावलीमे प्रवेशित है. जो उदीरणाको प्राप्त नहीं है वे भी अपकर्षण करके उदयावलीके बहार गोपुच्छाकार श्रेणी रुपसे निक्षिप्त होते है। (ध. ६–३१७)

प्रश्न-- उपशान्त मोहसे गीरनेवाला जीव सासादन गुण-स्थानको प्राप्त होता है या नही?

उत्तर--- द्वितीयोपशम सम्यक्त्वके कालके भीतर असंयमको भी प्राप्त हो शकता है, संयमासंयमको भी प्राप्त हो शकता है. और छोह आवलीके शेष रहनेपर सासादनको भी प्राप्त हो शकता है। परन्तु सासादनको प्राप्त होकर यदि मरता है तो नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति को प्राप्त करनेके लिये समर्थ नही होता है, नियमसेही देवगतिको प्राप्त करता है। **यह कषाय प्राभृत चूर्णसूत्र (यतिवृषभाचार्यकृत) का अभिप्राय है, किन्तु भगवान भूतबली के** उपदेश अनुसार उपशम श्रेणीसे उतरता हुआ सासादन गुणस्थान को प्राप्त नही करता है। निश्चयतः नरकायु, तिर्यंचायु और मनुष्यायु इन तीन आयुमेंसे पूर्वमें बांधी गय एकभी आयुसे कषायोको उपशमनके लिये समर्थ नही होता। इस कारणसे नरक, तिर्यंच, और मनुष्यगतिको प्राप्त नही करता है। (ध. ६. ३३१)

इस गुणस्थानमे योगका एक प्रत्यय बन्धका है।

क्षिणमोह गुणस्थान

ईस गुणस्थानमे आत्मा संपूर्ण वीतराग दशाको प्राप्त होता है। उपशमककी विशुद्धिसे क्षपककी विशुद्धिया अनंतगुणी है अतएव

आत्मा यहां अन्तर्मुहूर्त मात्र स्थितिकर नियमसे तेरहवे गुणस्थानमें जाता है। इसगुणस्थानमे सहजही ज्ञानावरणीयकर्म, दर्शनावरणीय कर्म और अन्तरायकर्मका नाश कर तेरहवा गुणस्थानका पहेले समयमे केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनंत सुख, और अनंतवीर्यकी प्राप्ति करता है। इसी गुणस्थानमें वेदनीकर्म, नामकर्म और गोत्रकर्मकी स्थिति सहजही पल्योपमके असंख्यात भागमे हो जाती है। इस गुणस्थानके अन्तमे जो सप्तधातु रुप औदारिक शरीर था, कि जिसमे असंख्यात निगोद था उसीका आपसे आप आयुका अन्त आनेसे वही औदारिक शरीर सप्तधातु रहित परम औदारिक स्फटिकमणी रुप हो जाता है। यह सब परिणामोकी विचित्रतासे आपसे आप हो जाता है। इस गुणस्थानमे मात्र योगका ही बन्ध प्रत्यय है।

सयोगी केवली गुणस्थान

संयोगोमे अंतर है। जब केवल ज्ञान की प्राप्ति होती है तब इन्द्र समवसरणादिकी रचना करता है। तब भगवानकी दिव्यधुनि सहज विना इच्छासे खिरती है।

शंका—केवलीके वचन शंसय और अनध्यवसायको पैदा करते हैं इसका क्या तात्पर्य है?

समाधान—केवलीके ज्ञानके विषयभूत पदार्थ अनंत होनेसे, और श्रोताके आवरण कर्मका क्षयोपशम अविशम रहित होनेसे, केवलीके वचनोके निमित्तसे शंसय और अनध्यवसायकी उत्पति होती है।

शंका—तीर्थंकरके वचन अनक्षररुप होनेके कारण ध्वनिरुप है, और इस लिये वे एकरुप है, और एक रुप होनेके कारण वे सत्य और अनुभय इस प्रकार दो प्रकारके नही हो शकती है?

समाधान—नही क्योंकि, केवलीके वचनमे '**स्यात**' इत्यादि रुपसे अनुभयरुप वचनका सदभाव पाया जाता है इसलिये केवलीकी ध्वनि अनक्षरात्मक है यह बात असिद्ध है।

शंका—केवलीके ध्वनिको साक्षर मान लेनेपर उनके वचन प्रति नियत एक भाषारुप ही होगे, अशेष भाषा रुप नही हो शकेगे?

समाधान—नही क्योंकि, क्रमविशिष्ट वर्णात्मक अनेक पक्तियोके सम्मुच्चय रुप, और सर्व श्रोताओमे प्रवृत्ति रुप होनेवाली असी केवलीकी ध्वनि संपूर्ण भाषा रुप होती है असा मान लेनेमे कोई विरोध नही आता है।

शंका—जबकी वह अनेक भाषा रुप है तो उसे ध्वनि रुप कैसे माना जा शकता हे ?

समाधान—नही क्योंकि, केवलीके वचन इसी भाषा रुप ही हे अैसा निर्देश नही किया जा शकता हे, इसलिये उनके वचन ध्वनिरुप हे यह वात सिद्ध हो जाति हे। (ध. १-२८३)

जब योग निरोध होता है, अर्थात वाणी खिरनी बंध हो जाती है, विहार बंध हो जाता तब सर्व साधारण जनता को मालुम हो जाता है कि भगवानका निर्वाण दिन निकटमेंही आने वाला है। तेरहवे गुणस्थान के अंतमे भगवानका शरीर के परमाणु आप से आप कपुरकी तरह विलय हो जाते है, तब सयोग केवली का काल पूर्ण होकर आत्मा अयोगी केवली गुणस्थामे प्राप्त हो जाता हे, वहां मात्र कार्मण शरीर है। औदारिक शरीर नहीं रहता है।

पांचो इन्द्रियावरण कर्मोंके क्षयोपशमको भावेन्द्रिय कहते हैं। परंतु जिनका आवरण कर्म समूल नष्ट हो गया है उनके वह क्षयोपशम नही होता हैं। और यदि प्राणोमें द्रव्येन्द्रियकाही ग्रहण किया जावे तो सज्ञी जीवोके अपर्याप्त कालमे सात प्राणोके स्थानपर कुल दोही प्राण कहे जायंगे, क्योंकि, उन्हे द्रव्येन्द्रियोका अभाव होता है। अतः यह सिद्ध हुआ कि सयोगी जिनके चार अथवा दो प्रण होते है। (ध. २-४४४)

केवली जिनके पाचइन्द्रिया और मनोबलको छोडकर शेप चार प्राण होते हे। तथा योग निरोधके समय वचनबलका अभाव होजानेपर कायबल, आनापान, और आयु ये तीन प्राण होते है। और तेरमे गुणस्थानके अन्तमे कायबल और आयु ये दो प्राण होता है तथा चौदवे गुणस्थानके पहेले समयमे मात्र आयु प्राण है, वहां कायबलका भी अभाव हो जाता हैं। (ध. ४-४१९)

शंका—जिसका आरंभ किया हुआ शरीर अपूर्ण है उसे अपर्याप्त कहते है। परंतु केवली सयोगी अवस्थामे शरीरका आरंभ तो होता नही अतः सयोगीकेवलीको अपर्याप्त पना कैसे बन सकता है?

समाधान—नहीं, क्योकि, कपाटादि समुद्घातादि अवस्थामे सयोगी छोह पर्याप्ती रुप शक्तिसे रहित है अतः उन्हें अपर्याप्त कहा है। (ध. २-४२०)

शंका—समुद्घात केवली अपर्याप्त कैसे है?

समाधान— उन्हे पर्याप्ततो माना नही जाता क्योंकि, औदारिक मिश्र काय योग अपर्याप्तकोंके होते है इस सूत्रसे उनके अपर्याप्तपना सिद्ध है इसलिये वे अपर्याप्त कही है। (ध. २-४४१)

शंका— केवलीयोंके समुद्घात सहेतुक होता है या निर्हेतुक ? निर्हेतुक होता है यह दुसरा विकल्प तो बन नही शकता. क्योंकि; अैसा माननेपर सभी केवलीयोंको समुद्घात करनेके अनंतर ही मोक्ष प्राप्तिका प्रसंग प्राप्त होगा। यदी यह कहा जावे कि, सभी केवलीं समुद्घात पूर्वक ही मोक्षको जाते है, अैसा मानलिया जावे इसमे क्या हानि हैं ? सोभी कहना ठीक नही हैं, क्योंकि, अैसा मानने पर लोक पूरण समुद्घात करनेवाले केवलीयोंकी वर्ष. पृथकत्वके अनंतर वीस संख्या होती है यह नियम नहीं बन शकता है ? केवलीयोंके समुद्घात सहेतुक होता है यह प्रथम पक्ष भी नहीं बन शकता हैं ? क्योंकि, केवली समुद्घातका कोई हेतु नही पाया जाता है। यदि यह कहा जावे कि तीन अघातिया कर्मोंकी स्थितिसे आयुकर्मकी स्थितिकी असमानता ही समुद्घातका कारण है, सो भी कहना ठीक नही है, क्योकि, क्षीण गुणस्थानकी चरम अवस्थामे संपूर्ण कर्म समान नही होते है इसलिये सभी केवलीयोंके समुद्घातका प्रसंग आ जायगा ?

समाधान—यति वृषभाचार्य के उपदेशानुसार क्षीणकषाय गुणस्थानके चरम समयमें संपूर्ण अघातिया कर्मोंकी

स्थिति समान नही होनेसे सभी केवली समुद्घात करके ही मुक्तिको प्राप्त होते है। परन्तु जिन आचार्यो के मत अनुसार लोक पुरण समुद्घात करनेवाले केवलीयोकी वीस सख्याका नियम है। उनके मतानुसार कितनेही केवली समुद्घात करते है, और कितने नही करते है।

शंका— कोनसे केवलीं समुद्घात नही करते है ?

समाधान— जिनकी संसार व्यक्ति अर्थात संसारमें रहनेका काल वेदनीय आदि तीन कर्मो की स्थितिके समान है वे समुद्घात नही करते है, शेप केवली करते है।

शंका—अनिवृति आदि परिणामोके समान रहनेपर संसार व्यक्ति स्थिति और शेप तीन कर्मोकी स्थितिमे विपमता क्यो रहते है ?

समाधान—नही, क्योकि, ससारकी व्यक्ति और कर्म स्थितिके घातके कारणभूत अनिवृतरूप परिणामोके समान रहनेपर संसारको उसके अर्थात तीन कर्मकी स्थितिके समान मान लेनेमें विरोध आता है। कहा है कि,

छम्मासा उवसेसे उप्पण्णं जस्स केवल णाणं।
सन्समुग्घाओ सिज्झई सेसा भज्जा समुग्घाए ॥

शंका—छोह मास प्रमाण आयु कर्मके शेप रहनेपर जिस जीवको केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ है. वह समुद्घातको करके ही मुक्त होता है, शेप जीव समुद्घात करते भी है, और नही भी करते है। (ध. १-३०३)

प्रश्न—आत्मा मुक्तिमे अपने परिणामोसे जाता है कि वज्ररिषभनारांच संहननकी मददसे जाता है ?

उत्तर—आत्मा अपना परिणामो निर्मल कर ही मोक्षमे जाता है। वज्ररिषभनाराच शरीर कुच्छ मदद करता नही है, क्योंकि पुद्गल अर्थात जड पदार्थ आत्माको क्या मदद करेगे ? जैसे क्रोध करनेमे आंख आपसे आप लाल हो जाती है. परन्तु शान्त परिणामोमे आंख लाल बन नही शकती, असे ही बारवा गुणस्थान रुप भाव हुआ कि तुरंत सप्त धातु मय शरीर आपसे आप परम औदारिक बन जाता है, एव परिणाम निर्मल करनेसे पूर्व अवस्थामे जो सप्तधातु रुप औदारिक शरीरमे त्रसरुप निगोद रासी थी वह आपसे आप विलयको प्राप्त होता है एव १३ वा गुणस्थानके अंतमे योगका अभाव होने से वज्र की हडी और वज्र की कील आपसे आप विलय होता है इसी प्रकार परिणाम निर्मल करनेसे सहनन आपसे आप बदल जाता है। वज्ररिषमनाराच सहननकी राह देखनी नही पडती। जो जीव निगोद मेंसे सिद्धा मनुष्य पर्यायमे आया है वह जीवने जन्ममे वज्ररिषभनाराच शरीर नही था परन्तु परिणाम निर्मल करते ही वही शरीर आप से आप वज्ररिषमनाराच रुप हो जाता है। इससे सिद्ध हुआ कि मुक्ति अपने परिणामो निर्मल करनेसे ही होता है दुसरा मार्ग नही है।

प्रश्न— सयोगी केवलीयोके कोनसे कर्मका उदय

रहता है ?

उत्तर— तिर्थंकरोके उदयमे २१ प्रकृतियोका उदय पाया जाता है। मनुष्यगति. पंचन्द्रियजाति, औदारिक, तेअस, और कार्माण शरीर, समचतुरसंस्थान —औदारिकशरीरअंगोपांग, व्रज्र-ऋषिमनाराचसहनन वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्स अगूरुलघुक, उपघात परघात उच्छास, प्रसस्त विहायोगति, त्रस, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, अस्थिर. शुभ, अशुभ, शुभग सुखर, आदेय, यशकिर्ती, निर्माण और तिर्थंकर यह इकतीस प्रकृतियां तिर्थंकरके उदयमें आती है।

संयोगी केवली जिनको बंधका मात्र योगका एक प्रत्यय है।

अयोगी केवली गुणस्थान

अयोगी जिनको मात्र अेक आयु प्राण है। शरीर और स्वासोस्वास प्राणका तेरवे के अन्तमे अर्थात चौदवा गुणस्थान के उत्पादमेही नाश हो जाता है। बज्रऋषभनाराच शरीरका भी चौदवे गुणस्थान के पहेले समयमे अभाव हो जाता है।

अयोगी जिनको छोह पर्याप्ति होती हैं। छहो पर्याप्ति होनेका यह कारण है कि पूर्वसे आई हुई पर्याप्तियां तथैव स्थित रहती है, इसलिये उपचारसे छोह पर्याप्ति कही हैं किन्तु यहापर पर्याप्ति जनित कोई कार्य नही होता है, अतः आयु

नामक अेक ही प्राण होता है।

शंका—अेक आयु प्राणके होनेका क्यां कारण है?

समाधान— ज्ञानावरण के क्षयोपशम रुप पांच इन्द्रिय प्राणतो अयोग केवली के है नही, क्योंकी ज्ञाना वरण कर्मका क्षय होजाने पर क्षयोपशम का अभाव पाया जाता है। इसी प्रकार आनाप्राण, भाषा और मनः प्राण भी उनके नही है, कयोंकि, पर्याप्ति जनित प्राण संज्ञा वाली शक्तिका उनके अभाव है। उसी प्रकार उनके कायबल नामका भी प्राण नही है, कयोंकि, उनके अयोग केवलीं के नाम कर्म के उदय जनित कर्म और नोकर्म के आगमनका कारण जो शरीर इसीका अभाव है, इस लिये अयोग केवली के अेक आयु प्राण ही होता है अैसा समजना चाहिये। किंतु उपचारका आश्रय लेकर उनके एक प्राण, छोह प्राण, और सात प्राण भी होते है। (ध. २-४४६)

प्रश्न—अयोगीजिन आहारक है या अनाहारक हैं?

उत्तर—चौदवे गुणस्थानमे शरीर निष्पादनके लिये आनेवाली नोकर्म पुद्गल वर्गणाओके अभाव हो जानेसे अयोगी जिन अनाहारक है। (ध. २-८५४)

प्रश्न—अयोगी जीनको कोनसी कर्म प्रकृतियोका उदय है?

उत्तर—मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजार्ति, त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय, यशकिर्ति, और तिर्थंकर, यह नौ प्रकृतियोका ही उदय

होता है ।

सयोगी जिन किसीभी कर्मका क्षय नही करते हैं । इसके पीछे विहार करके और क्रमसे योग निरोध करके वे अयोगी केवली होते है । वे भी अपने कालके द्वीचरम समयमें ७२ प्रकृतियोका क्षय करते है । इसके पीछे अपने कालके अन्तिम समयमे दोनों वेदनीयमेंसे उदयागत कोई एक वेदनीय मनुष्यायु, मनुष्यगति पंचेन्द्रियजाति, मनुष्यगति प्रायोग्यानुपूर्वी, त्रस, वाद्र, पर्याप्त, शुभग, आदेय, यशकिर्ति, तिर्थंकर और उच्चगौत्र इन तेरह प्रकृतियोंका क्षय करते हैं । अथवा मनुष्यगति प्रायोग्यानु पूर्वीके साथ अयोगी केवलीके द्वेचरम समयमे ७३ तहेतर प्रकृतियोंका और चरम समयमें १२ बारह प्रकृतियोका क्षयकर वही समयमें संसारका व्यय और सिद्ध पदकी उत्पति होती हैं । (ध. १–२२३)

इति भेदज्ञान शास्त्र मध्ये गुणस्थान अधिकार समाप्त हुवा ।

मार्गणाका स्वरुप

यह आत्मा अनादिकालसे चोरासीलाख योनीरुप पौद्गलीक शरीरको अपना मान कर अपना स्वरुपको भूल गया है ऐसा भूला हुवा आत्माको अपना स्वभावका ज्ञान करानेके लिये मार्ग-णाकी उत्पत्ति हुई है । मार्गणा १४ चौदाह प्रकारकी होती है ।

१ गति २ इन्द्रिय ३ काय ४ योग ५ वेद ६ कषाय ७ ज्ञान ८ संयम ९ दर्शन १० लेश्या ११ भव्यत्व १२ सम्यकत्व १३ संज्ञी १४ आहार मार्गणा इसी प्रकार मार्गणा चौदह है।

गतिमार्गणा—

गति चार होती है। १ मनुष्यगति २ देवगति ३ तिर्यंच-गति ४ नारकगति। यह गति आत्मा नही है। यह पौद्गलिक अवस्था है इसको आत्माकी अवस्था मानना मिथ्यात्व है।

इन्द्रिय मार्गणा—

इन्द्रिय पांच होती है। १ स्पर्शन २ रसना ३ घ्राण ४ चक्षु ५ श्रोत्र यह पांचेही इन्द्रिया पुद्गलकी रचना है। आत्मा इसको अपनी मान कर अनादि कालसे दुःखी हो रह्या है। क्योंकि, इन्द्रियोको अपनी माननेसे जब वह इन्द्रिया खराब हो जावेगी तब नियमसे आत्मा दुःखी हो जावेगा। मै एकेन्द्रिय हुं. मे दो इन्द्रियहूं, मैं त्रीन्द्रियहू, मै चतुरीन्द्रियहूं और मैं पंचे-न्द्रियहू, यह मानना मिथ्यात्व हे यथार्थ में विचाराजाय तो आत्माते अतिन्द्रिय है, आत्मामें इन्द्रियो होती नही हैं।. परंतु संयोग सम्बन्धसे आत्मामें इन्द्रिया हे अैसा मात्र बोला जाता है।. जब आत्मां शरीरसे चला जाता है तब शब इन्द्रियो शरीरमे रह जाते है. इससे साबीत होताहै कि इन्द्रिया आत्माकी नही है परंन्तु पुद्गलकी ही है।.

शंका— जिन जिवोको दो इन्द्रियां पायी जाती हैं वह

द्विइन्द्रिय जीव है ऐसा ग्रहण करनेमें क्या दोष है?

समाधान— नही क्योंकि, उपयुक्त अर्थ के ग्रहण करनेमें अपर्याप्त कालमे विद्यमान जीवोंके इन्द्रिया नही पाई जाने से उनके नही ग्रहण होनेका प्रसंग आता है।

शंका— क्षयोपशमको इन्द्रिय कहते है, द्रव्येन्द्रियको इन्द्रिय नही कहते है इसलिये अपर्याप्त कालमे द्रव्येन्द्रियको नही रहने पर भी द्वीन्द्रियादि पदोके द्वारा उन जीवोंका ग्रहण हो जायगा?

समाधान— नही, क्योंकि, यदि इन्द्रियका अर्थ क्षयोपशम किया जाय तो जिनका क्षयोपशम नष्ट हो गया है, ऐसे सयोगी केवलीको अनिन्द्रिय पनेका प्रसंग आजाता है।

शंका— आजाने दो?

समाधान— नही, क्योंकि, सूत्र सयोगी केवलीको पंचेन्द्रियरूपसे प्रतिपादन करता है। (ध. ३-२११)

शंका— सयोगी केवली और अयोगी केवलीयोंके संपूर्ण इन्द्रिया नष्ट हो गई है, अतएव उनके पंचेन्द्रिय यह सज्ञा कैसे घटीत होती है?

समाधान—नही, क्योकी, पंचेन्द्रिय जाति नाम कर्म की अपेक्षा सयोगी केवली और अयोगी केवली को पंचेन्द्रिय सज्ञा बन जाती है। (ध ३-२१७)

कायमार्गणा

काय छोह होती है। १ पृथवी काय २ अपकाय ३ तेज काय ४ वायु काय ५ वनस्पति काय ६ त्रस काय। यह छह काय पुद्गलकी अवस्था हैं, उसीको आत्माकी अवस्था मानना मिथ्यात्व हैं। काय और आत्मा अलग है। कायकी साथमे आत्माका तादात्म सबंध नही है परंतु संयोग सम्बन्ध है। संयोगी चीजको अपनी मानना यह मिथ्यात्व भाव हे। संयोगी वस्तुको संयोगी जाननां सम्यकत्व है। परन्तु व्यवहारसे बोला जाता है कि यह मेरा शरीर है, तो भी श्रद्धा तो यथार्थ ही ज्ञान करती हैं।

पृथ्वी है काय अर्थात शरीर जिनके उन्हे पृथ्वीकायजीव कहते है ऐसा नही कहना चाहिये, क्योंकि, पृथ्वी कायका ऐसा अर्थ करने पर विग्रहगतिमे विद्यमान जीवोके अकायित्वका अर्थात पृथ्वी कायिन्वका अभावका प्रसंग आता है।

शंका—तो फिर पृथ्वी कायिकका अर्थ कैसा कहना चाहिये ?

समाधान—पृथ्वीकायिक नामकर्मका उदयसे पुक्त जीवोके पृथ्वीकायिक कहते है. इस प्रकार पृथ्वी कायिकका अर्थ करना चाहिये।

शंका—पृथ्वीकायिक नाम कर्म कही भी अर्थात कर्मोके भेदोमे नही कहा गया है ?

समाधान—नही. पृथ्वी कायिक नामका कर्म, एकेन्द्रिय

नाम कर्मके भीतर अन्तर्भूत है।

शंका—यदि ऐसा है तो शूत्रसिद्ध कर्मोंकि संख्याका नियम नही रह शकता है?

समाधान—ऐसा प्रश्न करनेपर आचार्य कहता है कि—शूत्रमे कर्म आठही अथवा एकसो अडतालीस संख्याको छोडकर दुसरी संख्याका प्रतिषेध करनेवाला "एव" ऐसा पद शूत्रमें नही पाया जाता है।

शंका—तो फिर कर्म कितने है?

समाधान—लोकमे हाथी, घोडा, तोता, मयुर. मच्छली, मगर, भ्रमर, चींटी, ल्ट आदि रूपसे जितने कर्मोका फल पाया जाता है, कर्म भी उतने ही होते है। (ध. ३–३३०)

योगमार्गणा -

योग १५ पन्द्राह प्रकारका होता है। ४ मनयोग, ४ वचनयोग, ७ काययोग, इसी प्रकार योग १५ पन्द्राह होता है।

मनोयोगचार—१ सत्यमन, २ असत्यमन, ३ उभयमन, ४ अनुभयमन.

वचनयोगचार—१ सत्यवचन, २ असत्यवचन, ३ उभय-वचन, ४ अनुभयवचन.

प्रश्न—सत्यवचन किसको कहते हैं?

उत्तर—तादात्म सम्बन्धसे कथन कहना वह परमार्थ सत्य-वचन है। जैसे आत्माको आत्मा ही कहना। पुद्गलको

पुद्गलही कहना।

प्रश्न—अनुभय वचन किसको कहते है?

उत्तर—संयोग सम्बन्धसे बोलना वह अनुभय वचन है। जैसे आत्माको मनुष्य, स्त्री, पुरुष, बेल, हाथी, देव, नारकी कहनां यह अनुभय वचन है। वीतरागको पतित पावन कहना, करुणाके सागर कहना इत्यादि अनुभय वचन है। घीका घडा कहना, रोटीका तवा, जलका लोटा, दालकी बटलोई, हल्वाकी कडाई, चावलका डबा, गेहुका बोरा, सुरजमार्का केशर आदि वचनो है वह सब अनुभय वचन है?

प्रश्न— मनः योगका क्या स्वरुप है?

उत्तर— जैसे भगवानके रथकी बोली बुला रही है। एक मनुष्यने एकसो एक रुपीआ बोलीका बोला। तब एक धनी गृहस्थ सोचता है कि में एकसो ईकावन बोल्दु, परन्तु बोल शकता न्ही है। इतनेमे दुसरा गृहस्थने दोसोएक रुपीआ बोल-दीया। अब वही धनी शेठ विचारता है कि मै दोसोपचहत्तर बोल्दु, बोल्दु, किन्तु लोभके कारण बोलशकता नही है। इतनेमें तीसरा गृहस्थने तीनसो एक रुपीआ बोल दीया। वही धनी शेठ सोचता है कि तीनसों पचीस बोल्दु परन्तु लोभ कषाय छुटती नही है इसि कारणसे बोल शकता नही है। यही मनका विकल्पका नाम मनःयोग है।

शंका— ऐसा मनोयोगसे पुण्यका बन्धतो उसीको

हुवा होगा ?

समाधान— नही, मात्र मनःयोगसे पुण्य बन्ध नही होता है. किन्तु पुण्य बन्धका कारण मंद कषाय रूप आत्माका परिणाम है। वही धनी शेठका मन्द कषाय रुप परिणाम नही हुवा है, यदि मन्द कषाय रुप परिणाम होता तो वह नियम से वोलीमे रुपीआ बोल देते। नही बोलनेमे कषाय तो रोकती हैं, इससे यथार्थमे पुण्य का बन्ध नही पडा है।

शंका— अैसा भाव करनेसे वही आत्मा को कोनसा फल मिलेगा ?

समाधान— मन्द कषाय विना मात्र मनःका विकल्पसे नाम कर्म मे शुभ प्रकृतिमे स्थिति तथा अनुभाग बन्ध बडजाता हैं, तथा पाप प्रकृतियोमें स्थिति अनुभाग घट जाता हे जिसका फल्मे सुदर शरीर, वाणी मिलजावे, परन्तु धन न मिले, भिखारी रहे।

शंका— कृत, कारित, अनुमोदनका तो आगममे समान फल किया हैं, तो उसीको अनुमोदनका तो फल मिलना चाहिये ?

समाधान— यह अनुमोदना नही हैं। पांसमे धन न हो और विचार करेकी यदि मैरी पांसमे धन होता तो मै भी अैसा शुभ कार्यमे धनको लगाता। किन्तु धन होते संते एक पाई शुभ कार्यमे खर्च न करे, और मात्र विकल्प करे तो वह अनुमोदना नही हैं, परन्तु मात्र मनका घोडा हैं। अैसा मनका

घोडाओसे वेदनीय कर्ममे पुण्यका सक्रमणादि नही होता है। बाह्य सामग्रीका मिलना वेदनीय कर्मका फल हैं, नाम कर्मका फल नही है। मन्द कषाव रुप भावसे वेदनीय कर्मके पुण्य प्रकृतियेमे संक्रमणादि हो जाता हैं, परन्तु कषाय मन्द हुवे नही अर्थात लोभ छुटे नही, मात्र मनका विकल्पसे वेदनीय कर्ममे सक्रमणादि नही होता किन्तु नाम कर्म मे ही शुभ प्रकृतियोमे संक्रमणादि हो जाता है जिसका फलमे शुंदर शरीर, वाणी आदि मिले परन्तु धन न मिले। सुंदर कंठ द्वारा भिख मांगके रोटी खानी पडे।

काय योग सात है १ औदारिककाय २ औदारिक मिश्र ३ वैक्रियक काय ४ वैक्रियक मिश्र ५ आहारक काय ६ आहारक मिश्र ७ कार्माण काय।

यह १५ पन्द्राह प्रकारका योग पुद्गलकी अवस्था है इसको आत्माकी मानना यह मिथ्यात्व भाव है?

शंका—योग किसे कहते हैं?

समाधान—मन, वचन और काय सम्बन्धी पुद्गलोंके आलम्बेनसे जो जीव प्रदेशोंका परिस्पंदन होता है वही योग है।

शंका—यदि ऐसा है तो शरीरी जीव अयोगी होही नही शकता, क्योंकि, शरीर गत जीव द्रव्यको अक्रिय माननेमें विरोध आता हैं?

समाधान—यह कोई दोप नही है. क्योकि, आठो

कर्मोके क्षीण होजाने पर जो उर्द्धगमनोपलम्भी क्रिया होती है. वह जीवका स्वभाविक गुण है, क्योंकि, वह कर्मोदयके विनाही प्रवृत होती है। स्वस्थित प्रदेशोको न छोडते हुए, अथवा छोडकर जो जीव द्रव्यका अपने ·अवयवो द्वारा परिस्पन्द होता है वह अयोग है, कयोकि, वह कर्म क्षयसे उत्पन्न होता है। अतः सक्रिय होते हुये भी शरीरी जीव अयोगी सिद्ध होते है, क्योंकि, उनके जीव प्रदेशोके तत्पायमान जल प्रदेशोके सदस उद्वर्तन और परिव्रर्तन रूप क्रियाका अभाव है। इस लिये अयोगीको अबन्धक माना है। (ध. ७-१७)

प्रश्न— ऋज्जु गतिमे कोनसा योग और आनुपूर्वी है?

उत्तर— ऋज्जुगतिमें तो कार्माण योग न होकर औदारिक मिश्र और वैक्रियक मिश्रकाय योग ही होता है। ऋजु गतिसे उत्पन्न होनेवाले जीवके प्रथम समयमे ही विवक्षित क्षेत्रमें उत्पति होजानेसे संस्थान नाम कर्मका उदय होजाता है। इसलिये आनुपूर्वी नही होती है। क्योंकि, आनुपूर्वी और संस्थान नामकर्मोसे उत्पन्न होनेवाले आकार भिन्न है एकसे नही है। (ध. ४-३०)

प्रश्न— मनयोग, वचनयोगका जघन्य अन्तर काल कितना है?

उत्तर— मनोयोगी वचनयोगीका कमसेकम अन्तर अन्तमुहूर्तकाल है।

शंका— मनोयोगी और वचनयोगी जीवोका एक योगसे

दुसरे योगमें जाकर पुनः उसी योगमें लौटने पर एक समय प्रमाण अन्तर क्यों नही पाया जाता ?

समाधान—नही पाया जाता, क्योंकि, जब एक मनोयोग और वचनयोगका विघात हो जाता है. या विवक्षित योग वाले जीवका मरण हो जाता है, तब केवल एक समयके अन्तरसे पुनः अनन्तर समयमें उसी मनोयोग या वचनयोगकी प्राप्ति नही हो शकती है। (ध. ७–२०५)

प्रश्न—काययोगीका जघन्य अन्तर कितना है ?

उत्तर—काययोगी जीवोका अन्तर कमसेकम एक समयतक जीवोका अन्तर होता है। क्योंकि काययोगसे मनयोगमे या वचन योगमे जाकर एक समय रह कर दुसरे समयमे मरण करने या योगके व्याघातित होनेपर पुनः काययोगको प्राप्त हुए जीवके एक समय जघन्य अन्तर पाया जाता हैं। (ध. ४–२०६)

प्रश्न-- वैक्रियिक मिश्र काययोगिका उत्कृष्ट अंतर कितना होता है ?

उत्तर— वैक्रियिक मिश्र काययोगिका अंतर उत्कर्षसे बाहर मुहूर्त होता है। क्योकि, देव, अथवा नारकीयोंमें न उत्पन्न होनेवाले जीव यदि बहुत अधिक काल तक रहते है तो बारह मुहूर्त तक ही रहते है। (ध. ७–४८५)

वेद मार्गणा

वेद तीन होता है। १ स्त्रीवेद २ पुरुषवेद ३ नपुशकवेद। यह तीनो वेद आत्माका परिणाम है। स्त्रीवेदमे पुरुषके साथ रमनेका भाव होता है। पुरुषवेदमें स्त्रीकी साथ रमनेका भाव होता है। नपुशकवेदमें स्त्री तथा पुरुष दोनोकी साथ रमनेका भाव होता है। यह तीनो भावका नाम भाववेद है। तथा नोकषाय वेदनीय मोहनीय नामकी कर्मकी प्रकृतिका नाम द्रव्यवेद है। पुरुष, स्त्री रुपी ढाचाको द्रव्य वेद माननां भूल है। यह तो नामकर्मकी अंगोपांग नामकी कर्म प्रकृतिका फल है।

प्रश्न—स्त्रीवेदी जीवोके अपर्याप्तकालमे कोनसा , गुणस्थान होता हे ?

उत्तर—स्त्रीवेदी जीवोके अपर्याप्त कालमें मिथ्यात्व और सासादन गुणस्थान होता है। (ध २–६७४)

प्रश्न—मनुष्यनियोमें (स्त्री वेदमे) क्षायक सम्यगद्रष्टि, जीव, कितने हे ?

उत्तर—मनुष्यनियोमें (स्त्री वेदमें) असंयत सम्यगद्रष्टि संयतासंयत, प्रमतसंयत और अप्रमतसंयतमे क्षायक सम्यगद्रष्टि जीव सबसे कम हे। क्योकि, अप्रसस्त वेदके उदयके साथ दर्शन मोहनीयको क्षपण करनेवाले जीव बहुत नही पाये जाते। (ध. ५–२७८)

भाव स्त्रीवेदी तथा नपुंशकवेदी पुरुषको आहारक ऋद्धि उत्पन्न नही होती है एवं मनः पर्ययज्ञान और परिहार विशुद्ध संयम भी उत्पन्न नही होते है।

शंका— मैथुन संज्ञा का वेद मार्गणामें अन्तरभाव होता है या नही?

समाधान— नही, क्योंकि, तीनो वेदोके उदय सामान्यके निमित्तसे उत्पन्न हुई मैथुन संज्ञा और वेदोके उदय विशेष स्वरुप वेद इन दोनोमें एकत्व नही वन शकता है। (ध. २–४१३)

कषाय मार्गणा

कषाय २५ पचीस होती हैं। १ अनंतानुबंधी २ अप्रत्याख्यान ३ प्रत्याख्यान ४ संज्वलन। इनमेंसे प्रत्येक के क्रोध, मान, माया और लोभरुप आत्म परिणाम यह शोला कषाय, तथा नौ नोकषाय १ हास्य २ रति ३ अरति ४ शोक ५ भय ६ जुगप्सा ७ स्त्री वेद ८ पुरुष वेद ९ नपुंशक वेद यह भी आत्मा के परिणाम है यही नौ मीलकर २५ कषाय रुप भाव होता है। यह आत्माका चारित्र नामका गुणका विकारी परिणाम हे यही आकुलताकी जननि है। यही परिणाम मिटनेसे ही अनाकुल दशा की प्राप्ति होती है।

शंका— परिग्रह सज्ञा लोभ कषायमे अन्तर्भाव होती है?

समाधान— परिग्रह सज्ञाभी लोभ कषायके साथ एकत्वको प्राप्त नही होती हे, क्योंकि बाह्य पदार्थो को विषय करने वाला

होनेके कारण परिग्रह सज्ञाको धारण करने वाले लोभसे, लोभ कषाय के उदय रुप सामान्य लोभ मे भेद हैं। अर्थात वाह्य पदार्थो के निमितसे जो लोभ होता है उसे परिग्रह सज्ञा कहते है, और लोभ कषायके उदयसे उत्पन्न हुऐ परिणामोका लोभ कहते हैं।

शंका— यदि यह चारो ही संज्ञाओ बाह्य पदार्थों के संसर्गसे उत्पन्न होती हो तो अप्रमत गुणस्थान वर्ती जीवोके संज्ञाओका अभाव होजाना चाहिये ?

समाधान – नही कयोंकि, अप्रमतोंमे उपचारसे उन संज्ञाओका सद्भाव स्विकार किया गया है। (ध. २–४१२)

ज्ञानमार्गणा—

ज्ञान आठ प्रकारका होता है। १ मतिज्ञान, २ श्रुतज्ञान, ३ अवधिज्ञान, ४ मनः पर्ययज्ञान, ५ केवलज्ञान, ६ कुमतिज्ञान, ७ कुश्रुतज्ञान, ८ कुअवधिज्ञान—यह आत्माकी परणति है। कुमतिज्ञान कुश्रुतज्ञान तथा कुअवधिज्ञान जब तक आत्मामे मिथ्यात्वरुप भाव है तब तक कहा जाता है, मिथ्यात्वरुप भावका अभाव होनेसे वही ज्ञान सुज्ञान कहा जाता है। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान अवधिज्ञान तथा मनःपर्यायज्ञान यह चार ज्ञान आत्माका पराधीन ज्ञान है। यह चारे ज्ञानकी अवस्था आत्माके ज्ञान नामका गुणकी विकारी अवस्था है। केवलज्ञान आत्माकी स्वभावीक अवस्था है। वही अवस्था प्रगट हुआ बाद वह अवस्थाका

कभी भी नाश नही होतां है।

प्रश्न— पज्ञा और ज्ञानमे क्या भेद है ?

उत्तर— गुरुके उपदेशसे निरपेक्ष ज्ञानकी हेतु भूत जीवकी शक्तिका नाम प्रज्ञा है और उसका कार्य ज्ञान हे इस कारण दोनोमे भेद है। (ध. ९–८४)

संयम मार्गणा

संयम ७ सात है। १ असंयम २ सयमासंयम ३ सामायिक ४ छेदोपस्थापना ५ परिहार विशुद्धि ६ शूक्ष्म सांपराय ७ यथाख्यातसंयम। आत्मामे जितनां अंशमे वीतराग भावकी प्राप्ति होती हैं वहतो संयम भाव है और जितना सराग भाव है वह असंयम भाव है।

शंका— संयम मार्गणा के अनुवादसे संयमासंयम और असंयम इन दोनोका ग्रहण कैसे होतां है।

समाधान— संयम मार्गणा के अनुवादसे न केवल संयमका ही ग्रहण होता है, किंतु सयम, संयमासंयम, और असंयमका भी ग्रहण होता है।

शंका— यदि अैसा है तो इस मार्गणा को सयमानुवादका नाम देना युक्त नही है ?

समाधान— नही, क्योंकि, "आम्रवन" वा "निम्बवन" के समान प्राधान्य पदका आश्रय लेकर "संयमानुवादसे" यह व्यपदेश करनां युक्तियक्त हो जाता है। (ध. ४–२८७)

दर्शन मार्गणा

दर्शन चार प्रकारका होता है। १ चक्षुदर्शन २ अचक्षुदर्शन ३ अवधिदर्शन ४ केवल दर्शन। इनमे प्रथमके तीन दर्शन परोक्ष दर्शन है, अर्थात पराधीन है, और मात्र केवल दर्शन प्रत्यक्ष दर्शन है। यही चार प्रकारका दर्शन आत्माके दर्शन गुणकी पर्याय हैं।

शंका—उपयोगका ज्ञान दर्शन मार्गणामे अन्तर्भाव होता है ?

समाधान—स्व, और परको ग्रहण करनेवाले परिणाम विशेषको उपयोग कहते है। वह उपयोग ज्ञान मार्गणामें और दर्शन मार्गणामे अन्तर्भूत नही होता है, क्योंकि, ज्ञान और दर्शन, इन दोनोके कारणरूप ज्ञानावरण और दर्शनावरण के क्षयोपशमको उपयोग माननेमे विरोध आता है। (ध. २-४१२)

लेश्या मार्गणा

आत्मा ओर प्रवृति (कर्म) का सश्लेषण अर्थात संयोग करनेवाली लेश्या कहलाती है। अथवा जो कर्मोंसे आत्माको लेप करती है वह लेश्या है। अभिप्राय यह है कि मिथ्यात्व, असंयम, कषाय, और योग ये लेश्या हैं। इस प्रकार लेश्याका लक्षण करने पर अति प्रसंग दोष भी नहीं आता है, क्योकि, यहा पर प्रवृति शब्द कर्मका पर्याय वाची ग्रहण किया है, अथवा कषायमे अनुरंजित योगकी प्रवृति को लेश्या कहते है। इस

प्रकार लेश्याका लक्षण करनेसे केवल कषाय और केवल योगको लेश्या नही कह शकते हैं, किंतु कषायानुविद्ध योग प्रवृतिको ही लेश्या कहते है, यह बात सिद्ध हो जाती है। इससे बारहवे आदि गुणस्थानवर्ती वीतरागियोंके केवल योगको लेश्या नही कह शकते हैं, अैसा निश्चय नहीं कर लेना चाहिये, क्योंकि, लेश्यामें योगकी प्रधानता है, कषाय प्रधान नही है, क्योंकि, वह योग प्रवृतिका विशेषण है। अतएव उसकी प्रधानता नही हो शकती है। कहा भी है कि—

लिपंदि अप्पी कीरदि एदाअे णियय पुण्य पावच।
जीवो त्ति होई लेस्सा-लेस्सा गुण जाणय क्जादा ।९४।

अर्थ— जीसके द्वारा जीव पुण्य और पापसे अपनेको लिप्त करता हैं उनके आधीन करता है उसको लेश्या कहते है, अैसा लेश्याके स्वरूपको जाननेवाला गणधर देव आदिने कहा है। (ध. १–१५०)

शंका—योग और कषायके कार्यसे भिन्न लेश्याका कार्य नही पाया जाता है इसलिये उन दोनोसे भिन्न लेश्या नही मानी जा शकती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि विपरितताको प्राप्त हुए, मिथ्यात्व, अविरत, आदिके आलंम्बनरुप आचार्यादि वाह्य पदार्थोंके संपर्कसे लेश्या भावको प्राप्त हुए योग और कषायोसे, केवल योग और केवल कषायसे भिन्न संसारकी वृद्धिरुप कार्यकी उपलब्धि होती

है, जो केवल योग और केवल काषायका कार्य नही कहा जा शक्ता, इसलिये लेश्या उन दोनोंसे भिन्न है यह बात सिद्ध हो जाती है। कषायका परिणाम छोह प्रकारका होता है। वह इस प्रकार है। तीव्रतर, तीव्र, मन्द, मन्दतर और मन्दतम, इन छोह प्रकारके कषायके परिणामसे उत्पन्न हुई परिपाटी क्रमसे लेश्या भी छोह हो जाती है।- १ कृष्ण. २ नील. ३ कापोत. ४ पीत. ५ पद्म. ६ शुक्ललेश्या। (ध. १. ३८७)

कृष्ण लेश्या-नील लेश्या-और कापोत लेश्यावाले जीव एके-एकेन्द्रियसे लेकर असंयत सम्यगद्रष्टि गुणस्थानतक होते है।

पीत लेश्या और पद्मलेश्या वाले जीव संज्ञी मिथ्याद्रष्टिसे लेकर अप्रमत गुणस्थानतक होते हैं।

शुक्ललेश्यावाले जीव संज्ञी मिथ्याद्रष्टिसे लेकर सयोगी केवली गुणस्थानतक होते हैं।

शंका—जिस गुणस्थानमे कषायका उदय पाया नही जाता है तो फिर यहां शुक्ललेश्या किस कारणसे कही?

समाधान—यहा पर कर्म और नोकर्म लेपके निमित्त-भूत योगका सद्भाव पाया जाता है इस लिये शुक्ल लेश्या कहा है। (ध. १-३९१)

शंका—केवल योगको लेश्या यह संज्ञा कैसे प्राप्त हो सकती है?

समाधान—नही. क्योकि, जो लिपन करती है वह

लेश्या है; इस निरुक्ति के अनुसार योगके भी लेश्या संज्ञा सिद्ध है।

शंका—औदारिक मिश्र काययोगी जीवोके भावसे छोह लेश्या होनेका क्या कारण है?

समाधान—औदारिक मिश्र काययोगमे वर्तमान मिथ्याद्रष्टि, सासादन सम्यगद्रष्टि जीवोके भावसे कृ'ण, नीरु, और कापोत लेश्याही होती है। और कपाट समुद्घातगत औदारिक मिश्र काययोगी सयोगी केवलीं के एक शुक्ल लेश्या ही होती है। किंतु जो देव और नारकी, मनुष्य गतिमे उत्पन्न हुये है, औदारिक काययोगमे वर्तमान है और जीनकी पूर्वभव सबन्धी भावलेश्याये अभीतक नष्ट नही हुई है, असा जीवोके भावोसे छहो लेश्याये पाई जाती हैं. इस लिये औदारिक मिश्र काययोगी जीवोके छहो लेस्याये पाई जाती है. इसलिये औदारिक मिश्र काययोगी जीवोके छहो लेश्या कही गय है।

शंका—मरणकाल्मे लेश्यायोका परिवर्तन किसको होता है?

समाधान—तिर्यंच और मनुष्योमे उत्पन्न होनेवाले परमार्थके अजानकार और तीव्र लोभ कपायवाले असे मिथ्याद्रष्टि और सासादन सम्यगद्रष्टि देवोके मरते समय संक्लेस उत्पन्न होजाने से, तेज, पद्म, और शुक्ल लेश्याये नष्ट होकर कृष्ण, नील, और कापोत लेश्यायोमे यथा संभव कोइ एक लेश्या हो जाती है, किन्तु जो मनुष्योमेही उत्पन्न होनेवाले है, मंद लोभ कषाय वाले

है, परमार्थके जानकार हैं, और जिन्होने जन्म, जरा, और मरणके नष्ट करनेवाले अरहन्त भगवन्तमे अपनी बुद्धिको लगाया है, अैसे सम्यगद्रष्टि देवोके चिरंतन तेज, पद्म और शुक्ल लेश्याये मरण करनेके अनंतर अन्तर्मुहूर्त तक नष्ट नही होती है।

शंका— लेश्याका जघन्य काल एक समयका होता है या नही एवं लेश्यामे परिवर्तन किस प्रकार होता हैं ?

समाधान— जैसे नील लेश्यामे वर्तमान कीसी जीव के उस लेश्या के काल क्षय हो जानेसे कृष्ण लेश्या हो गय, और वह उसमे सर्व लघु अन्तर्मुहूर्त काल रहकर नील लेश्या वाला हो गया।

शंका— कृष्ण लेश्या के पश्चात कापोत लेश्या वाला क्यो नही हुआ ?

समाधान— नही, कयोकि, कृष्ण लेश्या के परिणत जीवके तदनन्तर ही कापोत लेश्या रुप परिणमन शक्ति का होना अभाव है।

शंका— यहापर योग परिवर्तन के समान एक समयरूप जघन्य काल क्यों नही पाया जाता है।

समाधान—नही, क्योकि, योग और कषाय के समान लेश्यामे लेश्याका परिवर्तन अथवा गुणस्थानका परिवर्तन अथवा मरण और व्याघातसे एक समय कालका पाया जाना असंभव है। इसका कारण यह है कि न तो लेश्या परिवर्तन के द्वारा

एक समय पाया जाता है, क्योंकि, विवक्षित लेश्यासे परिणत हुए जीवके द्वितिय समयमे उस लेश्याका विनाशका अभाव है। तथा इसी प्रकारसे अन्य गुणस्थानको गये हुए जीवके द्वितीय समयमे अन्य लेश्यामे जानेका भी अभाव है। न गुणस्थान परिवर्तनकी अपेक्षा एक समय संभव है, क्योंकि विवक्षित लेश्यासे परिणत हुए जीवके द्वितीय समयमें अन्य गुणस्थानके गमनका अभाव है। न व्याघातकी अपेक्षा ही एक समय संभव हे क्योंकि. वर्तमान लेश्या के व्याघातका अभाव है। और न मरणकी अपेक्षा ही एक समय संभव है, क्योंकि, विवक्षित लेश्या से परिणत हुए जीवके द्वितीय समयमे मरणका अभाव है। (ध. ४-४५६)

शंका—पद्म लेश्याके कालमे विद्यमान कोई प्रमत संयत उस लेश्याके काल क्षयसे तेजो लेश्यासे परिणत होकर द्वितीय समयमे अप्रमत संयत क्यों नही होजाता है?

समाधान—नही, क्योंकि, हीयमान लेश्याके साथ अप्रमत गुणस्थानके ग्रहण करनेका अभाव है।

शंका—तो उक्त प्रकारका जीव मिथ्यात्वादि निचेके गुणस्थानको क्यों नही प्राप्त होजाता है?

समाधान—नही, क्योंकि, तेजो लेश्यामे गिर करके अन्तर्मुहूर्त रहे विना नीचेके गुणस्थानोंके ग्रहण करनेका अभाव है। (ध. ४-४६९)

प्रश्न—कौनसी लेश्यामे प्रथमोपसम सम्यकत्वकी प्राप्ति होती है?

उत्तर—कृष्णादि छोह लेश्यामेंसे किसी एक लेश्या वाला हो किंतु यदि अशुभ लेश्या हो तो हीयमान होना चाहिये, और यदि शुभ लेश्या हो तो वर्धमान होना चाहिये। (ध. ६–२०७)

भव्यत्वमार्गणा—

भव्यत्व मार्गणा दो प्रकारकी है। १ भव्य, २ अभव्य, भव्य, अभव्य आत्माके श्रद्धा नामका गुणकी पर्याय है। वह पर्याय सहज उत्पन्न अनादिसे है। वह पर्याय कर्मके सदभाव अथवा अभावमे हुई नही हैं, इसलिये इसीको पारिणामिक भावमें गिनी है। भव्य पर्याय अनादि शान्त भी क्षायक सम्यगदर्शनकी अपेक्षासे होती हैं। और भव्य पर्याय शादि शान्त भी उपशम और क्षयोपशमसे गीरा हुआ जीवोको होती है। अभव्य पर्याय अनादि अनंत है। अभवी जीवको चार लब्धि रूप परिणाम हो शकता है। कहा है भी कि

खय उवसमो विसोही देसण पाओग्ग करणलद्धीय।
चत्तारि विसामण्णा करणं पुण होइ सम्मत्ते ॥१॥

अर्थ—क्षयोपशम लब्धि, विशुद्धि, देशना, प्रायोग और करण ये पांच लब्धियां होती है। उनमेसे प्रारंभकी चार तो सामान्य हैं, अर्थात भव्य और अभव्य जीव, इन दोनोके होती है, किंतु पांचवी करण लब्धि सम्यकत्व उत्पन्न होनेके समय

भव्य जीवके ही होती है। (ध. ६-१३९)

शंका— देशना लब्धि किसको कहते है ?

समाधान— छह द्रव्यो और नौ पदार्थोके उपदेशका नाम देशना है। उस देशनासे परिणत आचार्य आदि की उपलब्धिको और उपदिष्ट अर्थके ग्रहण, धारण, तथा विचारणकी शक्तिके समागमको देशना लब्धि कहते है। (ध. ६—२०४)

श्रीधवली ग्रन्थके ७ सातवे खन्डके पृष्ट १७८ में अभव्य भावके बारामे निम्न प्रकार शंका कि है—

शंका— अभव्य भाव जीवकी एक व्यंजन पर्यायका नाम है इसलिये उसका विनास अवस्य होना चाहिये. नही तो अभव्यत्वके द्रव्य होनेका प्रसंग आजायगा ?

समाधान— अभव्यत्व जीवकी व्यंजन पर्याय भलेही हो, पर सभी व्यंज्जन पर्यायका अवस्य नाश होना चहिये ऐसा कोई नियम नही है, क्योंकि, ऐसा माननेसे एकान्त वादका प्रसंग आजायगा। ऐसा भी नही है कि, जो वस्तु विनिष्ट नही होती है, वह द्रव्य ही होना चाहिये क्योंकि जिसमे उत्पाद, व्यय, और ध्रौव्य पाये जाते है उसे द्रव्य रूपसे स्वीकार किया गया है।

इस शंकामे अभव्य भावको व्यञ्जन पर्याय मानी है। परन्तु व्यंज्जन पर्याय तो प्रदेशत्व नामका गुणकी होती है और प्रदेशत्व नामका गुण छोद्रव्योमे पाया

जाता है, इसलिये अभव्य पर्याय किस गुणकी होनी चाहिये यह विचारनेका है।

जिस जीवमे भव्य भाव है वह जीव में सम्यकत्व प्राप्त करनेकी शक्ति है, और जिस जीवमे अभव्य भाव है वह जीवमे सम्यकत्व प्राप्त करनेकी शक्ति नही है।

सम्यक्त्व मार्गणा

यह मार्गणा छोह प्रकारकी होती है। १ मिथ्यात्व २ सासादन ३ मिश्र ४ क्षयेोपशमिक ५ औपशमिक ६ क्षायक यह छोह भाव आत्माके श्रद्धा नामका गुणकी अवस्था है। सब गुणोकी शुद्ध अथवा अशुद्ध अवस्था होती है, परंतु कर्मकी अपेक्षासे छोह भेद पडा है।

संज्ञी मार्गणा

संज्ञी मार्गणा दो प्रकारकी होती है। १ संज्ञी २ असंज्ञी। जीस जीवको ज्ञानो पयोग करनेमे सहायक पुद्गलीक मन मिला है वही संज्ञी जीव कहलाता है, और जीस जीवको ज्ञानोपयोग करनेमे सहायक पौदगलीक मन नही मिला है वह असंज्ञी जीव है। वह मन जबतक क्षयेोपशम ज्ञान की अवस्था होती है तब तक सहायक है। क्योकि, क्षयोपशम ज्ञान पराधीन ज्ञान है। इसका विकास होते होते यदि पौद्गलीक मन बिगडजावे तो [illegible] ज्ञान कर नही शकता है, उसी कालमे आत्माका ज्ञान [illegible] रह सकता है परंतु उपयोग रूप कार्य कर नहीं शकता

है । मनका साहरा बारवाह गुणस्थानका अंततक लिया जाता है । तो भी मन आत्मिक गुण नही है वह तो पौद्गलिक संयोगी वस्तु है, वह जड पदार्थ है ।

आहारक मार्गणा

यह मार्गणा दो प्रकारकी है । १ आहारक २ अनाहारक । जब जीव बाह्य शरीरका परमाणु ग्रहण करता है वह जीव आहारक कहा जाता है और जो जीव बाह्य शरीरका परमाणु ग्रहण नही करता वह अनाहारक जीव कहा जाता है । जीव विग्रहगतिमें एवं समुद्घात अवस्थामे आनाहरक ही रहता है । जब चौदवा गुणस्थान होता है तब बाह्य शरीरका अभाव होजानेसे वह जीव अनाहारक होता है बाकि की अवस्थामे जीव आहारक ही हैं ।

शंका—कार्मण काय योगकी अवस्थामे भी कर्म वर्गणाओके ग्रहणका अस्तित्व पाया जाता हैं, इस अपेक्षासे कार्माण काय योगी जीवों को आहारक क्यों नही कहा जाता हैं ?

समाधान—उन्हे आहारक नही किया जाता हैं, क्योंकि, कार्मण काय योगके समय नोकर्म वर्गणाओके आहारका अधिकसे अधिक तीन समयतक विरहकाल पाया जाता है । [ध. २–६६९]

इति ‘ भेद ज्ञान ’ शास्त्र मध्ये मार्गणा अधिकार समाप्त हुआ ।

नवतत्वका स्वरुप

नव तत्व अर्थात पदार्थोका संक्षेप स्वरुप और नाम निम्न प्रकार है। १ जीवतत्व २ अजीवतत्व ३ आश्रवतत्व ४ पाप-तत्व ५ पुण्यतत्व ६ बन्धतत्व ७ संवरतत्व ८ निर्जरातत्व ९ मोक्षतत्व। इसमे मात्र जीवतत्व निश्चयनयका विपय है। और आठ तत्व व्यवहारनयका विपय है। जिसको द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय भी कहा जाता है।

१ जीवतत्व

आत्माका जो अनादि अनंत स्वभाव है वही मात्र जीवतत्व है। मात्र ज्ञायक स्वभाव ही, चैतन्यका पिन्ड, ज्ञानकाघन, वही मात्र जीवतत्व है। जीसमे न गुण गुणीका भेद होता है, न गुण पर्यायका भेद होता है, ऐसा अखंड ज्ञान ज्योति परम पारगामिक भाव जीवतत्व है। वह जीवतत्व कैसा है.

"जिसमे कालापीला आदि वर्ण नही है, जिसमे सुगन्ध दुर्गन्द नही है, जिसमे खट्टा मिठ्ठा रस नही है जिसमें शित-उष्णादि स्पर्स नही है, जिसमे औदारिकादि शरीर नही है, जिसमे समचतुरसादि सस्थान नही है, जिसमे व्रज्रर्षभनाराचादि संहनन नहीं है, जिसमें प्रीतिरुप राग भाव नही है, जिसमे अप्रीतिरुप द्वेष भाव नही है, जिसमें यथार्थतत्वकी अप्राप्तिरुप मोह

नही है, जिसमे मिथ्यात्व कषायादि प्रत्ययो नही है जिसमे ज्ञानावरणादि पुद्गलिक द्रव्य कर्म नही है, जिसमे पुद्गलीक शरीर नहीं है, जिसमे कर्मकी शक्तिका अवि भाग प्रतिच्छेका समूह रुप वर्ग नही है, जिसमें वर्गोका समूह रुप वर्गणा नहीं हैं, जिसमे मंद तीव्र रस रुप पुद्गलीक कर्मके समूह कर विशिष्ट वर्गोकी वर्गणा का स्थान रुप स्पर्धक भी नहीं हैं. जिसमे स्वपरके एकपनेका निश्चय आशय होनेपर विशुद्ध चैतन्य परिणामसे जिनका जुदापना लक्षण हैं अैसा अध्यात्म स्थान 'भी नही है, जिसमे पुद्गलीक कर्म प्रकृतियोका रस रुप अनुभाग स्थान भी नहीं हैं, जिसमे मन, वचन, काय रुप पुद्गलीक योग स्थान भी नही है, जिसमे पुद्गलीक कर्मोका बन्ध स्थान भी नही है, जिसमें पुद्गलीक कर्मोका फल रुप उदय स्थान भी नही हैं, जिसमे गति आदि मार्गणा स्थान भी नही है, जिसमे पुद्गलीक कर्मोका साथमे रहेने रुप स्थिति बन्ध स्थान भी नही है, 'जिसमे तीव्र कषायो रुप शंक्लेस स्थान भी नही है, जिसमे मंद कषायो रुप विशुद्धि स्थान भी नही है, जिसमें चारित्र मोहके उदयकी क्रमसे निवृतिरुप संयम लब्धि स्थान भी नही है, जिसमे पर्याप्त अपर्याप्तादि जीव स्थान भी नही है. जिसमे मिथ्यातादि गुणस्थान भी नही हैं. अैसा मात्र ज्ञानज्योति, चैतन्यपिन्ड—परमपारिणामिक भाव मात्र जीव तत्व है। जो जीव तत्व मात्र निश्चयनय का विषय है। जो जीव तत्व, मात्र दर्शन चेतनाका विषय है। जो

जीव तत्व मात्र सम्यगदर्शनका ध्येय है। जीव तत्व वह है कि जिसका लक्ष बिंदु पर जीव मोक्ष तत्वकी उपलब्धि करता है। वह जीव तत्व जयवंत हो, जयवंत हो, जयवंत हो।

शंका— जीवतत्व और जीवद्रव्यमे क्या भेद है ?

समाधान— जीवतत्व मात्र ज्ञायक स्वभावका नाम, अर्थात चैतन्य पिन्डका नाम अथवा परम पाराणामिक भावका नाम जीवतत्व है, और अनंतगुण और अनंत-गुणोकी शुद्धाशुद्ध अवस्थाका एव जीव और पुद्गलकी मिश्रित पर्यायका धारण करनेवाला वही जीव द्रव्य हैं, यह इसमे भेद है।

कैसा है जीवतत्व ? वर्णादिक अथवा राग मोहादिक आदि सभी भावो इस पुरुष आत्म तत्व से भिन्न है, इस कारण अंतर्दष्टिसे देखने वालेको ये सभी भावो नहीं दिखते केवल एक चैतन्य भाव स्वरूप "चैतन्यपिन्ड" अभदेरूप आत्माही दिखता है। यही निश्चयनय का मात्र विषय है।

वर्णादि गुणस्थान पर्यंत मात्र जो जो है वह जीव द्रव्यकी अपेक्षासे जीवका है अैसा कहा जाता है परन्तु जीवतत्वकी अपेक्षासे यह भाव जीवतत्व नही हैं। क्योकि द्रव्यका लक्षण शुद्धाशुद्ध पर्यायका पिन्ड है।

वर्णादि गुणस्थान पर्यंत भाव है वे सभी एक पुद्गलके रचे है अर्थात कर्मके उदयमे ही होता है अैसा तुम जानो इसलिये

ये पुद्गलही हो आत्मतत्व न हो। क्योंकि, आत्म तत्व तो विज्ञानघन है ज्ञानका पुंज है. इस कारण वर्णादिकोसे अन्य है।

जीव तत्व है वह चैतन्य है वह अपने आप अतिशयकर चमत्कार रुप प्रकाशमान है। अनादि है किसी समयमे नया नही उत्पन्न हुआ। अनंत है जिसका किसी कालमे विनाश नही है। अचल है, चैतन्यपनेसे अन्यरुप (चलाचल) कभी नही होता। स्वस वेद्य है आप ही कर जाना जाता है और प्रगट है छिपा हुआ नही है।

अनादिकालका बडा अविवेकका नृत्य है उसमे वर्णादिमान पुद्गलही (जीवद्रव्य) नृत्य करता है अन्य कोई नही है। अभेदज्ञानमे (नश्चयनयमे) पुद्गलही (जीवद्रव्यही) अनेक प्रकार दिखता है। जीवतत्व तो अनेक प्रकार नही है। यह जीवतत्व रागादिक जो कि पुद्गलसे हुए विकार (जीवद्रव्यका विकार है) उनसे विलक्षण शुद्ध चतन्य धातु मय मूर्ति है।

२ अजीवतत्वका स्वरूप

आत्माकी साथमे जो संयोग जनित पुद्गलीक अवस्थाये हैं उसीका नाम अजीवतत्व है। छह पर्याप्ति पुद्गलीक अजीवतत्व है। दशप्राण पुद्गलीक अजीवतत्व है वह जीव तत्व नही है। औदारिक, वैक्रियिक आदि शरीर अजीवतत्व है। समचतुरस आदि संस्थान पुद्गलीक अजीवतत्व है। वज्रर्षभनाराच आदि सहनन

पुद्गलीक अजीवतत्व है। रुप, रस, गन्ध और स्पर्स पुद्गलीक अजीवतत्व है। ज्ञानावरणादि पुद्गलीक द्रव्य कर्म अजीवतत्व है। मन, वचन काय पुद्गलीक अजीवतत्व है, प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्घ आदि पुद्गलीक अजीवतत्व है। पाच इन्द्रिया पुद्गलीक अजीवतत्व है। स्वाच्छोस्वास आदि पुद्गलीक अजीवतत्व है। यह अजीवतत्वको जीवादितत्व माननां मिथ्यात्वभाव है।

शंका— अजीवतत्व और अजीवद्रव्यमें क्या भेद है?

समाधान— जीवकी साथमें संयोग सम्बन्धसे रहेल पुद्गलीक रचना उसीका नाम तो अजीवतत्त्व है। और जिसकी साथ जीवका संयोग सम्बन्ध नही है, अैसे पुद्गलादिक पदार्थों अजीवद्रव्य है। क्योंकि अजीवतत्व भी जीव द्रव्यकी एक पर्याय ही है।

अनादि कालसे यह अजीवतत्वको जीव, जीवतत्व मानकर दुखी हो रहा है यही मिथ्यात्वभाव है। आत्मा अरुपी पदार्थ है वह चक्षुइन्द्रियसे देखा नही जाता। और शरीर अजीवतत्व देखनेमें आता है। इसी कारण जीव इसमेही अपनी अस्तित्व मानता है। इसकी ही खुशामदमें सारा ही दिन निकलते है। शरीर दुबला हो जावे तो मानता है कि, मै दुबला हो गया। जिससे दुःखी हो जाता है। शरीर मोटा होनेसे मानता है कि, मै मोटा हू. जिसमे आनंद मानता है। शरीरका रंग गोरा

होनेसे अपनेको सून्दर मानता है. शरीरका रंग काला होनेसे अपनेको काला मानता है। शरीरका चमडा लाल रंगका हो और थोडासा चमडा सूफेद हो जावे तो कहता है कि, मुजको कोढ निकला है। यद्यपि कोढमे कुच्छ दर्द नही होता है तो भी मात्र अपनी बनी बनाई कल्पनासे मानलेता है कि मै अच्छा नही लगता हूं। अैसी अैसी जुठी मान्यतासे जीव महादुखी हो रहा है। यही जुठी मान्यता संसारकी और दुख। जननी है। मै शाबुनसे स्नान करु तो शरीर सून्दर रहे. परन्तु जरा भी विचार करता नही है कि, सप्तमलीन धातुसे भरा हुआ यह शरीर सून्दर कैसे होगा? स्नान करके उठनेसे ही भीतरसे पसीना आता है, शरीर सून्दर कंहा हुआ? परंतु विचार करे कब? संसारके सुखसे मुख मोडे तब तो विचार करे? क्योंकि, संसारका और मोक्षका मार्ग दोनो विपरित है। **शरीरकी चोवीस घंटा खुशामद करते संते शरीर अपनी एक भी बात मानता नही है, तो भी जीव विचारता नही है।** जैसे काल पाकर आपसे आप बाल कालामेसे शुफेद हो जाता है। काल पाकर दांत आपसे आप त्रुट जाता है, गीर जाता है। काल पाकर शरीरका चमडा सिथिल होकर कड्डचलीया पड जाती है। यह सभी अवस्था आत्मा चाहता नही है और हो जाती है, तो भी विचार करता नही है कि शरीरकी शुंदरतामे मेरी शुदरता नही है, परंतु आत्मिक गुणोकी सुंदरतासे मेरी शुंदरता

एवं शान्ति है। यह विचार न होनेका भूल कारण मिथ्यात्व भाव अर्थात जीव तत्वको भूलकर अजीव तत्वको अपना अर्थात अजीव तत्वमें अपनी अस्तित्वता मानना यही संसारकी जननी है। इसलिये संसारसे मुक्ति चाहनार जीवोको अजीवतत्वका ज्ञान करना मोक्ष मार्गमे प्रथमोप्रथम जरूरी है। अजीव तत्वका ज्ञान नही होनेसे अजीव तत्वकी सब क्रियाको अपनी क्रिया मानता है। मै बोलता हूं, मै चलता हूं, मै खाता हूं, इत्यादी जीव और पुद्गलकी मिलि हुई क्रियाको अपनी क्रिया मानता है। आत्माकी क्रिया आत्म प्रदेशोका हलन चलन होना वही मात्र आत्माकी क्रिया है, जिस क्रियामे शरीर निमित मात्र है। और शरीरकी हलन चलन क्रिया पुद्गलकी क्रिया है, वह आत्माकी क्रिया नही है, परन्तु ते क्रियामे जीव मात्र निमित है। निमित्त नैमितिक **अवस्थाका ज्ञान न होनेके कारण जीवकी क्रियाको तो जानता ही नही है, और पुद्गलके शरीरको क्रियाको अपनी क्रिया मानकर दुःखी हो रहा है।** शरीरमेसे समय समयमे अनंत पुद्गल परमाणु निकलते है और अनंत आता है यह सब क्रियाओ आत्माकी इच्छासे नही होती है सहज हो रही है तो भी मिथ्यात्वके कारण जीव मानता है कि मैं शरीरको चलाता हूं, मैरा विना शरीर चल न शके? यह तो मात्र मिथ्या कल्पना है। जब शरीरमे लकवा लगता है तब जीव भीतरमे है तो भी शरीरको कयो नही चलाता है? विचार तो

कर अब शरीर क्यों नही चलाता है? शरीरको चलाना जीवका कर्तव्य नही है। **संसार अवस्थामे समवाय सम्बन्धसे देखा जावे तो जीव उपयोग और योग ये दोही कार्य कर शकता है।** उपयोगका अर्थ पुण्य भाव–पाप भाव, और वीतराग भाव ओर योगका अर्थ आत्माका प्रदेशोका हलन चलन करना यह दो कार्य छोडकर आत्मा तीसरा कभी भी कार्य-कर शकता नही है। यही दोनो आत्माकी अवस्था है उसकी अपनी अवस्था मानना सम्यक ज्ञान है। और शरीरकी अवस्थाको अपनी माननी मिथ्या ज्ञान है।

आश्रव तत्व

आश्रव दो प्रकारका होता है? १ चेतन आश्रव २ जड आश्रव जिसको शास्त्रीय भाषामे भावाश्रम, और द्रव्याश्रव कहते हैं। **चेतनाश्रव**–जिस प्रकार आम्रमे रस, रुप, गन्ध स्पर्शादि गुणो है इसी प्रकार आत्मामे ज्ञान, दर्शन, चारित्र, शुख, विर्य, श्रद्धा, अवगाहना, अव्याबाध, शूक्ष्मत्व, अगुरुलघुत्व, निष्क्रियत्व, और योगादि अनेक गुणो है। जैसे आम्रमे रस रुप, गन्ध, स्पर्शादि, स्वतंत्र परिणमन करते है, ऐसे ही आत्मामे सब गुणो स्वतंत्र परिणमन करता हैं। कोई गुण कोई गुणके आधीन नही है। जैसे स्पर्सगुणकी शीत, उष्ण, अवस्था बदलती हैं, ऐसे ही आत्माके गुणोकी अवस्था बदलती है। जब तक आत्माके गुणो पुद्गलोंक कर्मोके आधीन होकर अवस्था धारण करता है उसी

अवस्थाका नाम आत्माकी वैभाविक अवस्था है। और जब आत्माका गुणों आत्म द्रव्यके ही आधीन होकर अवस्था धारण करता है उसी अवस्थाका नाम स्वभाविक अवस्था हे। आत्मामे योग नामका गुणकी भी दो अवस्था होती है। जब तक योग नामका गुण पौद्गलीक मन, वचन, और कामके आधीन अवस्था धारण करता है तबतक वह गुणकी कंम्पन अवस्था रहती है, यही कंम्पन अवस्था का नाम चेतन आश्रव है। और जब वह योग नामका गुण पौद्गलीक मन, वचन, कायका अवलम्बन छोडकर आत्म द्रव्य के आधीन होकर अवस्था धारण करता हे, उसी समय वह योग नामका गुणकी अकम्प अवस्था रहती हे। उसी अकंम्प रुप अवस्थाका नाम आश्रवरहित आत्माकी शुद्ध अवस्था हे। योग नामका गुणकी वैभाविक कंम्पन रुप अवस्था १३ तेरवागुणस्थानका अंततक रहती है अर्थात आश्रव तेरवा गुण स्थान तक रहता है अर्थात तहांतक, योग नामका गुणकी कंम्पन रुप अवस्था रहती हे। और चौदवा गुणस्थानका पहेले समयमे वह योग नामका गुणकी अकंम्प अवस्था हो जाती है। अर्थात वहा उसकी शुद्ध अवस्था होती है।

आगममे आश्रवके सतावन भेद दिखाया हैं वे शव निमित कि अपेक्षासे है। चेतन आश्रवमे जो कारण पडता हैं उसीको निमित कहते हे। जैसे रोटी नियमसे आटेकेही बनेगी, परन्तु रोटी बनानेमे शिगडी, कोयला, अग्नि, वेलण, चकला, पानी,

आदि सामग्रीकी आवश्यक्ता पडती है, इन सबको निमित कहते है। निमितका कोई भी अंग रोटीमें नही जाता, रोटी तो नियमसे आटेकी बनेगी। ऐसे ही आत्माके आश्रव होनेमे पौद्गलीक मन, वचन, कायादि कारण पडते है, लेकिन इन सबको कारणमे कार्यका उपचार करके निमितकी अपेक्षासे आश्रव कहा जाता है। निमितको आश्रव कहना केवल शाब्दीक व्यवहार है। जैसे व्यवहारमें बालक लकडीको घोडा कहता है परन्तु यथार्थमें लकडी घोडा नही हैं। ऐसा व्यवहारमें बोला जाता है तो भी ज्ञान यथार्थ ही होता है, इसी तरह धर्ममार्गमें उपचारसे कहनेका व्यवहार है कि, आश्रव बहुत प्रकारका होता है, परन्तु श्रद्धान इतना ही करना कि, आश्रव बहुत प्रकारका होता नही है मात्र एक ही होता हैं, जो कि योग गुणका कंम्पन अवस्था है वही आश्रव है।

जडाश्रव— लोकमें पुद्गल वर्गणा अनेक प्रकारकी होती है उसमें एक वर्गणा ऐसी है जिसको कार्मण वर्गणा कहते है। उस वर्गणाका आत्मा प्रदेशोके समीप आना उसका नाम जड आश्रव है।

पुण्यतत्व

पुण्यतत्व दो प्रकारका है। १ चेतन पुण्य २ जड पुण्य। जिसको शास्त्रीय भाषामे भाव पुण्य और द्रव्य पुण्य कहते है।
चेतन पुण्य—पुण्य पाप का भेद अघातिया कर्मोमे ही पडते है,

घातिकर्मो सबी पाप रुप ही है, कयेोकि आत्माका अपना ज्ञायक स्वभावमेंसे निकलना यही आत्माका घात हैं। आत्मा अरहन्त भक्तिके विकल्पसे अथवा पांच इन्द्रियका विपय भोगनेका विकल्पसे अपना ज्ञायक स्वभाव अर्थात वीतराग भावमेंसे वहार निकलनां वही आत्माका घात है, इसीकारण घातिकर्मो शव पाप रुप ही है।. **जिस ममयमे अघातियां कर्मोमे पूण्यका वन्ध पडता है उसी समयमे घातिया कर्मोमे पाप का ही वन्ध पडता है, उसीपर अनादिकालसे जीवका लक्ष जाता ही नही है, और पुण्य भावमे आनंद मानता है, पुण्य भावसे मोक्ष मानना है यही मिथ्यात्व भाव है।.** जितनां अंशमें पाप भायसे आत्मा बच गया यह खुशालीं न मानकर पुण्य बन्ध हुआ इसीमे खुशाली मानना यही मिथ्यात्व है।.

आत्मामे मन्द कपायरुप भाव होता है, उसी भावका नाम पुण्य तत्व है।. **पुण्य तत्व रुप भाव, कर्मचेतना है, उसमे आत्मा वन्धनमे पडता है।.**

पुण्य भावमे अनेक प्रकारका भेद है तो भी तीन प्रकारमे उसी सव भावोका सामावेश हो जाता है। १ प्रसस्तराग २ अनुकम्पा ३ चित प्रसन्नता।.

प्रसस्त राग—अरहन्त, सिद्ध, और मुनि महाराजोके गुणोंमें अनुरागका भाव वह प्रसस्त राग है।

शंका—कर्मोका कार्य तो चोरासी लाख योनी रुप जन्म,

जरा, और मरण से युक्त संसार है। अघातिया कर्मो रहने पर भी अरहन्त परमेष्टीके नही पाया जाता है। तथा अघाति कर्म आत्माके अनुजीवी गुणोके घात करनेमे समर्थ नही है. इसलिये अरहंत और सिद्ध परमेष्टीमे गुण कृत भेद किस प्रकार माना जायगा?

समाधान—ऐसा नही हे, क्योंकि, जीवके उर्द्धगमन स्वभावका प्रतिबन्धक आयु कर्मका उदय और शुखगुणका प्रतिबन्धक वेदनीय कर्मका उदय अरहंतोके पाया जाता है इसलिये अरहन्त और सिद्धोमें गुणकृत भेद माननाही चाहिये?

शंका—उर्द्धगमन आत्माका गुण नही हे, क्योंकि उसे आत्माका गुण मान लेने पर उसके अभावमें आत्माका भी अभाव मानना पडेगा। इसी प्रकार सुख भी आत्माका गुण नही है। **दुसरे वेदनीय कर्मका उदय केवलीमे दुःखको भी उत्पन्न नही करता है, अन्यथा अर्थात वेदनीय कर्मको दुःखोत्पादक मानलेनेपर केवली भगवान के केवली पना अर्थात अनंत सुख भी नही बन शकता है**

समाधान—यदि ऐसा हे तो रहो. अर्थात अरहंत और सिद्धोमे गुणकृत भेद सिद्ध नही होता हैं तो मत होओ, क्योंकि वह न्याय संगत है। फिर भी सलेपत्व और निर्लेपत्वकी अपेक्षा और देश भेदकी अपेक्षा उन दोनो परमेष्टीयोमे भेद सिद्ध हैं। (धवल, १—४७)

निग्रन्थ गुरुओकी वैयावृत करनां एवं गुरुओकी आज्ञा का पालन करनेका भाव प्रसस्त राग है। उपवासादि छोह प्रकारका वाह्य तप करनेका भाव पुण्य भाव है। स्वाध्याय आदि छोह प्रकारका अभ्यंतर तप करनेका भाव है वह पुण्य भाव है। ब्रह्मचर्य पालन करनेका भाव पुण्य भाव है। अणुव्रत अर्थात प्रतिमादी ग्रहण करनेका भाव पुण्य भाव है। पंच महाव्रत ग्रहण करनेका भाव पुण्य भाव है। ईर्या समितिका भाव अर्थात मैर द्वारे जीवो की घात न होजावे असा उपयोग सहित चार हाथ भूमि सोधकर चलनेका भाव पुण्य भाव है। पात्र जीवो को चार प्रकारका दान देनेका भाव है वह पुण्य भाव है।

शका—पात्र जीवो किसको कहनां चाहिये ?

समाधान—जीस जीवो को देव गुरु और धर्मकी श्रद्धा है वह सभी जीवो पात्र जीव है। पात्र जीवोमे तीन भेद है। उत्तम पात्र नग्नदिगम्बर अठाइस मूलगुणोको पालन करनेवाला मुनि महाराजो। मध्यम पात्र—एलक—क्षुलक—अर्जिका—क्षुलकाणी—ब्रह्मचारी आदि पंचम गुणस्थान वर्ती जीवो। जघन्य पात्र अव्रति पाक्षीक श्रावक है।

देव गुरु शास्त्र के लक्षसे जो मन्द कषाय रुप भाव होता है वे सभी पुण्य भाव है। सास्त्रो धर्मनुरागसे लखना अगर लिखवाना वही पुण्य भाव है। धर्मोपदेश देनेका भाव पुण्य भाव है। पाठशालाओ खोलवाना और बच्चाओमे धर्म में अनु जन्म.

करपाना पुण्य भाव है। जैन अजैनोमें सास्त्र, 'विना मुल्यसे वितरण करनां यह पुण्य का भाव हैं। जितनां २ जीनवाणी का प्रचार होगा इतना २ जीवोमे धर्म की रुचि विशेष रुप मे जाग्रत होगी। जीनवाणी की प्रभावना करना उतम प्रभावना है।

अनुकंम्पा

प्रश्न—अनुकंम्पा किसको कहते है ?

उत्तर—प्राणी मात्र को दुखी देखकर उसको दुःखमेसे मुक्त करानेका भाव अनुकंम्पा है. यह पुण्य भाव है। कोई भी जीव को क्षुधावान देखकर उसीको क्षुधासे मुक्त करनेका भाव पुण्य भाव है। कोई भी पिपासु जीवो के लिये जलका पीलानेका भाव पुण्य भाव हैं। कोई भी जीवो को रोगी देखकर उसीको रोगसे मुक्त करानेके लिये औषधि देना एवं औषधालय खोलवाने का भाव है वही सभी पुण्य भाव है, जिसको अनुकंम्पा कहते है।

शंका—एक क्षुधावान जीवको दुखी देखकर खानेके लिये रोटी दे दीया। उसने वह रोटी न खाकर उस रोटीसे मच्छलिया मारनेका कार्य किया, तो वह पाप किसको लगेगा ?

समाधान—अपना अभिप्रायतों उसकी क्षुधा मिटानेका है। अपना अभिप्राय अनुकूल पुण्य और पापका बन्ध पडता है। वही जीव उस रोटी खाले, या उस रोटीसे मच्छलीयां मारे. या उस रोटी और कोई इससे विशेष क्षुधावानको दान देवे, उसीका

भागीदार हम लोग नही है। उसीका भावके अनुकूल उसी जीवको पुण्य या पापका वन्ध पडेगा।

शंका— एक कसाय रोगी हैं। जबतक यह रोगी है तब तक हिंसा नही करेगा। तव वह कसायको औषधि देना चाहिये या नही? क्योंकि, औषधि देनेसे वह रोगसे मुक्त होनेसे पीछें तुरन्त वही हिंसाका कार्य करेगा?

समाधान—अपना अभिप्राय कसायको रोगसे मुक्त करनेका है। रोगसे मुक्त हुआ वाद वह जो चाहे सो कार्य करे उस कार्यका आप भागीदार नही है। **एवं हिंसा मात्र कायसे नही होती। हिंसा तो मन, वचन, और कायसे, कृत, कारित, और अनुमोदना, द्वारा होती है।** रोगकी अवस्थामेंभी मन द्वारा यह जीव हिंसा करता ही हैं उसीका परिणामोका वही करता है, आप उसके परिणामोके मालिक नही है। जैसे तंदुल मच्छ? काय द्वारा हिंसा जितनी होती है, इससे विशेष मनके द्वारा अनत पापको बाधकर जीव नरक निगोदका पात्र बनजाता है। इससे सिद्ध हुआ कि सब जीवो अपना अपना परिणामोसे बन्ध और मुक्तिको प्राप्त करता है।

३ चित प्रसन्नता—

चितमे जो कालुषताका भाव है उसीसे विपरित भावो होना उसीका नाम चितप्रसन्नता है। जैसे मंदिर बनवाना, धर्मशालाओ बनवानी औषधालयो खोल्वानी, स्कुलो खोल्वानी, आदि जो जो

भावो होता है वह सभी भावो चित प्रसन्नताका कारणो है। कसायखानामेसे जानवरोको छोडवाना, मच्छलिया मारनेवालेकी पाससे मच्छलिया छोडवाना यह सब चित प्रसन्नताका भाव है।

शंका— चिडिया पकडनेवालाकी पाससे चिडिया छोडाने से और वह विशेष चिडिया पकडेगा? वह तो पाप काममे मदद करनी हुई वह चित प्रशन्नता कैसे होती है?

समाधान— अपना अभिप्राय चिडियाकी रक्षा करनेकी है, उसको बन्धनमेसे छोडानेकी है, वही अपनी चित प्रशन्नता है। वही भाव पुण्यका भाव है। चिडिया वेचनेवाला वही रुपीयासे चिडिया मोले और विशेष पकडे वह तो उसीका पापका भाव है, उसीका भावके अनुकुल उसीको बन्ध पडेगा। उसीका भावकी साथमे हमारा कोई सम्बन्ध नही है। यदि वही चिडिया बेचनेवाले चिडिया बेचकर उस पैसा दानमे लगादे तो उसीको पुण्य बन्ध होगा। वही पुण्यबन्धमें हमारा कोई तालुक अर्थात लेनदेन नही है। सब जीवो अपने अपने परिणामोका भोगनार है, और उस परिणामोके अनुकुल उसीको बन्ध पडेगा। इसका नाम भावपुण्य है अर्थात चेतनपुण्य है।

जडपुण्य—

आश्रवमें जो कार्माण वर्गणा आत्म प्रदेशोके नजदीक **आयी** थी उसी वर्गणाका कालकी मर्यादा लेकर आत्माप्रदेशोकी साथ एक क्षेत्रमें चपकजाना उसीका नाम जडपुण्य है जिसको द्रव्यपुण्य कहते

है। आत्मा पौद्‌गलीक द्रव्य कर्मोका बांधता नही है परन्तु जब आत्मा भाव करता है उसी समयमें पुद्‌गलीक द्रव्यकर्मो आपसे आप कर्म रूप अवस्था धारणा करता है।

८ पापतत्व—

पापतत्व दो प्रकारका है। १ चेतनपाव २ जडपाप।

चेतनपाप – पाप बन्धका कारण निम्न प्रकार हैं।
१ चार संज्ञा २ तीन अशुभलेश्या ३ पाच इन्द्रियोका विषय एकठ्ठा करनेका और भोगनेका भाव। ४ आर्तध्यान, रौद्रध्यान ५ हिसाका उपकरणो बनानेका भाव ६ मिथ्यात्वका भाव ७ कषाय भाव। यह सबी भावो **पापतत्व** है।

१ चार सज्ञा—

१ आहार संज्ञा २ भयसंज्ञा ३ मैथुनसंज्ञा ४ परिग्रहसंज्ञा

(१) शुद्ध और अशुद्ध आहार लेनेका भाव है वह सभी पाप भाव है। अशुद्ध आहार खानेका भाव मिट गया वह तो पुण्य भाव है, परन्तु शुद्ध आहार लेनेका भाव है वह पाप भाव है। शुद्ध आहार खानेका भावमें कमती स्थिति और कमती अनु-भागका वन्ध पाप प्रकृतियोंमें पडता है, अशुद्ध आहार लेनेके भावमें विशेष स्थिति और अनुभागका बन्ध पाप प्रकृतियोंमें पडता है।

२ भया संज्ञामे—भय प्रधानपने सात प्रकारका है।
१ इस लोक भय २ पर लोक भय ३ वेदना भय ४ अरक्षा

भय ५ अगुप्ति भय ६ मरण भय ७ आकस्मिक भय। इस भवमे लोकका भय रहता है कि ये लोग न मालुम मैरा क्या बिगाड करेगा, अैसा भयका नाम इस लोक का भय है। पर भवमे न मालुम क्या होगा, अेसा भय रहना परभव भय हैं। मैरे शरीर में एवं मैरे निकटके सम्बन्धीमें वेदना अर्थात रोगोकी उत्पति न हो उसी प्रकार आत्म में भय रुप भाव होता है, वह वेदना भय है। अरक्षाके भयमे मेरी कोई रक्षा करनेवाला नही है। इसलिये बडे लोगोकी खुशामद करनेका भाव वह अरक्षा भय हैं। अगुप्ति भयमे मै गढ बनालुतो मेरी रक्षा होगी। बोम्बका भयसे तलघर बनवाना चोरोके बयसे गुप्त स्ट्रोंग रुम एवं भोंयरा बनवानेका भाव है सो अगुप्ति भाव हे। मरणभय इन्द्रियादि प्राणोका विनाशका नाम मरण है, उसकी रक्षा करनेका जो जो भाव होता है वही सभी मरण भय कहा जाता हैं। आकस्मिक भय न मालुम कब मरण हो जावेगा इसके भयसे जिंदगीका विमा आदि उतरा लेनेका भाव है वह सभी भावो आकस्मिक भयका भाव है। यही सभी पापका भाव है।

३ मैथुनसंज्ञा—स्रीका रुप देखकर स्रीकी साथ रमनेका भाव, पुरुषका रुप देखकर पुरुषकी साथ रमनेका भाव, एवं स्त्री तथा पुरुषकी साथ रमनेका भाव यह सभी भावो पापका भाव है। तीव्र पापमे परदारा और वैस्याकी संग रमनेका भाव होता है। और तीव्रतर पापमे मनुष्यो पशुआदि तिर्यंचकी साथ भोगकरनेका

भाव करता है यह भाव नरक नीगोदका कारण हैं।

४ परिग्रहसंज्ञामे—दशप्रकारके परिग्रह एकट्ठा करनेका भाव है वह सभी पापका ही भाव हैं। लाखो रूपीआ होते सते सतोष न कर करोडोकी चाह करना सभी पापका ही भाव है।

२ अशुभलेश्या –

कृष्ण लेश्या रूप भाव, निल लेश्या रूप परिणामो, और कापोत लेश्या रूप भावो यह सभी पापका ही भाव हैं। **हिंसामे प्रमाद प्रधान है, कषायमे (उदयरुप) अभिलाषा रुप शक्ति प्रधान है। कषायगर्भित योगोकी प्रवृतिका नाम लेश्या हैं।**

५ इन्द्रियोके आधीन— पाच इन्द्रियोके विषयो एकट्ठे करनेका भाव एवं भोगनेका सबी भावो पाप भाव है। रेडियो शुननेका भाव, सिनेमा देखनेका भाव, सुगन्धी पदार्थो तेल शेन्ट लोशनादिका उपभोग करनेका भाव, मिष्ट भोजनादि खानेका सबी भावो एवं सुन्दर मलमल, मखमख, बनारसी शैला, आदि स्पर्शइन्द्रियोका विषयो भोगनेका भाव सभी पाप भावो है।

४ आर्तध्यान रौद्रध्यान— इष्ट संयोगका भाव अनिष्ट पदार्थो कब हट जावे वह भाव, पिडा चितन और निदान का भाव यह सबी भावो पापकाही भाव है। यह भावका नाम आर्तध्यान है। हिसा करनेका भाव, चोरी करनेका भाव, जुठ बोलनेका भाव, और परिग्रह खुब संचय करनेका भाव, यह सबी

भावो रौद्रध्यानका भाव हैं। यही सभी भावो पापका ही भावो है।

५ **हिंसाका उपकरणो बनानेंका भाव**— मै अैसा बोम्ब वनावु कि जिससे ए ो साथमें हजारो जीवो मर जावे, यह भाव पापका भाव है। मै अैसा मशीन बनाउ कि जिसमे थोडा समयमे हजारो मछलियाँ पकडी जावे, और मरण को प्राप्त हो जावे। मशीनगन, बोम्ब, रिवोल्वर आदि हथीयार वनानेका भाव हैं सभी भाव हिसा बढानेका उपकरण हैं अैसा भावो पापकाही भाव है।

६ **मिथ्यात्व**—यह भाव सर्वसे वडा पापका भाव है **मिथ्यात्व जसा कोई पाप नही है, और सम्यगदर्शन जैसा कोई धर्म नही है। परवस्तुको अपनी वस्तु माननां यहि मिथ्यात्व भाव है।**

७ **कषाय भाव**— क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगासा, स्त्री वेद, पुरुप वेद, और नपुंशक वेद रुप जितना भाव होता है वह सभी पाप भाव है।

यह सभी भावोका नाम चेतन पाप हैं, अर्थात भाव पाप हैं।

जडपाप—

आश्रवमे जों कार्माण वर्गणा आत्माके प्रदेशोके नजदीक आयीथी वही वर्गणाका आत्माके प्रदेसोमे कालकी मर्यादा लेकर एक क्षेत्रमे चपकजाना अर्थात रहजाना उसीला नाम जडपाप है अर्थात द्रव्य पाप है। अत्मा पुद्गलीक द्रव्य कर्मो ... [illegible]

नही है परन्तु जीस समयमें आत्मा भाव करता है उसी समयमें कार्माण वर्गणा आपसे आप कर्मरूप अवस्था धारण कर जाती है। जैसे मनुष्य धुपमें खडा रहनेसे आपसे आप इसकी छाया बन जाती है। **तो भी निमितकी प्रधानतासे आत्मा द्रव्य कर्मोको बांधता है या कर्ता है यही कहना स्याद्वाद है।**

बन्धतत्व—

बन्धतत्व दो प्रकारका हैं। १ चेतनबन्ध २ जडबन्ध। चेतनबन्ध— आत्मामे अनेक गुणो है। **इसीमे से श्रद्धागुण, चारित्रगुण तथा योग नामका गुणका विकारी परिणमनका नाम बन्धतत्व है। यही संसारकी** जननी है।

श्रद्धागुणका विकारी परिणमनका नाम मिथ्यादर्शन है। और श्रद्धागुणका शुद्ध परिणमनका नाम सम्यगदर्शन है। जबतक श्रद्धा-गुण मिथ्यात्वरुप अवस्था धारण करता हैं उसी अवस्थाका नाम बन्ध तत्व है। मिथ्यात्व अवस्थामे आत्मा पूण्य भावमे धर्म बुद्धि कहता है। मिथ्यात्व भावमे आत्मा पदार्थोको अपना मानता हैं। अर्थात्त यह शरीर मै हूं, पुत्र मैरा हैं, पत्नि मैरी हे, पिता मैरा है, माता मैरी हे, यह मैरा है, यह मैरी लक्ष्मी है, इत्यादि मानना मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व अवस्थामें आत्मा मानता है कि, मै पर जीवोकु मार शकता हूं। मै पर जीवोकु बचा शकता हूं।

मैं पर जीवोंकु सुख दुःख दे शकता हूं। परजीव मुजको मार शकता है। परजीव मुजको बचा शकता हे। परजीव मुजको सुख दुःख दे शकता है। मिथ्यात्व अवस्थामे कर्म जनित जे पुद्गलिक ढाचा रुपी शरीर मिल्या है इसमें कल्पना करता है कि मैं स्त्री हू। मै बालक हूं, मै जुवान हू, मै बूढा हूं, मै देव हूं, मै बेल हू, मैं हाथी हूं, मै तोतो हूं, मै मगरमच्छ हू मै नारकी हू, इत्यादि जो जो शरीरकी अवस्था है उसको अपनी मानता है। मिथ्यात्व अवस्थामे आत्मा पर पदार्थोंमें इष्ट अनिष्टकी कल्पना करता है। हाफुस आम्ब अच्छि हैं, गुलाबजाब अच्छा है, शेन्ट ल्वन्डर अच्छा है, मलमलके कपडे; मखमलके कपडे, बनारसी साडीया आदि अच्छे हे। विष्टा खराब है, शुकी रोटी खराव है, दुर्गन्धादी पदार्थों खराब है, इत्यादि इष्टानिष्टकी कल्पना करता है। मिथ्यात्व अवस्थामे आत्मा मानता है कि, देव मैरा कल्याण करदेगा। गुरु मैरा कल्याण करदेगा।। सास्त्र मैरा कल्याण करेगा। जिनवाणी माताकी भक्ति मैरा कल्याण करेगी। इत्यादि मान्यतामें मिथ्यात्व का बन्ध पडता है।

चारित्रगुणका विकारी परिणमनमे आत्मा मानता है कि क्रोध किया विना चले नही। क्रोध करनेसे पुत्र, मुनिम, नोकर आदि सिद्धा चलता है। मान विना जीवन किस कामका असा सोच-कर अभिमान मै शुखकी कल्पना करता है। मानाकर लाखों रुपीआ धन कमानेकी चेष्टा करता है। जुठ बोल्या विना [illegible]

होता ही नही है। धन तो मायाचारीसे ही कमाया जाता हैं । पोलिटिकल बननेमें शोभा है इज्जत है । पोलिटिकल मनुष्यको सरकार भी चाहता है।

प्रश्न—पोलीटीकल किसको कहते हैं ?

उत्तर—करना कुच्छ और कहना कुन्छ उसीका नाम पोलिटीकल है।

कहा भी है कि

मुखमे राम बगलमे छुरी भगत भया पन दानत बुरी। इसीका नाम पोलिटीकल है।

जितना जितना धन बढता इतनी २ तृष्णा बढाते जाना। जहा लोमका थोभ नही है।' इत्यादि सब चारित्र गुणका विकारी परिणमन है। जिसका नाम बन्ध तत्व है। योग नामका गुणका विकारी परिणमनमें योग गुण कंम्पन करता है। इस कंम्पनका नाम भी बन्ध तत्व हैं।

यथार्थ मे विचार किया जावे ते। आत्माके अनन्त गुणो है। अनन्त गुणोमेसे मात्र दो ही गुणोके लिये पुरुषार्थ किया जाता है। और गुणोके लिये पुरुषार्थ होता ही नही। श्रद्धागुण और चारित्र गुणका विकारी परिणमन मिटानेके लियेही पुरुपार्थ होता है और गुणोके लिये आत्मा पुरुषार्थ कर ही नही शकता है। श्रद्धा गुण और चारित्रगुणो पुरुपाथ द्वारा शुद्ध करनेसे और गुणो आपसे आप विना

पुरुषार्थसे काल पाकर शुद्ध सहजही होजाता है।

शंका—ज्ञान गुण बढानेके लिये पुरुषार्थ तो किया जाता है और वह पुरुषार्थ से ज्ञान बढता है वह भी देखनेमे आता है। आप कैसे कहते हो कि और गुणोमें पुरुषार्थ नही होता है ?

समाधान— पुरुषार्थसे ज्ञान नही बढता है। जैसा जैसा ज्ञानावरण कर्मका क्षमोपशम होगा असाही ज्ञान बढेगा। जैसे एक मनुष्य एकही दफे पढता है और पाठ कंठस्थ हो जाता है, और एक मनुष्य दिन रात पढता है तो भी पाठ कंठस्थ नही होता है। सोचीये दोनोमे विशेप पुरुषार्थ किसने किया ? एक को मालुमी पुरुषार्थमे ज्ञान बढ गया और एकने बहोत पुरुपार्थ किया और ज्ञान बढा नही इससे सिद्ध होता है कि ज्ञानका बढना पुरुषार्थ के आधीन नही है, परन्तु कर्मके आधीन है।

जो रागद्वेष और मोहसे छुटने चाहता है उसीको यथार्थ श्रद्धा करके रागद्वेष छोडना यही बन्धनसे मुक्त होने का मात्र एक ही कारण है।

प्रश्न— बंधके कारण कौन है ?

उत्तर— स्वभावसे ही कर्मयोग्य पुद्‌गलो कर बहुत भरा हुआ लोक बंधका कारण नही है, यदि उनसे बंध हो तो लोकमें सिद्ध भी मौजुद है उनके भी बंधका प्रसंग आवेगा। काय, मन, वचनकी कीया स्वरूप योग भी बंधके कारण नही है,

यदि उनसे बंध हो तो मन, वचन, कायकी क्रियावाले यथाख्यात संयमीयोके भी बंधका प्रसंग प्राप्त होता हैं। अनेक प्रकारके इन्द्रियो भी बधके कारण नही है, यदि उनसे बध हो तो केवल ज्ञानीयोके भी उन इन्द्रियोकर बधका प्रसंग आवेगा। तथा सचित अचित वस्तुओका उपघात भी बंधका कारण नही है, यदि उनसे बध हो तो जो साधु समितिमे तत्पर है यत्नरूप प्रवृति करते है उनके भी सचित अचितके घातसे बंधका प्रसंग आवेगा। **न्यायके बलकर यह सिद्ध हुआ कि जो उपयोगमे रागादिक का करना है वही बधका कारण है।**

लोक आदि कारणोसे बंध नही कहा और मात्र रागादिकसे बंध कहा तो भी **ज्ञानीयोको मर्यादा रहित स्वच्छंद प्रर्वतना योग्य नही कहा है, क्योंकि निर्गल (स्वच्छद) प्रर्वतना ही बंधका कारण है।**

प्रश्न— क्या परवस्तु बध का कारण नही है?

उत्तर— रागादिक परिणाम ही बंधका कारण है बाह्य वस्तु बंधका कारण नही है। कयोकि बंधका कारण जो रागादिक उसके कारण पनेकर ही बाह्य वस्तुको चरिताथ पना है। बाह्य वस्तु तो रागादिकका ही कारण है बधका कारण नही है। **बाह्य वस्तु के विना निराश्रय रागादिक उत्पन्न नही होता है इसी कारण रागादिकका आश्रयभूत जो बाह्य**

इस तरह की ज्ञानी सकल कर्मोके फलके शंन्यासकी भावना करे। यहां भावना नाम बार बार चिंतवनकर उपयोग के अभ्यास करनेका है। जब सम्यगद्रष्टि हो ज्ञानी होता है तब ज्ञान श्रद्धान तो होही गया है, कि, मैं शुद्ध नय कर समस्त कर्मोसे और कर्मोके फल से रहित हूं। परतु पूर्व बाधे हुए कर्म उदय आवे उनमे उन भावोका कर्ता पना छोड तथा पूर्व तीन काल संबंधी उनचास भंगोकर कर्म चेतनाके त्यागकी भावना कर और इन सब कर्मोके फल भोगनेके त्यागकी भावना कर एक चैतन्य स्वरुप आत्माको ही अनुभव करे वही भोगना बाकी रहा है सो अविरत, देशविरत, प्रमत्त संयत्त अवस्थामे तो ज्ञान श्रद्धानमे निरंतर भावना है ही, परन्तु जब अप्रमत्त दशा हो एकाग्र चितकर ध्यान करे तब केवल चैतन्य मात्र आत्मामे उपयोग लगाये और शुद्धोपयोग रुप होय तब निश्चय चारित्र रुप शुद्धोपयोग रुप भावसे श्रेणी चढ केवल ज्ञान उपजाता है। उस समय इस भावनाका फल कर्म चेतना और कर्म फल चेतनासे रहित साक्षात परमानंदमे मग्न रहता है।

इस "भेदज्ञान" शास्त्रमध्ये प्रतिक्रमणादि अधिकार संपूर्ण हुआ।

मोक्षमार्गकी चूलिका—

आत्माका स्वभाव चेतना है, अर्थात आत्मा ज्ञायक स्वभावी है। परन्तु आनादि कालसे परपदार्थोमे सुखकी कल्पनाकर दुःखी हो रहा हैं। परपदार्थों दुःखका कारण नही है। दुःखका कारण अपनी निजकी बनाई कल्पना है।. आगम द्वारा जब जीव अपना स्वरुपका ज्ञान करता है. तब पर पदार्थोमे जो अनादिकी सुखकी कल्पना करता था वह कल्पना विलय हो जाती है। और निश्चल श्रद्धान हो जाता है कि, **पर पदर्थोमे सुख नही है परन्तु सुख मेरी आत्मामे संपूर्ण भरा हुआ है। और वही सुख अनेक प्रकारकी इच्छाओके कारण छीपा हुवा, ढका हुआ है। ऐसी श्रद्धाका नाम सम्यगदर्शन और ऐसा जाननेका नाम सम्यक ज्ञान कहा जाता हैं।**

ज्ञानका स्वभाव स्थिर रहकर देखना जाननां है. परन्तु अनेक प्रकारकी इच्छाओके कारण ज्ञान स्थिर न रहकर इदर उदर घुमता है. यही ज्ञानका घुमना दुःखकी जड है। **जितनी जितनी इच्छाओका अभाव हो जाता है, इतना इतना ज्ञानका घुमना आपसे आप रुक जाता है इसीका नाम सम्यक चारित्र है।**

चारित्र दो प्रकारका है। १ स्वचारित्र. २ परचारित्र है।

स्वरुपमे रमण करनां अर्थात वीतराग भावका नाम स्वचारित्र है। स्वचारित्र को स्वसमय कहता है। विकारी भावोमे रमण करनां अर्थात पुण्य-पाप भावोमे रमण करनां इसीका नाम परचारित्र है। परचारित्र को परसमय कहा जाता है। स्व समयका नाम ज्ञान चेतना हैं और पर समयका नाम कर्म चेतना तथा कर्म फल चेतना है। जो स्वसमयी हैं सो साक्षात मोक्ष मार्ग है। और जो परसमयी है सो संसार मार्ग हैं।

अनादिसे यह संसारी जीव निश्चयसे ज्ञान स्वभावी ही है, तीन कालमे जड स्वभावी नही होता है परन्तु अनादि मिथ्यात्वका कारणसे अशुद्धपयोगी होकर अनेक प्रकारका परभावको धारण करता है. इस कारण अपने गुणपर्यायमे स्थिर नही रहकर, पर समयरुप प्रर्वतता हैं। इसी कारण उसीको व्यभिचारी अर्थात परमे रमणकरने वाला परसमयी कहा जाता है। जब वही जीव यथार्थ सम्यगदर्शनकी और सम्यगज्ञानकी अपने ही पुरुपार्थ द्वारा प्राप्तिकरता हैं, अर्थात अपने ध्येय को, अपने लक्षबिन्दुको, श्रद्धामे लाता है तब अत्यंत शुद्धपोगी होता. अपने निजगुणपर्यायमे रमण करता है, अर्थात अपने ज्ञानस्वभावमे रमण करता है, अर्थात अपने वीतराग भावमे रमण करता हैं, तबही वही आत्मा स्वसमयी कहा जाता है।

परसमयीका स्वरुप—जो जीव अविद्या पीशाच स्वरुप मिथ्यात्व भावको वशीभूत होकर पांचइन्द्रिय और पांचइन्द्रियके

विषयमे अशुभ भावसे रमण करता है, अेवं व्रतादिभाव, बारह प्रकारके तप रूप भाव, पंचमहाव्रत, पंचसमिति रूप. भाव, एवं अरहंत भक्ति, आदि भावोमे रमणकरने रुप शुभ भावोमे रमण करता है और जो अपने ज्ञायक भावमे रमण नही करता है, अर्थात वीतराग भावमे रमण नही करता है वही आत्मीक शुद्धाचरणसे रहित पर भावोमे रमण करने वाला परसमयी है। क्योकि, अशुभ भावोसे नियमसे पापकाही बन्ध पडता हैं और शुभ भावोसे पुण्णका बन्ध पडता है। इसी प्रकार दोनोही बन्धन भावोमे रमण करने वाला जीव को परसमयी कहा जाता हैं, क्योंकि, वह जीव अपने स्वरुपसे भ्रष्ट हुवा व्यभिचारी भावोमे आनद माननेवाला है अैसा महा पुरुषोने कहा है।

स्वसमयीका स्वरूप— जो सम्यगद्रष्टि आत्मा निश्चयकरके अपने ज्ञायक स्वभावको देखता है, और जानता है, वह जीव अन्तरंग बहिरंग परिग्रहसे रहित होकर एकाग्रहतासे चितके निरोधपुर्वक वीतराग स्वरुपमे लीन होकर प्रवर्तता हैं वही जीव स्वसमयी हैं।

वीतराग सर्वज्ञने निश्चय व्यवहारके भेदोसे मोक्षमार्ग दिखाया हैं। उन दोनोमें निश्चय नयके अवलंबनसे शुद्धगुणगुणी का आश्रय लेकर अभेद भावरुप साध्य साधनकी जो प्रवृति हैं वही निश्चय मोक्ष मार्ग प्ररुपणा कही जाती है। और व्यवहारनय के अवलम्बनसे अशुद्ध गुणगुणीका आश्रय लेकर भेद भावरूप साध्य

साधनकी जो व्रतादि रुप प्रवृति है वही व्यवहार मोक्ष मार्ग प्ररुपणा कही जाती हैं। **निश्चय साध्य है, और व्यवहारका अभाव सो साधन है**। जैसे सोना साध्य है, और जिस पाषाणमेंसे निकलता है वही पाषाणका अभाव सो साधन है।

सम्यग दर्शन, सम्यगज्ञान, और सम्यग चारित्र इनतीनोका एकता सो निश्चय मोक्षमार्ग हैं। षट्द्रव्य, पंचास्तिकाय, सप्ततत्व, नौपदार्थ इनका जो श्रद्धान करनासो सम्यगदर्शन है। द्वादशागके अर्थका जाननासो सम्यगज्ञान है; और पंचमहाव्रत आदि यतिका आचारणसो सम्यक चारित्र है, यह व्यवहार मोक्षमार्ग है। यह व्यवहार मोक्ष मार्ग जींव पुद्गलके सम्बन्धका कारण पाकर जो पर्याय उत्पन्न हुवा हैं उसीके आधीन हैं। **साध्य भिन्न साधन भिन्न** है। साध्य निश्चय मोक्ष मार्ग है. साधन व्यवहार मोक्ष मार्ग है। जो जीव सम्यगदर्शन आदिकसे अंतरंगमे सावधान है उस जीवके सब जगह उपरीके शुद्ध गुणस्थानोमे शुद्ध स्वरुपकी वृद्धिसे अतिसय मनोज्ञता हैं उन गुणस्थानोमे रोकने **वाला व्यवहार मोक्ष मार्ग** है।

जो जीव निश्चय से अपने सम्यगदर्शन, सम्यगज्ञान, और सम्यक चारित्रमे परम रसी भाव कर संयुक्त हैं। जो आत्मा आत्मीक स्वभावमे मस्त है, लीन है, वही आत्मा मोक्ष मा[illegible] है। सम्यगदर्शन ज्ञान चारित्रसे आत्मीक [illegible]

जब आत्मिक स्वभावमे ही निश्रित विचरण करता है तब इसके निश्चय मोक्ष मार्ग कहा जाता है।

शंका—यदि आत्मा आपसेही निश्चय मोक्ष मार्गी हो शकता है तो व्यवहार साधन किस लिये कहा ?

समाधान—साधन दो प्रकारका होता है। १ सदभाव साधन २ अभाव साधन। अनादि कालसे जो मिथ्यादर्शन, मिथ्या ज्ञान, और मिथ्याचारित्रमे आत्मा रमण करता था उसीका **अभावकर** सम्यगदर्शन सम्यगज्ञान और सम्यक चारित्रमें रमण करना इसीका नाम व्यवहार साधन है। **व्यवहार करते २ निश्चयकी प्राप्ति नही होती हे, परन्तु व्यवहार छोडते २ निश्चयकी प्राप्ति होती है। व्यवहारका अभाव सो निश्चयका साधन कहा हे।**

निश्चय करके जो पुरुष आपके द्वारा आपको अभेदरूम आचरण कहै है, क्योंकि, अभेद नयसे आत्मा गुणगुणी भावसे एक है, अन्य कारणके विना आप ही आपको जानता है, स्वपर प्रकाश चैतन्य शक्तिके द्वारा अनुभवी होता है, और आपहो के द्वारा यथार्थ देखे है, सो आत्म निष्ट भेदविज्ञानी पुरुष आपही चारित्र है, आपही ज्ञान है, आपही दर्शन है। इस प्रकार गुण-गुणी भेदसे आत्माकर्ता है, ज्ञानादि कर्म है, शक्ति करण हैं, इनका आपसमे नियमकर अभेद है। इस कारण यह वात सिद्ध हुई कि चारित्र, दर्शन, ज्ञान, रुप आत्मा है।

सम्यक्दर्शन, ज्ञान, चारित्र रुपी रत्नत्रय एक प्रकारका है तो

भी व्यवहारसे दो प्रकारका है। १ सराग रत्नत्रय २ वीतराग रत्नत्रय। जो दर्शनज्ञान चारित्र राग लिये होते हैं, उनको तो सराग रत्नत्रय कहते है। और जो रत्नत्रय आत्मानिष्ट वीतरागता लिये होय वे वीतराग रत्नत्रय कहाते है। राग भाव आत्मीक भाव रहित परभाव है, परसमयरुप है। रत्नत्रय तो मोक्षका ही कारण है परन्तु रागका कारणसे रुढिके वश रत्नत्रयको बंधका भी कारण कहा जाता है। जैसे **घृत** अग्निके संयोगसे दाहका कारण होकर विरुद्ध कार्य करता हैं। यद्यपि घृत स्वभावमे शीतलही है। इसी **प्रकार रागके संयोगसे रत्नत्रय बन्धका कारण** है। जिस काल समस्त पर समय गि निवृति होकर स्व समयरुप स्वरुपमें प्रवृति होय उस समय अग्नि संयोग रहित घृत दाहादि विरुद्ध कार्योंका कारण नही होता, तैसेही रत्नत्रय सरागताके अभावसे स.क्षात मोक्षका कारण होता है। इस कारण यह बात सिद्ध हुई कि जब यह आत्मा स्वसमयसे प्रवर्ते, निज स्वाभाविक भावको आचरे, उस ही समय मोक्षमार्गकी सिद्ध होती हैं।

शूक्ष्म पर समयका स्वरुप—अरहंन्तादिक जो मोक्षके कारण हैं उन भगवन्त परमेष्टीमे भक्तिरुप राग अंगकर जो रागलिये चितकी वृति होय, उसका नाम शुद्ध संप्रयोग कहा जाता है, **परन्तु भगवन्त वीतराग देवकी अनादि वाणीमें अरहंन्त भक्ति को भी शुभरांग** अशरुप अज्ञान भाव **कहा** है। इस अज्ञान भावके होते संते जितने [illegible]

यह आत्मा ज्ञानवंत भी है, तथापि अरहन्त भक्ति भावसे मोक्ष होती है असे राग भावसे मुक्ति मानने के अभि-प्रायसे खेद खिन हुआ प्रवर्ते है, तब तितने काल वह ही राग अंशके अस्तित्वके परसमयमे रत है अैशा कहा जाता है। और जिस जीवके विषयादि करके राग अंशकर कलंकित अतरग वृत्ति होती है, वह तो पर समयमें रत है ही उसकी बात न्यारी है, क्योंकि, जिस मोक्षमार्गमें अरहंन्त भक्ति का निषेध है, वहां निर्गल राग तो सहज ही निषेध हो जाता है। जो जीव अरहत भक्ति के राग अंश कर पुण्य भावको छोडता नही है उसीको बंन्ध पद्धतिका अभाव होता नही है। अरहंत भक्ति के । रागसे बहुत प्रकार पुण्य कर्मो को बाधता है, किन्तु वह जीव सकल कर्म क्षयको नही कर शकता है। इस कारण मोक्ष मार्गीयोको चाहिये कि अरहंत भक्तिकी रागकी कणिका भी छोडे, क्योंकि, वह पर समयका कारण है- मोक्षमार्गकी घात करवाली है, इस कारण अरहंत भक्तिको भी मोक्षमार्गमें निषेध किया है। जिस पुरुषके चितमे आत्मीक भाव रहित परभावोमे अर्थात अरहन्त भक्तिके भावोमे रागकी कणिका भी विध्यमान है, वह पुरुष समस्त सिद्धान्त शास्त्रोको जानता हुआ भी [illegible] स्वसमयको नही पाता है, इस

कारण मोक्षमार्गीयोयें भी अपना शुद्ध स्वरुपकी प्राप्ति के लिये अरहंतादिककी भक्तिका राग क्रमसे छोडना ही योग्य है। अरहन्तादिककी भक्ति भी प्रसस्त रागके विना नही होती है, और रागादिक भावकी प्रवृति होती है, और जो बुद्धिका विस्तार नही होय तो वह आत्मा उस भक्तिको किसी प्रकार धारण करनेमे समर्थ नही है, क्योकि, बुद्धिके विना भक्ति नही है, तथा रागके विना भी भक्ति नही है, इस कारण इस जीवके रागादिगर्भित बुद्धिका विस्तार होता है, तब इसके अशुद्धोपयोग होता है, उस अशुद्धोपयोगके कारणसे शुभाशुभ आश्रव होता है, इसी कारण वन्ध पद्धति है। और इससे **यह बात सिद्ध हुई कि शुभअशुभ गतिरुप संसारके विलासका कारण एक मात्र रागादि संक्लेशरूप विभाव परिणाम ही है।**

जो पुरुषको सर्वज्ञ वीतराग प्रणीत सिद्धान्तका श्रद्धानी है, जिसने पंचमहाव्रत अंगीकार किया है, उतकृष्ट तपको धारण करता है, घोर उपसर्गको जितनेवाला है, पंचपरमेष्टीमे अतीशय रुचिपुर्वक भक्ति है, **जिस भक्तिको मोक्षपदमे सहाय जानता है** वहां पुरुषको सकल कर्म रहित मोक्षपद अतिशय दूर होता है, क्योकि, **जो अरहेन्तारिक पंचपरमेष्टीकी भक्ति है, वह मोक्षमार्गमे घात करनेवाली है, मोक्षमार्गमे अंतराय करनेवाली है. ऐसा उसको श्रद्धान नही होनेसे मात्र संसारका ही भाजन है।**

यद्यपि विषयानु रागसे रहित हैं, तथापि प्रस्तराग रुप पर समयकर संयुक्त है। उस प्रसस्त रागके संयोगसे नव पदार्थ तथा पंचपरमेष्टीमे भक्तिपुर्वक प्रतीति, श्रद्धा व रुचि उपजी है; ऐसे पर समय रुप प्रसस्त रागको वह छोड नही शकता, उस कारणही साक्षात मोक्ष पदको नही पाता। जब ऐसा है तब **उसकी गति किस प्रकार होती है?** देवादि गतियोमें शंक्लेश परिणामोको प्राप्त होता है। जो पुरुष निश्चय करके अरहंन्तादिककी भक्तिमें सावधान बुद्धि करता है और उत्कृष्ट इन्द्रिय मनसे शोभायमान परम प्रधान अतिशय तिव्र तपस्या करता है, सो पुरुष उतनाही **अरहन्तादिक तपरुप प्रसस्त राग मात्र क्लेश कलकित अंतरंग भावोसे भावीत चित होकर साक्षात मोक्षको नही पाता, किन्तु मोक्षके अंन्तराय करनेवाले स्वर्गलोकको प्राप्त होता हे।** उस स्वर्गमें जीव सर्वथा अध्यात्म रसके अभावसे, इन्द्रियविषयरुप, विष वृक्षकी वासनासे, मोहित चित वृतिको धारता हुआ, बहुत काल पर्यंत **सराग भाव रुप अंगारोसे दह्यमान हुवा जलता हुवा बहुत ही खेदखिन्न होता हे।**

जो शाक्षात मोक्ष मार्गका कारण होय सो वीतराग भाव है। अरहंतादिकमे जो भक्ति है वा राग है वह स्वर्ग लोकादिकके क्लेशकी प्राप्ति करके अन्तरंगमे अतिसय दाहको उत्पन्न करे है। **कैसे है ये धर्म राग? कैसी हे अरहंत भक्ति?** जसे चंदन वृक्षमे लगी अग्नि पुरुष को जलाती है। यद्यपि

चंदन शीतल है, अग्नि के दाह का दुर करनेवाला है, तथापि चंदनमे प्रविष्ट हुई अग्नि आतापको उपजाती है, इसी प्रकार धर्मराग, अरहंन्त भक्ति, आत्मा के शुखको जलानेवाली है। इस कारण धर्म राग भी छोडने योग्य, त्यागने योग्य जानना। जो कोई मोक्षका अभिलाषी महाजन हैं, सो प्रथम ही विषय रागका त्यागी हो कर, बादमें पुण्य भावको छोडकर, अत्यन्त वीतराग होयकर, संसार समुद्रसे पार जाना। जो संसार समुद्र नाना प्रकारके शुख दुःख रूपी कल्लोलोके द्वारा आकुल व्याकुल है। कर्मरुप बाडवाग्निकर बहुत ही भयको उपजाता अति दुस्तर है। असे संसारके पार जाकर परम मुक्त अवस्था रुप अमृत समुद्रमे मग्न होकर तत्कालही मोक्ष पदको पाते है। बहुत विस्तार कहांतक किया जाय, जो साक्षात मोक्ष मार्गका प्रधान कारण है, जो समस्त शास्त्रोका तात्पर्य है, असा जो वीतराग भाव सो ही जयवन्त हो हु, जयवन्त हो हु।

मोक्षमार्गी जीवका स्वरुप

प्रथम ही जे जीव ज्ञान अवस्थामे रहनेवाले है वे तीर्थ कहाते है। तीर्थ साधन भाव जहां है तीर्थफल शुद्ध सिद्ध अवस्था साध्य भाव है। तीर्थ क्या है सो दिखाते है।

जिन जीवोके असे विकल्प होता है कि यह वस्तु [illegible]

,–१ योग्य है। यह वस्तु श्रध्धा करने योग्य नही है, श्रध्धा करनेवाला पुरुष अेसा है, यह श्रध्धान है, इसका नाम अश्रध्धान हैं, यह वस्तु जानने योग्य है, यह स्वरुप ज्ञाताका है, यह ज्ञान है, यह अज्ञान है, यह आचारने योग्य है, यह वस्तु आचरने योग्य नही है, यह आचारमयी भाव है, यह आचरण करनेवाला है, यह चारित्र है, अैसे प्रकारके करने न करनेके कर्ता कर्मके भेद उपजते है। उन विकल्पोके होते हुए उन पुरुष तीर्थोको सुद्रष्टिके बढावसे वारंवार उन पूर्वोक्त गुणोके देखनेसे प्रगट उल्लास लिये उत्साह बढे है। जैसे द्विती-याके चंद्रमाकी कला बढती जाती है. तैसे ही ज्ञान, दर्शन, चारित्र रुप मूल चंद्रमाकी कलाओंका कर्तव्याकर्तव्य भेदोसे उन जीवोके बढवारी होती है। फिर उन जीवोके क्रमक्रमसे मोहरुप महामल्लका मूल सतासे बिनाश होता है। फिस भी एक कालमे अज्ञानताके आवेशतै प्रमादकी आधीनतासे उन्ही जीवोके आत्मधर्मकी सिथिलता है, **फिर आत्माको न्याय मार्गमे चलानेके लिये आपको प्रचंड दंड देने है**। शास्त्र न्यायसे फिर ये ही जिनमार्गी वारंवार जैसा कुच्छ रत्नत्रयमे दोष लगा होय उसि प्रकार प्रायश्चित करते है। फिर निरन्तर उद्यमी रहकर अपनी आत्माको जो आत्म स्व-रुपसे भिन्न स्वरुप श्रध्धान ज्ञान, चारित्ररुप व्यवहार रत्नत्रयसे शुध्धता करते है। जैसे मलीन वस्त्रको धोवी भिन्न साध्य साधनभाव कर मिलाके उपरी साबुन आदि सामग्रियेोसे उज्ज्वल करता है,

तैसेही, व्यवहार नयका अवलंम्बन पाय भिन्न साध्य साधन भावके द्वारा गुणस्थान चढनेकी परपाटीके क्रमसे विशुद्धताको प्राप्त होता है। **फिर उनही मोक्षमार्ग साधक जीवोके निश्चयनयकी मुख्यतासे भेद स्वरूप पर अवलंबी व्यवहारमयी भिन्न साध्य साधन भावका अभाव है।** इस कारण अपने दर्शन, ज्ञान, चारित्र स्वरुप विषे सावधान होकर. अन्तरग गुप्त अवस्थाको धारण करता है। और जो समस्त बहिरग योगोसे उत्पन्न है कियाकांडका आडंबर, तिनसे रहित निरंतर संकल्प विकल्पोसे रहित, परम चैतन्य भावोके द्वारा सुंदर, परिपूर्ण, आनंदवंत, भगवान परम ब्रह्म आत्मामे स्थिरताको धरे है, **ऐसे जे पुरुष है वही निश्चयावलम्बी मोक्षमार्गी जीव है। व्यवहार नयसे अविरोधी क्रमसे परम समरसी भावके भोक्ता होते है। तत्पश्चात परम वीतराग पदको प्राप्त होकर साक्षात मोक्षावस्थाके अनुभवी होते है।**

व्यवहाराभासीका स्वरुप

जो जीव केवल मात्र व्यवहार नयकाही अवलंम्बन करते है, उन जीवोके परद्रव्य रुप भिन्न साधन साध्य भावकी द्रष्टि है, अर्थात **पुण्य भावसे ही, मोक्ष मानते है,** स्वद्रव्य रुप अभेद साध्य साधन भावकी द्रष्टि नही है, **अकेले व्यवहारसे खेदखिन्न है।**

अनेक प्रकार यतिका द्रव्य लिंग, जिन वहिरंग व्रत, तपस्यादि कर्मकान्डोके द्वारा होता है उनका ही अवलंम्बनकर स्वरुपसे भ्रष्ट हुआ है। मिथ्यात्व भावके कारण व्यवहार धर्मरागके अंशकर किसी ही कालमे पुण्य क्रियामे रुचि करता है, किस ही कालमे दयावन्त होता है, किस ही कालमे अनेक विकल्पोको उपजाता है, किसी कालमे कुच्छ आचरण करता है, किस ही कालदर्शनके आचरण समता भाव धरता है। वहुत प्रकार विनयमें प्रवर्ते है। सास्त्रकी भक्तिके निमित बहुत आरंभ भी करता है। भले प्रकार शास्त्रका मान करता है। चारित्रके धारण करनेके लिये हिसा, असत्य, चोरी, स्त्री सेवन, परिग्रह इन पांच अधर्मोका जो सर्वथा त्याग रुप पंच महाव्रत है तिनमे थिर वृतिको करता है। मन, वचन, कायका, निरोध है जिनमे अैसी तीन गुप्तिओ कर निरंतर योगावलंम्बन करता है। ईर्या, भाषा, एषणा आदान निक्षेपण, और उत्सर्ग जो पांच समिति है, उनमें सर्वथा प्रत्यन करता है। तप आचारके निमित अनसन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रस परित्याग, विविक्त सयासन, काय क्लेश इन छोह प्रकार बाह्य तपमें निरतर उत्साह करे है। प्रायश्चित, विनय, वैयावृत, व्युत्सर्ग स्वाध्याय, और ध्यान इन छोह प्रकारके अंतरंग तपके लिये चितको वश करे है। वीर्याचारके निमित कर्मकान्डमें अपनी शक्तिसे प्रवर्ते है। कर्म चेतनाकी प्रधानतासे सर्वथा निवारी है अशुभ कर्मकी प्रवृति जिन्होने वे ही शुभ कर्मकी प्रवर्तको अंगीकार करते है। समस्त क्रिया